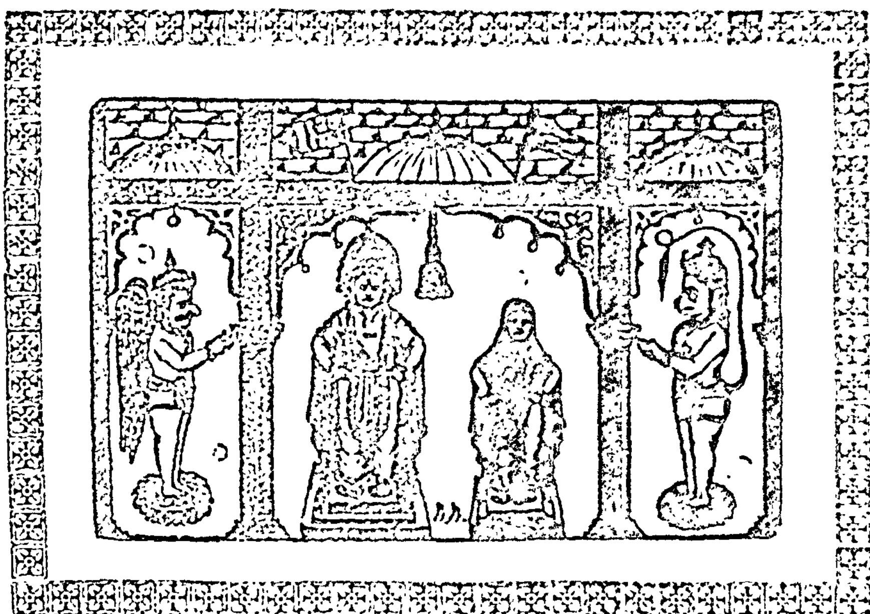
श्रीसीतारामाभ्यां नमः



भूमिका.



(१) यद्यपि श्रीवोपदेव कवि कब हुए कहाँ हुए यह सिद्ध करना बहुत ही कठिन है, तथाऽपि प्राचीन टीका कार और विविध ग्रन्थकर्ता श्रीमधुसूदन गोस्वामीजी २०० वर्ष के लग भग श्रीवृन्दावन में निवास करते थे यह जनश्रुति है। इन्हो ने इस वोपदेव कृत भागवत की संक्षिप्त विषमपद व्याख्याकी है। हमनेभी कहीं २ इन के व्याख्यान का निजानिर्मित सँस्कृत टीके में आशय लिखा है इन स्वामीजी ने ही कुछ २ वोपदेवजी का पता दोश्लोको में दर्शाया है यथा—

हरिलीला विवेकोयं कामराजस्य वेश्मनि ।
निकटे रचया चक्रे तुष्ट्यै हेमाद्रिणां सताम् ॥ १ ॥"
" अतत्वे तत्वधीर्येषां तत्वे चातत्वधीर्नृणाम् ।
न तावानन्दयत्येता वोपदेवस्य सूक्तयः ॥ २ ॥

अर्थात् किसी कामराजके निकट घर में तथा हेमाद्रिनामक किसी मन्त्रिकी तुष्टिके अर्थ यह ग्रन्थ वोपदेवजी महाराज ने रचा यह वात हमने इसही ग्रन्थ के पहिले श्लोककी टीकामें भलीभांति दर्शादी है।१। जिनकी अतत्वमें तत्वबुद्धि है और तत्वमें अतत्व ऐसे पुरुषोंको यह वोपदेवजीकी वाणी आनन्द नहीं देती है अर्थात् विद्वान् और तत्ववेत्ताओं कोही आनन्द जनक है ॥ २ ॥

और भी कुछ थोड़ासा पता इनही वोपदेवजी के बनाये हुए ' वोपदेव शतक ' नामक वैद्यक ग्रन्थ के अन्तिम दोश्लोकों से मालूम होता है यथा—

देशानां वरदातटं वरमतः सार्थाभिधानं महा ।
स्थानं देवपदास्पदाग्र जगणाग्रण्यं सहस्रं द्विजाः ॥
तत्रामीषु धनेशकेशवविदौ वैद्यौ वरिष्ठौ क्रमात् ।
चक्रे शिष्यसुतस्तयोः कृतिमिमां श्रीवोपदेवः कविः॥ १ ॥
कैलासाचलमौलिमंडलमणेर्नृत्योत्सवे यद्यशो ।
गायन्ति त्रिदशांगनाः कलरणद्गंभीरतारस्वनैः ॥
चक्रे चन्द्रकलासुशोभितशतश्लोकीं पदोल्लासिनीं ।
सत्रैलोक्यकवीन्द्रवृन्दतिलकः श्रीवोपदेवः कविः ॥ २ ॥

वरदा नदी के तटपर ' सार्थ ' नामक बड़ाभारी स्थान अर्थात् नगर सब देशों से श्रेष्ठ है और जिस नगर में देवताओं के समान बड़े महान एक सहस्र ब्राह्मण

रहते हैं। और इन सब ब्राह्मणों में उत्तम दो ब्राह्मण हैं जिनका नाम धनेशदेव तथा केशवदेव है। यह कविराज वोपदेवजी महाराज वेदों में श्रेष्ठ धनेशदेवजी के शिष्य तथा श्रीकेशवदेवजी के पुत्र हैं ॥ १ ॥ श्रीशिवजी नटराज के ताण्डवनृत्य के समय—शब्दायमान गंभीर चरण नूपुरों के नादों के साथ—जिस वोपदेवनामक कवि के यश को सुरसुन्दरी—गाती हैं और जिसने पद्मों ग्रन्थ—चन्द्रकलाओंसे प्रकाशमान शतश्लोक युत उत्तम ग्रन्थ को बनाया (अर्थात् यह ग्रन्थ इनके सौ २ श्लोकों के हैं) वही त्रिलोकी के कविकुल में तिलक के तुल्य श्रीवोपदेवनामा कवि हैं ॥ २ ॥

(२) यह ग्रन्थ कितने श्लोकोंका है इसको तंत्रवासी श्रीमन्मुकुन्द गोस्वामीजी नेही दिखाई है यथा—

" कृत्स्नस्यास्य ग्रन्थस्य मानं [illegible] "

अर्थात् एकसौ छयत्तर १७६ इस ग्रन्थ में श्लोक हैं।

(३) यह भागवतका तत्त्व श्रीमान् कलानिधि [illegible] महामहोपाध्याय श्रीवोपदेव जी महाराजने वर्णन कियाहै। इस ग्रन्थका नाम हरिलीलामृत है और कोई इसग्रंथ को भागवतानुक्रमणीभी कहते हैं इसमें प्रमाण दिखाते हैं यथा—

इति भागवतस्यानुक्रमणी रमणी कृता।
विदुषा वोपदेवेन भिषक्केशवसूनुना ॥ १ ॥
हरिलीलेति नामेयं हरिभक्तैर्निरीक्ष्यताम्।
अस्यावलोकनादेव हरौ भक्तिर्विवर्द्धते ॥ २ ॥

कोई २ टीकाकार इस ग्रन्थको भागवततत्त्वभी कहते हैं। इस भागवततत्त्व कथनका प्रमाण देतेहुए यहबातभी इस आगेके श्लोकसे बताते हैं कि—इन वोपदेवजी महाराज ने किस २ शास्त्रके कितने२ ग्रन्थ बनाये श्लोक—यथा

" यस्य व्याकरणे वरेण्यघटनास्फीताः प्रबन्धा दश।
प्रख्याता नव वैद्यकेऽथ तिथिनिर्द्धारार्थमेकोऽद्भुतः ॥
साहित्ये त्रय एव भागवततत्त्वोक्तौ त्रयस्तस्य भु—
वन्तर्वाणिशिरोमणेरिह गुणाः के के न लोकोत्तराः ॥ १ ॥ "

व्याकरणशास्त्र में जिनके बनायेहुए दश ग्रन्थ हैं। नव ९ पुस्तक वैद्यकशास्त्र की हैं। एक तिथिनिर्द्धार नामक ज्योतिषमें। तीन साहित्य शास्त्रमें। तीन भागवत तत्त्वमें। इस भागवत तत्त्व पदके कथन से यही मालूम होता है कि भागवत के प्रयोजन कथनार्थ इन्होंने तीन ग्रन्थबनाये। उनतीन ग्रन्थों में एक तो यही है दूसरा

अधूरा और भी श्रीमद्भागवत का टीकाहै यह पूराटीका हमे आजतक कहीं नहींमिला परन्तु वड़ाही विलक्षण है अव तीसरे ग्रन्थ कीभी हम ढूंडभालमें हैं

(४) श्रीवोपदेवजी महाराजने और कोई दूसरीही भागवत वनाई है यह शंका विलकुल असत्यहै क्योंकि इस पूर्वोक्त श्लोकसे यही सिद्धहोताहै कि -- श्रीमद्भागवत तत्व कथनार्थही तीन ग्रन्थरचे इस ग्रन्थको ही वोपदेव कृतभागवत कहते हैं यथा —

इदं भागवतं नाम निर्मितं व्याससम्मितम् ।
वोपदेवेन प्राज्ञेन मन्त्रिहेमादितुष्टये ॥ १ ॥,,

अतः यही वोपदेव कृत भागवत है ऐसा सिद्ध होता है ।

(५) कोई २ व्यासकृत ,, श्रीमद्भागवत ,, कोही वोपदेव कृत और नवीन वताते हैं इस शंका काभी निराकरण करते हैं यथा एक समय इस मुरादावाद नगर में सनातनधर्मी और दयानन्दियों का इस प्रकार का मौखिक वाद विवादहोने लगाकि यह श्रीमद्भागवत वोपदेवकृत है अथच इसको वनेहुए अनुमान २०० दो सौवर्ष के हुए उन्ही दिनों में हमारे पिता श्रीमान् सारस्वत वंशावतंस विप्रकुलकमल विद्वद्वर श्रीपण्डित नारायणदासजी श्रीमद्भागवतकी सप्ताह वाँचाकरते थे वेह सवपुराणोंमें कुशल वैय्याकरण तथा वड़े ज्योतिषीथे इन्होंने कहाकि हे दयानन्दियो ? यह तुम्हाराकहना निर्मूल है क्यों कि कोई भागवत वोपदेवजी ने नहीं वनाई हाँ ? भागवतंतत्वकेतौ तीनग्रन्थ वनाये हैं क्योंकि ,, यस्य व्याकरणे,,इसश्लोकमें लिखाहै यह श्लोक गुरुकर्ण परम्परासे हमारे पिताको कंठथा. इसप्रकार हमारे पिताके समाधान करने परभी उन समाजियों ने इस श्रीमद्भागवत को नवीन वनीहुई ही वताई और यह प्रचार किया कि यदि यह श्रीमद्भागवत वोपदेवजी की वनाई नहो तो और किसी ने गढी होगी । वार २ इन श्रवण कटुवचनों को सुनकर माथुर वैश्य वंशावतंस अनेक ग्रन्थोंके निर्माणकर्त्ता वैद्य श्रीयुत शालिग्रामजी हमारे पिताके पास आये और उन्हों ने हमारे पिता से कहाकि—पण्डितजी आपकी सात पुस्त से अर्थात् पिता प्रपिता वृद्धप्रपितामह इत्यादि कों से पुरानी पाण्डितायी और वहुत २ प्राचीन सहस्त्रों ग्रन्थभी लिखे हुए आप के पास विद्यमान हैं फिर क्यों नहीं तीनसौ तथा चारसौ वर्षकी लिखीहुई श्रीमद्भागवत निकालकर दयानन्दियोंका मुख मर्दन करते क्योंकि आजकल आपके सिवाय प्राचीन और खान्दानी तथा अखिल शास्त्रवेत्ता इसनगर में कोईभी नहीं है ऐसा कथन कर हमारे पिता से एक पुरानी प्रति श्रीद्भागवतकी जोकि संवत् १९१३ जिस्को लगभग आजकल साढे सात सौ वर्ष ७५० वर्ष केहोते हैं निकलवाय हमारे पिता को साथ ले श्रीवैद्य शालिग्रामजी ने दयानन्दियों दिखाई

देखते ही नयानंदी मौनहोगये । उसही दिन से वेह दयानन्दी वोपदेवकृत श्रीमद्भागवत तथा २०० वर्ष की नवीन भागवत न वताकर किंतु इस व्यासकृत श्रीमद्भागवत में धूर्तों ने सैंकडों स्थालों में व्यभिचार युक्त गफोड सपोड वातें मिलादी हैं ऐसा प्रचार करनेलगे हैं । अस्तु । यह सम्वत् १९१३ की लिखीहुई वहुत जीर्ण श्रीमद्भागवत की पुस्तक अवभी हमारे यहाँ मौजूद है जिस किसी की इच्छाहो वोह आन कर देखसक्ता है । और इस श्रीमद्भागवतमें नवीनता के भ्रम को दूर करसकताहै । इस्के सिवाय हमारे यहां औरभी वडे २ और वहुत प्राचीन वोपदेवकृत वैद्यक धर्म शास्त्रआदि तथा अन्य ज्योतिष वैद्यक व्याकरण पुराण आदिके ग्रन्थहैं यदि दर्शकों की इच्छा होगीतो वेह भी क्रमशः प्रकाश किये जायंगे ।

(६) यह पूर्वोक्त चरित्र सुन में दश वारह वर्षसे इस खोजमें था कि श्रीमान वोपदेवजी के रचेहुए भागवत तत्व के ग्रन्थ किसप्रकार प्राप्त हों । मैंने मुरादावाद निवासी कूर्माचलीय श्रीयुत गुरुवर पण्डित भवानीदत्तजी से सिद्धान्तकौमुदी आदि अनेकग्रन्थ पढे—उनहीदिनों में मेरेसहाध्यायी और समान कक्षीय अनेक ग्रंथों के रचयिता कान्यकुब्ज सुप्रसिद्ध पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र तथा सुलेखक पताकी पण्डित रामस्वरूप शर्म्मा गौड़ और हरिहरनाथ सांख्याचार्य, रामनारायणशास्त्री वृजरत्न भट्टाचार्य आदि अनेक सुवोध विद्यार्थी मेरे साथही इनही पण्डित भवानीदत्तजी से पढते थे आजकलभी यही सुप्रसिद्ध महाविद्वान पण्डितजी श्रीलाला जवाहर लाल की सँस्कृत पाठशाला में पढाते हैं । पं० जयन्ती प्रसाद उपाध्याय पं० मदनमोहन ज्योतिषी इत्यादि सैकडों विद्यार्थी इनके पास पढकर पण्डित होगये । करीव १० वर्षके हुए कि इनही गुरुजी की पाठशाला से हमसात विद्यार्थी लाहौर की प्राज्ञपरीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे उनके यह नाम हैं—

भाषाविद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र, गुल्लू पंण्डितजी, स्वर्ग निवासी परम हितकारी पं० वावूरामजी गौड़, पं०यमुनादत्तजी, (जो आज कल मथुरा की जैन पाठशाला में पढाते हैं) गंगादत्त जी (यहभी आजकल पढाते हैं) और एक हमारे प्यारे अग्रवाले वैश्य वन्नूलाल जी तथा सातवां— में— सव विद्यार्थियों में मेराही परीक्षोत्तीर्णता में प्रथम नम्वर आया इसही कारण मुझे लाहौर ओरियण्टेल कालिज से आठरुपये वजीफा मिला में लाहौरभे गया और विशारद परीक्षाकीपुस्तकेंपढी उसहीसमय हमारेलाहौर ओरियण्टेल कालिजके स्वामी प्रेन्सपिल वेदादि विविध विद्या निधान श्रीमान "स्तैन,, साहिवने—महाराज रणजीतसिंह के पुस्तकालय में तथा—काशी काश्मीर आदि के पुस्तकालयों में से जितनेभी पूरे अधूरे ग्रन्थ मिले वेह सव इकट्ठे किये में भी सुन्दर सुवाच्य शुद्ध और शीघ्र लिख

साथा इसलिये मुझसे "स्तैन,, साहब बहादुर ने कहाकि पं० बैजनाथ—हमारे सूचीपत्र को लिखदो। उस सूचीपत्र में ग्रन्थकर्त्ता का नाम, पुस्तकका नाम, पृष्ठ संख्या और पुस्तक पूर्ण है या अपूर्ण यही लिखा जाताथा। मैं और मेरे सहचारी तीन शास्त्री इनहम चारों ने यह सूचीपत्र को प्रतिदिन सात२ घंटे लिखा और वह बहुत कठिनता से चारदिन में समाप्त हुआ। मैं—नहीं कहसकता कि इस सूची पत्र में कितने सहस्र ग्रन्थ थे परन्तु वहाँ भी वोपदेव कृत भागवततत्व के तीनों में से किसी ग्रन्थका पता नलगा। पुनः विशारद परीक्षोत्तीर्णता में—सम्पूर्ण भारतवर्ष के विद्यार्थियों में मेराही प्रथम नम्बर रहा और १०) रु० वजीफा भी मिला परंतु कई लाहौर के विद्वानों के वैकुण्ठ धाम जाने के कारण से अच्छी पढाई न समझ और भी कई गृहस्थ के कारणों से फिर मैं लाहौर न गया और १०) रुपयेका वजीफा भी मेंनें नहीं लिया कई महीने काशी निवासी स्वामीराम मिश्र शास्त्रीजी तथा श्रीमान्‌संगम लाल ओझाजीसे पढकर श्रीवृन्दावन चलागया। वहां परभी श्रीमान् स्वामी सुदर्शनाचारी शास्त्रीजी से न्याय, वेदान्त, मीमांसा आदि शास्त्र तथा श्रीमान् स्वामी लक्ष्मणाचारी जी से महाभाष्य, वैयाकरणभूषण शेषर आदि विविध पुस्तकें और श्रीनिकुंजविहारी जी के पुजारी गोस्वामी नामी स्वर्गगामी जगदीशजी महाराजसै काव्यप्रकाश, वासवदत्ता पिंगल आदि अनेक ग्रन्थ पढे। और सव पुस्तकालय श्रीमान् लक्ष्मणदास सेठजी का देखा परंतु यह वोपदेवकृत भागवत के तत्व न मिले हाँ ? और स्मसके तो कई एक वोपदेवजीके ग्रन्थ वहाँभी थे। फिर एक दिन गोस्वामी जगदीशजी महाराजसे पढनेकेसमय वोपदेवजीके ग्रन्थोंकी वात चीत चली उन्होंने मुझ से कहाकि वोपदेवजी के साहित्य, व्याकरण, और भागवत तत्व आदि के कई ग्रन्थ हमारे पास हैं और वोपदेवजीकी भागवतभी हमारे पास है हम सव ग्रन्थ तुम को देदेंगे और पढादेंगे क्योंकि हम को ऐसा सुपात्र और सुवोध विद्यार्थी कौन मिलेगा। उन्हों ने सव ग्रन्थ मुझे देदिये। और मेनेभी उन की नकल करली मैं जितना इन गोस्वामी जगदीशजी महाराज को धन्यवाद दूं उतनाही थोडाहै हां ? इतनाही कहताहूँ कि हे परमात्मन् सैंकडो वर्षतक इन परोपकारी जी का आत्मा स्वर्ग में सुख भोगे और शांति को प्राप्त हो। दो तीन वर्ष—इन ब्रह्मा विष्णु महेश के समान तीनों विद्वानों से पढकर में निज नगर मुरादावाद में आया इन पुस्तकों के छापने का विचार किया एक प्रेसभी जिसका आजकल 'तंत्रप्रभाकर, नाम है जो मुरादावाद के सव प्रेसों से चढ वढकरहै इस प्रेस को मेंने तथा कमेटी ने खरीदा और आजकल मे इसप्रेस का एक हिस्सेदार तथा मैनेजर भी हूं अव तक इस प्रेस में कृष्ण द्वैपायन श्री व्यास देव कृत महाभारत, श्रीम-

द्रागवत पृथ्वीराज चौहान आदि अनेक उत्तमर ग्रन्थ छपे । तदनन्तर श्रीस्वामी सुदर्शनाचार्यजी तथा गुरुवर पण्डित भवानीदत्तजी के कहने से मैंने, " न्याय सिद्धान्त मुक्तावली,, का भाषा बनाया और इसको प्रेसमें छपाया उस भाषाको देख कर सब विद्वान् बहुत प्रसन्न हुए और मुझको प्रसंशापत्रभी दिये । प्रतिदिन यह मुक्तावली खूब बिकती है और विद्यार्थी मंगा २ कर परीक्षोत्तीर्णताका लाभ उठारहे हैं ॥ पुनः एक " चौदहरत्न ,, संज्ञक अर्थात् १२५ पुस्तकों का सिट छपवाया वह भी बहुत बिकचुका है और इस सिट के भी बहुत प्रसंशा पत्र आये हैं इस प्रकार ग्राहकों का आग्रह देख और कई विद्वानों ने कहा कि तुम—वोपदेवजी के ग्रन्थ छापो अभी यह ग्रन्थ कहीं नहीं छपेहैं । इन से बहुत परोप कार होगा यह सुन कर मैंने इस ग्रन्थकी सँस्कृत और भाषा यह दोनों टीका बनाई ।

(७) यद्यपि सँस्कृतटीकेही से सम्पूर्ण विद्वानों का उपकार होसक्ता था तथापि सँस्कृत के न जानने वाले भाषा रसिक जनों के हितार्थ इसकी भाषाभी लिखदीहै ॥ उपसंहार में वक्तव्य है कि—जिस प्रकारकी सँस्कृत में प्राचीन विद्वानोंकी गूढा शययुक्त लेखप्रणाली है उस प्रकार से मैंने सँस्कृतटीका नहीं लिखी किन्तु मैंनेतो विद्यार्थी तथा थोड़े सँस्कृत जानने वालोंके समझाने के लिये सरल और एक २ शब्द का दो २ तीन २ पर्याय देकर अर्थ दिखाया है । विद्वान् इसको पुनरुक्ति न समझे क्योंकि आज कल ऐसीही सँस्कृत के लिखने से उपकार होसक्ता है और जहां २ सँस्कृतटीके में अशुद्ध होगयाहो उसको शुद्ध करलेना क्योंकि अशुद्धियां बड़ो २ से रहजाती हैं मैंतो एक छोटा और अल्पज्ञजन पण्डितों का किंकर और ब्राह्मणों का दासहूं लिखाभी है—

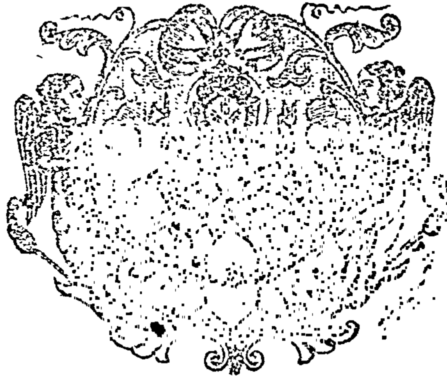
" गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येवप्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥ १ ॥

किं बहुना जो कुछ इस ग्रन्थमें भूल चूक रहगई हो—सो विद्वानोंको चाहिये कि उसे क्षमाकर मेरेपरिश्रमको सफलकर उसे पूर्ण रीति से पूर्ण करें ॥

मुरादाबाद
१।९।१९०२।

निवेदकः—सारस्वत वंशांकुरो
वैद्यनाथशास्त्री
मेनेजर तन्त्रप्रभाकर प्रेस.

※ श्रीगणेशायनमः ※



अथ हरिलीलाभिधं श्रीमद्भागवततत्वम् ॥

पंच श्लोका मंगलाचरणस्य—

श्रीवृन्दारकवृन्दवन्दितपदं मन्दं हसन्तं मुदा ।
श्रीमालम्बितपद्ममालसुपिता भृंगावलीभ्राजितम् ॥
भाले चन्दनखण्डराजिविलसत्सिन्दूरपूरं मुखम् ।
सानन्दं शिवनन्दनं भज मनो लम्बोदरं सुन्दरम् ॥ १ ॥
दुःखदारिद्रहरणं करणं सुखसम्पदाम् ।
भवाब्धितरणं हरेश्चरणं शरणं भजे ॥ २ ॥
वेदशास्त्रपुराणेषु तुल्यता यस्य नेक्षते ।
आदिमध्यान्तरहितं तं नौमि शिवदं शिवम् ॥ ३ ॥
यैश्च प्रक्षालितं वाचां मलं सारस्वतैर्जलैः ।
वन्दे भवानीदत्ताख्यान् भवानीजानिसेवकान् ॥ ४ ॥
श्रीनारायणसूनोः कृतिरेषा वैद्यनाथस्य ।
सुधियां सदा मुदेऽस्तु कुधियां हृदये विभेदाय ॥ ५ ॥

(मूल) श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्यायार्थादि निरूप्यते
विदुषा वोपदेवेन मंत्रिहेमाद्रितुष्टये ॥ १ ॥

(भापार्थ) कोई ब्राह्मणों में श्रेष्ट, वेद वेदांग आदि विविध विद्याओं का जान ने वाला वोपदेवनामक पण्डित—श्रीमद्भागवत के यथा योग्य प्रयोजनको प्रगट करते

हुए हरिलीला है नाम जिसका ऐसे ग्रन्थ का निर्माण करते हैं यह विद्वानों को जानना चाहिये । इसीको श्रीमदित्यादि श्लोकद्वारा प्रकट करते हैं । श्रीमद्भागवत को तथा उस के स्कन्ध और अध्यायादि के अर्थोंको निरूपण करते हैं । आदि पदसे महाप्रकरण तथा अवान्तर प्रकरणोंका भी वर्णन करते हैं । यह जानो । "श्रीमन्" यह हेतुगर्भित विशेषण है । अथवा मंगलमय होनेसे विनाही परिश्रम के भक्तोंको शुभफल का देने वाला है । यद्वा क्रियाविशेषण होसकता है । (प्रश्न) कौन इस ग्रन्थका कर्ता है । (उत्तर) वोपदेवनामक पण्डित (प्र०) कैसे वोपदेव हैं । (उत्तर) सम्पूर्ण वेदशास्त्र पुराणों के ज्ञाता ; यदि वोह सामान्य मनुष्यों के समान होते तो उन के ग्रन्थ के ग्रहण करने की इच्छा भी बड़े २ विद्वानों को नहीं होती इसी लिये मूलमें "विदुषा" यह पद लिखा है । (प्र०) किस प्रयोजन के लिये इस ग्रन्थको बनाया । (उ०) हेमाद्रिपर्वत के किसी राजा तथा उस के मन्त्री के सन्तोषार्थ ("यहां एक ऐसी कथा सुननेमें आती है कि रामचन्द्र नामक राजाके हेमाद्रि नाम वाले प्रधान मन्त्री ने बहुत प्रार्थना की कि हे वोपदेवजी आप मुझको श्रीमद्भागवत का ऐसा सारार्थ निर्माण करदो कि जिससे सब शंका दूर होजाय और एकही दिन में सम्पूर्ण भागवत का पाठ होजाय तथा मेरी यह भी इच्छा है कि मैं श्रीमद्भागवतका सम्पूर्ण नित्य नियमसे पाठकरूं और यथार्थ भागवत ग्रन्थ के अभिप्राय को जानजाऊं इस मन्त्री की यह प्रार्थना सुन बड़े परिश्रम से श्रीवोपदेवजी महाराजने इस हरिलीला नामवाले श्रीमद्भागवत ग्रन्थार्थ निर्माण किया") अथवा कोई ऐसा अभिप्राय निकालतेहैं कि रामचन्द्र नाम राजा देवगिरि (पर्वत) का था उस राजा तथा उसके मन्त्रीके सन्तोषार्थ इस ग्रन्थ को रचा । मन्त्री की श्रद्धा बहुतथी तथा उसने बहुत प्रार्थना कीथी इसीकारण मुख्यतासे मन्त्री का सन्तोषही लिखाहै परन्तु यह उपलक्षण मात्रहै । अर्थात् जितने भगवत भक्तहैं उन सबहीका इस ग्रन्थके पढने तथा सुननेसे सन्तोषहोगा यही ग्रन्थ कर्त्ताका मुख्य तात्पर्य है ॥ जो कोई ग्रन्थ बनाताहै वह अवश्य उसके आदिमें इष्ट देवता नमस्कार आदि मंगल करता है यह निर्युक्तिक वार्त्ता नहीं है किन्तु व्याकरण महाभाष्य कार आदिकों का सम्प्रदाय है । यद्यपि यहां "श्रीमत्" यह श्लोक के आदि का पद 'श्रियः कुरूणाम्—श्रियः पतिः" इत्यादि किरात माघ काव्य के सदृश मंगलार्थक तो है परन्तु स्पष्ट रीति से इस ग्रन्थ के मंगल को सिद्ध नहीं करता अतः इस ग्रन्थ के आदि में मंगल नहीं किया इस शंका के दूर करने को पूर्ण कलश न्याय दिखातेहैं अर्थात् जैसे कोई पुरुष अपने पीने आदि प्रयोजन के अर्थ घडा भरकर लावे और उसी समय कोई अन्य मनुष्य यात्रा आदि करने को जाता होय तो अन्यार्थक होने

परभी उस अन्य पुरुष को यह जल का भराहुआ घडा मंगलार्थकही होताहै इसी रीति के अनुसार यहां परभी श्रीपद का प्रयोगही मंगलका प्रकाशक होताहै फिर भी यदि कोई ऐसी शंका करै कि जो कोई ग्रन्थ बनाता है वह अपने किसी न किसी इष्टदेव की तौ अवश्यही प्रथम स्तुति प्रणाम आदि करताही है परन्तु वोप देवजी ने तौ कोई भी ऐसा मूल में श्लोक न रचा कि जिसमें इष्ट देवता आदिको प्रणामहो इस शंका को हम और एक युक्ति से खण्डन करते हैं कि यद्यपि ग्रन्थ कारने इष्ट देवता को प्रणाम आदि नहीं किया तथापि मानसिक प्रणाम अवश्यही किया यदि न करते तौ ग्रन्थकी समाप्ति तथा ग्रन्थका प्रचार कैसे होता इस अनुमान प्रमाण द्वाराही सिद्ध होता है कि ग्रन्थकारने मानसिक प्रणाम तथा मंगल अवश्य किया है यदि इस युक्ति को नमानै तौ विघ्नों का नाश तथा ग्रन्थ की समाप्ति होनी अत्यन्त दुर्लभ होजायगी। अथवा ग्रन्थकार के पहिले तथा इस जन्म के मंगल बहुत हैं और इस जन्म तथा द्वितीय जन्म के विघ्न बहुतही कम है इसी कारण विघ्नों ने मंगलों को न दबाया और ग्रन्थ की समाप्ति होगई। मंगल के करने में व्याकरण महाभाष्यकार की सम्मति यह है कि जो पुरुष ग्रन्थ की आदि मध्य तथा अन्त में मंगल करते हैं उन के बनाये हुए ग्रन्थ प्रसिद्ध तथा प्रयोजन सिद्ध करनेवाले होते हैं और जो उन ग्रन्थों को पढते तथा पढाते हैं वह चिरकाल तक जीते हैं अर्थात् बहुत अवस्था वाले होते हैं ॥ इति ॥ १ ॥

(संस्कृतार्थः) श्रीमन्निकुञ्जविहारिणे नमः। इह कश्चिद् द्विजवंशावतंसो वेदवेदाङ्गादिविविधविद्याविद्वोपदेव नामा श्रीमद्भागवतस्यार्थं याथातथ्येन प्रयोजनं प्रकटयन् हरिलीलाभिधं प्रबन्धं निबध्नातीति विद्वद्भिर्बोध्यम्। श्रीमादिति भागवतस्य च स्कन्धाश्च अध्यायाश्च तेषामर्थः आदिर्यस्य तत्तथा आदिपदात् महाप्रकरणाऽवान्तरप्रकरणानां ग्रहणम्। श्रीमादिति हेतुगर्भविशेषणं मङ्गलमयत्वादनायासेन भक्तानां शुभफलसूचकत्वान्निरूप्यते इत्यर्थः क्रियाविशेषणमेतत्। केन वोपदेवेन तन्नाम्ना कथम्भूतेन विदुषा सकलवेदशास्त्रपुराणवेदा न तु साधारणधीमताऽन्यथा तत्प्रबन्धालिप्सा न स्यात्। कस्मै— मन्त्रिहेमाद्रितुष्ट्यै मन्त्री च हेमाद्रिश्च ताभ्यां तुष्ट्यै देवगिरीश्वरस्य नृपस्य अथवा तन्मन्त्रिणश्च तुष्ट्यर्थं लक्षणया हेमाद्रिपदेन देवगिरीश्वरस्य कस्यचिन्नृपस्य बोधः आनलपाम्परथनया मन्त्रिशब्दस्य पूर्वप्रयोगः यद्वा मन्त्री चासौ हेमाद्रिः तस्यैव तुष्ट्यै। यद्यपि ग्रन्थे मन्त्रिहेमाद्रितुष्टिरेव प्रदर्शिता तथाप्युपलक्षणत्वादखिलभगवद्भक्तानां सन्तोषो भवेदिति ग्रन्थकर्तुस्तात्पर्यार्थः। पुनरपि ग्रन्थकृता स्वेष्टदेवतप्रणामादिरूपं मङ्गलं न कृतं तथापि ग्रन्थादौ श्रीशब्ददर्शनादेव माघ किरातकाव्यादिवत् अन्यार्थत्वेऽपि पूर्णकलशन्यायेन मङ्गलार्थत्वमेव यद्वा समाप्त्यवलोकनादपि मनस्येव मङ्गलं कृतमिति ज्ञायतेऽन्यथा विघ्नोत्पन्नत्वात्कथं समाप्तिः किञ्च विघ्नतो मङ्गलस्याधिक्यत्वात्। "मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि च भवन्ति आयुष्मत्पुरुषाणि चाध्येतारश्च सिद्धार्था यथा स्युरिति भाष्यम्।

(मू०) आनन्दस्य हरेर्लीलां वक्ता भागवतागमः ॥
स्कन्धैर्द्वादशभिः शाखाः मनन्तन्द्विजसेविताः ॥ २ ॥

(भाषार्थ) अब श्रीमद्भागवत का प्रयोजन कहते हैं आनन्दस्य इत्यादि श्लोक से । आनन्द पद का अर्थ यहां आनन्द स्वरूप है किन्तु आनन्द वाला नहीं है । आनन्द इस विशेषण से लीला को उपादेयता कही है तात्पर्य यह है कि आनन्द स्वरूप भगवान की लीलाभी आनन्दस्वरूप ही है धर्म तथा धर्मी इस भेद भाव के हटाने के लिये आनन्द पद को एकाधिकरण वृत्ति कहा है । जैसे उनकी लीला आनन्दस्वरूप है इसी प्रकार वह परमात्मा भी आनन्द स्वरूपही है । वह ब्रह्म नित्य विज्ञानमय तथा आनन्दस्वरूप है ऐसा वेदभी कहता है । गोवर्द्धन पर्वत को उठाना आदि अनेक प्रकारकी उसकी लीला प्रसिद्ध हैं । अब रूपक बांध कर श्रीमद्भागवत को वेद तथा वृक्ष सिद्ध करते है । (शंका) श्रीमद्भागवत को भी वेद कहते हैं इसमें क्या प्रमाण है । (उत्तर) इतिहासों और पुराणोंको भी पांचमां वेद माना है यही वाक्य यहां प्रमाण भूत है । आगम शब्द का अर्थ वृक्ष है इसमें अमरकोश का प्रमाण है । वक्ता इस पद का मुख्यार्थ को बाधकर काव्य की अत्यन्त तिरस्कृतवाच्यध्वनि द्वारा प्रकाश करनेवाला अर्थ होताहै । जैसे "उपदिशति" इस उदाहरण में उपदिशति इस पद का अर्थ आविष्कार (प्रकट-करना) होताहै तथैव भागवत रूप आगम से हरिलीला की प्रतीति होती है वेद तथा वृक्ष से इस भागवतकी तुल्यता दिखाते हैं भागवत रूपी वेद के बारहस्कन्ध हैं तथा वृक्ष के भी स्कन्ध होते हैं । भागवत रूपी वेद में कठ आदि शाखा हैं । तथैव वृक्ष में भी शाखा (डाली) होती हैं कठ आदि शाखा ब्राह्मणों से सेवित हैं और वृक्षकी शाखा पक्षियों से सेवित होती हैं । स्कन्ध शाखा तथा द्विज सेवित इत्यादि शब्दों के दो अर्थ मेदिनी कोष से जानने । भक्ति और ज्ञान भी लीला के भीतरही आजाते हैं इस कारण इनको पृथक् २ नहीं दिखाया । इसी कारण इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थ में लीला यह प्रतिपाद्य है किन्तु ज्ञानादि नहीं वह लीला कितने प्रकार की है इसका निरूपण अगाडी करेंगे ॥ २ ॥

(संस्कृतार्थः) अधुना श्रीमद्भागवतप्रयोजनमुच्यते आनन्दस्येत्यादिना—(आनन्दस्य) आनन्दस्वरूपस्य नत्वानन्दवतः विशेषणेनानेन लीलाया उपादेयतोक्ता । आनन्दस्य लीलाप्यानन्द स्वरूपेति भावः । एकाधिकरणवृत्तित्वंतु धर्मधर्मिभावदूरीकरणार्थम् । इत्थम्भूतस्य (हरेः) भगवत आनन्दस्वरूपस्य श्रीकृष्णपरमात्मनः । नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्मेति श्रुतेः । (लीलाम्) गोवर्द्धनोद्धारणादिलीलाम् । (भागवतागमः) भागवतमेवागमो वेदः "इतिहासपुराणञ्च पंचमो वेद उच्यते" इति प्रामाण्यात् महापुराणस्य श्रीमद्भागवतस्य वेदत्वेन प्रति

-पादनम् । अन्यत्र भागवतमवागमांवृक्षः "वृक्षोमहीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः । अनोकहः कुटः सालः पलाशी द्रुद्रुमागमाः" इत्यमरः । (ब्रवीति) अत्रमुख्यार्थस्यात्यन्ततिरस्कृतत्वादत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनिना प्रकाशयितृत्वार्थोबोध्यः यथा "उपदिशति कामिनीनां यौवनमद एव ललितानि" अत्र "उपदिशति" इत्यनेन "आविष्करोति" इति लक्ष्यते तद्वदत्रापि भागवतागमे हरिलीलाप्रतीतिरितिभावः । वेदवृक्षाभ्यां सहास्य तुल्यतां प्रदर्शयति ॥ (स्कन्धैः)—द्वादशभिः तत्संख्याकैः अन्यत्र वृक्षावयवैः "स्कन्धः स्यान्नृपतावंशे संपरायसमूहयोः कायेतरप्रकाण्डेच" इति मेदिनी कथनात् श्लोकसमूहस्य वृक्षावयवस्यच बोधः (शाखाः) कठकाद्याः अन्यत्र वृक्षांशकाः "शाखा द्रुमांशे वेदांशे इतिहैमः (प्रतन्वन्) विस्तारयन् कथंभूताः शाखाः (द्विज सेविताः) द्वाभ्यां योनिसंस्काराभ्यां जायन्त इतिद्विजा ब्राह्मणास्तैः सविताः अन्यत्र द्विजायन्ते इति द्विजा अन्येष्वपीतिडः तैः सेविताः स्थितिशयनादिना—"द्विजःस्याद्ब्राह्मणक्षत्रवैश्यदन्ताण्डजेषु ना इति मेदिनी । भक्तिज्ञानादीनां लीलायामेवान्तर्भावः इति तेषां न पृथगुक्तिः तेनास्मिन्प्रबन्धे लीलैव प्रतिपाद्या नान्यत् साच लीला कतिधेत्यग्रे वक्ष्यते ॥ २ ॥

(मू०) सा च द्वितीयदशमे दशधादर्शि तद्यथा ॥
अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ॥ ३ ॥
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ।—

(भावार्थ)—दूसरे श्लोकमें जिस लीलाका कथन किया है वह लीला दूसरे स्कन्धके दशमे अध्याय में वर्णन कीगयी है । उस लीलाके दश भेदहैं उनका निरूपण कियाजाताहै यथा—सर्ग १ विसर्ग २ स्थान ३ पोषण ४ ऊति ५ मन्वन्तर ६ ईशानुकथा ७ निरोध ८ मुक्ति ९ आश्रय १० यह दशों परस्पर अंगांगि भाव होनेसे क्रमसे उत्तरोत्तर लीलाके दशमें भेद आश्रय में मिलते हैं यथा सर्ग अंगहै, विसर्ग अंगी है । सर्ग और विसर्ग यह दोनों अंगहैं तथा स्थान इनका अंगी है ॥ पुनः सर्ग विसर्ग स्थान यह तीन अंगहैं—पोषण अंगी है । सर्ग विसर्ग स्थान पोषण यह चारों अंगहैं—ऊति अंगी है । सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति यह पाँच मन्वन्तर के अंगहै तथामन्वन्तर इनका अंगीहै सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर यह छः ईशानुकथारूपी अंगीके अंगहैं । सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानुकथा यह निरोध नाम अंगीके अंगजानने सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानु कथा निरोध यह आठोंमुक्तिके अंगहैं तथा मुक्ति इनका अंगीहै । सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानु कथा निरोध मुक्ति यह नौ आश्रयरूप दशवें लीलाके भेदके अंग होतेहैं पुनः यह आश्रय इन सबका अंगीहै यहरीति अंगांगि भावकीहै—यद्यपि इन दशों का सविस्तर लक्षण आगे कहेंगे तथापि शिष्यों की बुद्धि के स्वच्छार्थ सूक्ष्म रीति से यहां भी इन दशों का लक्षण कहते हैं शरीर रहित

परमात्माका जो नर देह स्वीकार करना है वही सर्ग है १ उस पुरुषरूप परमात्मासे ब्रह्मादिकों की उत्पत्ति होनाही विसर्ग है २ उन ब्रह्मादिकों के आधार जो नाभिकमल आदिहैं उसकी जो स्थिति का कथनहै वहीस्थानहै ३ उस स्थिति की जो पुष्टि करनी है वही पोषण है ४ और पोषण का जो आचार है वही ऊति है ५ सत्पुरुषोंका आचार ही मन्वन्तर है ६ कृष्णमें भक्ति करनी ही ईशानुकथा है ७ कृष्णभक्तों को इस संसार रूपी प्रपञ्चसे पृथक् कर देना का नाम निरोध है ८ निष्प्रपञ्च कृष्णभक्तों को निज यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति होनी ही मुक्ति है ९ उन मुक्तों का जो परब्रह्म स्वरूप में स्थित होजाना है वही आश्रय है १० ॥ बहुत परिश्रम के न करनेसे इन दशों की प्राप्ति होती है इसी लिये इनको लीला नाम से वर्णन किया है तात्पर्य यह है कि योग जप तप करने से योगी आदि जनो को बहुत दुःख उठाने परभी मुक्ति मिलना कठिन है और इस लीला के द्वारा तो सहजही में मुक्ति होसकती है ॥

(संस्कृतार्थः) सेति—सा च पूर्वोक्तलीला द्वितीयस्कन्धस्य दशमेऽध्याये प्रदर्शिता । सा पुनः दशभेदवती भवतश्च दश तस्या निरूप्यन्ते यथा—सर्गः १ विसर्गः २ स्थानं ३ पोषणम् ४ ऊतयः ५ मन्वन्तरम् ६ ईशानुकथा ७ निरोधः ८ मुक्तिः ९ आश्रयः १० । एतेच परस्परसंगतिमत्त्वात् यथाक्रमार्थं प्रविशन्ति । यद्यप्येषां सविस्तरं लक्षणमग्रे वक्ष्यते तथापि शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थं सङ्क्षेपेणोच्यते तत्रादौ तस्य शरीररहितस्य कृष्णस्य नरशरीरस्वीकारः सर्गः १ पुरुषाद्ब्रह्मादीनां जननमेव विसर्गः २ तेषामाधारस्य कमलादेः कथनस्थितिः स्थानम् ३ स्थितानां पुष्टिः पोषणम् ४ पुष्टानामाचार ऊतिः ५ सदाचारश्च मन्वन्तरम् ६ कृष्णभक्तिरीशानुकथा ७ कृष्णभक्तानां संसाराभावो निरोधः ८ संसाराभावत्वाद्य तेषां स्वरूपप्राप्तिर्मुक्तिः ९ मुक्तानां ब्रह्मस्वरूपेणावस्थितिराश्रयः १० इति । अनायासेन साध्यत्वादेवां लीलात्वम् योगादिना तु बहुतरदुःखसाध्यत्वात् मुक्तेर्दुष्प्रापेतिभावः ॥

(मू०) सर्गादयस्तृतीयादि स्कन्धेषूक्ता दश क्रमात् ॥ ४ ॥
श्रोतुर्वक्तुश्च लक्ष्याद्ये द्वितीये श्रवणे विधिः ॥
इतीदं द्वादशस्कन्धं पुराणं दश लक्षणम् ॥ ५ ॥

(भावार्थ) इस पूर्वोक्त रीति के अनुसार ग्रन्थार्थ कह कर अब स्कन्धार्थ का वर्णन करते हैं जो पहिले सर्ग को आदि लेकर लीलाके भेद कहे हैं वेह दश हैं और वेह दश यथाक्रम तृतीयादि स्कन्धोंमें जानने।अब उनका क्रम दिखातेहैं तृतीयस्कन्धमें सर्ग। चौथेमें विसर्ग। पांचवेंमें स्थान।छठेमें पोषण।सातवेंमें ऊति। आठवेंमें मन्वन्तर। नवम में ईशानुकथा। दशम मे निरोध। एकादश में मुक्ति। द्वादश में आश्रयका वर्णन किया है ॥ ४ ॥ अब पहिले तथा दूसरे स्कन्धके विषयों का वर्णन करते हैं।

पहिले स्कन्ध में श्रोता तथा वक्ता का लक्षण दूसरे स्कन्ध में कथाश्रवण करने की विधि है। यद्यपि प्रथम तथा द्वितीय स्कन्धमें लीला के भेदों का वर्णन नहीं है तथापि "जगृहे पौरुषं रूपम्" इस वचनसै सामान्य रीतिद्वारा वहां भी लीला जानलेनी। (प्रश्न) जिसमें दश लक्षणहों वही महापुराण है और वेह दश लक्षण तृतीयादि दश स्कन्धों में ही है तौ पहिले दो स्कन्ध महापुराण भागवत नहीं होसकते (उत्तर) यद्यपि उनदोंनोंमें दशलक्षण नहीं है तथापि इस महापुराणका कैसा श्रोता वक्ता होना चाँहिये तथा कैसे इस भागवतको सुने; विना इस वातके जाने पुराण के सुनने सुनाने की इच्छाही नहीं होसकती और इसके न होने से पुराण का होनाभी वृथा है अतः यह वातें भी आवश्यक हैं और इन दो में लिखी हैं इस कारण इन दोनों स्कन्धों को भी पुराण का अंग होने में हानि नहीं प्रत्युत लाभहै। इसी लिये वारह (१२)ही विषय हैं तथा वारह (१२) ही स्कन्धहै यही तात्पर्य है। (शंका) अमरकोश में यह लिखा है कि जिसमें पांच लक्षणहों वही पुराणहै वेह पांच यह है—सर्ग १ प्रतिसर्ग २ वंश ३ मन्वन्तर ४ भूम्यादि का संस्थान ५ तौ इस दश लक्षण वाले वाक्य से विरोध होगा (उत्तर) जिस में पाँच लक्षण हों वह पुराणहै और जिस में दश लक्षणहों वह महापुराण है यही विशेषता है ! यद्यपि मुक्तिभी निरोध काही भेद है परन्तु मुक्ति और निरोधके उपादेय (कार्य) भिन्नहैं इसी से इनको भी पृथक्२ वर्णन किया है ॥ ५ ॥

(संस्कृतार्थः) एवं प्रबन्धार्थमुक्त्वास्कन्धप्रयोजनमाह सर्गादय इति (सर्गादयः) लीलाया भेदाः पूर्वोक्ता ज्ञेयाः। (दश) दशसंख्यकाः (क्रमात्) यथासंख्यम् (तृतीयादिस्कन्धेषु) तृतीय आदिर्येषाम् ते च स्कन्धा द्वादश इत्यर्थः तेषु (उक्ताः) कथिताः क्रमश्चैषामयम्—तृतीयेसर्गः, चतुर्थे विसर्गः, पञ्चमेस्थानम्, षष्ठेपोषणम्, सप्तमऊतिः, अष्टमेमन्वन्तरम्, नवमे ईशानुकथा, दशमे निरोधः, एकादशे मुक्तिः, द्वादशे आश्रयः, इति। ॥ ४ ॥ (आद्ये) प्रथमस्कन्धे (श्रोतुः) शिष्यस्य (वक्तुः च) गुरोः च (लक्ष्म) लक्षणम् "चिन्हंलक्ष्मच लक्षणम्" इत्यमरः कथितमितिशेषः। (द्वितीये) द्वितीयस्कन्धे (श्रवणे) कथाश्रवणे (विधिः) विधानम् निरूपित इत्यवशिष्टः। इदामित्थं श्रोतव्यमितिविध्यर्थः। न च लीलाभेदानां सर्गादीनां निश्चिततया प्रथमद्वितीयस्कन्धयोरसत्वात् तत्राव्याप्तिरितिवाच्यम् गौणतया जगृहे पौरुषं रूपमित्यादिना तत्रापि दर्शितत्वात्। ननु पुनरपि "पुराणं दशलक्षण" मितिवचनात् मुख्यतया लीलाभेदाभावात् आद्यस्कन्धद्वये पुराणलक्षणस्याव्याप्तिरिति चेन्न दशासत्वेऽपि मुख्यमसंगतः वक्तृश्रोतृलक्षणस्यावश्यकतया न पुराणलक्षणहानिरन्यथा कथनश्रवणप्रवृत्तिरपि न स्यात्। उपसंहरति—इतीदामिति—(इति) अतः कारणात् (द्वादशस्कन्धम्) द्वादशस्कन्धायस्मिन् तत् विषयाणां द्वादशत्वात् द्वादशैवस्कन्धाइति तात्पर्यार्थः। (दशलक्षणम्) सर्गादयः दशलक्षणम् यत्र (पुराणम्) यत्तु "पुराणं पंचलक्षणम्" इत्यमरवचनात् सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। भूम्यादेश्चैव संस्थानं पुराणं पञ्च लक्षणम् इति प्रमाणाद्वा निश्चितं यत्तु व्यासादिप्रणीतमत्स्यादिपुराणपरं श्रीमद्भागवत-

स्य तु महापुराणत्वात् दशलक्षणपरत्वेन युक्तमन्यथा तयोर्विरोधादेकमपि न स्यात् । पुराभवम्–प्रा- यश्चिरमिति तद्भवद्युली । पूर्वकालिक इतिसूत्रं निपातनात् तुडभावः यद्वा पुरानिपात् पुराणम् पुराण प्रोक्तेष्विति सूत्रे निपातितम् । अथवा भूतभविष्यत्तावगीवर्णितं–आगाशरद्, पन्नाम् । न च मुक्ति- निरोधस्यैव भेद स्त्रयम्ये वक्ष्यति अतो नवलक्षणमेवमत्र युक्तम्—तर्हि दशैवऽप्युपाश्रयता मुक्तपरत्वात् पृथक् कथनमिति ॥ ५ ॥

(मू०) प्रथमेऽष्टादशाध्यायास्तत्र प्रकरणत्रयम ॥
त्रित्रिद्वादशभिर्लक्ष्यहीनमध्योत्तमत्वतः ॥ ६ ॥
श्रोतारः शौनको व्यासः परीक्षिच्चोत्तमाः क्रमात् ॥
वक्तारोऽपि तथा सूतो नारदः शुक इत्यमी ॥ ७ ॥

(भावार्थ) इसप्रकार स्कन्धोंके भेदका प्रयोजन कहकर प्रथमस्कन्धके अर्थको प्रकट करतेहुए प्रकरणोंको दिखातेहैं । प्रथम इत्यादिसे प्रथमस्कन्धमें अठारह अध्यायहैं और उसमें तीनप्रकरणहैं श्रोता वक्ताओंके हीन मध्यम उत्तमहोनेसे तीन २ और बारह इन अध्यायोंमें इन पूर्वोक्त तीनोंका यथाक्रम वर्णनहै । हीन और मध्यम इन दोनों में कुछही अन्तरहै इसीसे इनका तुल्य संख्या वाले तीन२ अध्यायोंमें ही वर्णनहै॥६॥

अब उनके वर्णनका प्रकार दिखातेहैं "श्रोतार" इस श्लोकसे श्रीमद्भागवत की कथा के सुनने वाले भी तीन हैं शौनक १ व्यास २ परीक्षित् ३ । शौनक हीन श्रोता हैं उनका प्रथम प्रकरण के तीन अध्यायों मे वर्णन है व्यास मध्यम श्रोता है वह पूर्वोक्त से कुछही अधिक है इसी कारण इनका दूसरे प्रकरण के तीन अध्यायों मे कथन है । परीक्षित् उत्तम श्रोता हैं यह सबसे उत्कृष्टहैं इसी लिये इनका उन पहिले दो की अपेक्षा चतुर्गुण बारह अध्यायों में वृत्तांत है । कोई यहां ऐसा कहतेहैं कि शौनक तथा व्यास हीन और मध्यम हैं । तौभी वृद्धत्व तथा गौरव होनेसे प्रत्यक्ष ग्रन्थ कर्ता ने हीन तथा मध्यम शब्दोंसे उच्चारण न किया किन्तु तथा आदि शब्द से चेष्टा द्वारा (इशारेसे) ही कथन कियाहै जैसे तीन श्रोता हैं वैसेही तीन वक्ताभी जानने सूत हीन वक्ताहैं । नारद मध्यम हैं । शुकदेवजी उत्तम वक्ता हैं । इनके अध्यायादिक की न्यूनाधिकता पूर्वोक्त क्रम के अनुसार जाननी ॥ ७ ॥

(संस्कृतार्थः) एवं स्कन्धभेदार्थं निरूप्य प्रथमस्कन्धार्थं प्रकटयन्नत्र प्रकरणान्युच्यन्ते–प्रथम इति–(प्रथमे)प्रथमस्कन्धे (अष्टादशाध्यायाः)अष्टादश संख्याका अध्यायाः सन्ति(तत्र) प्रथमस्कन्धे (प्रकरणत्रयम्) प्रकरणानां त्रयम् प्रकरणत्रयम् त्रीणि प्रकरणानीत्यर्थः । (त्रित्रिद्वादशभिः) नोवयोर्धर्मिविषमूलमूकेति सूत्रेणं द्विरूपवत्सान्निध्यात् नैकशेषः–एममन्यत्राप्यूह्यम् । त्रिभिरध्या- यैः पुनस्त्रिभिरध्यायैः अथच द्वादशभिरध्यायैरिति विशदार्थः । कस्मात्प्रकरणत्रयमेव तत्र हेतुमाह

(लक्षणहीनमध्योत्तमत्वतः) लक्ष्यहीनमध्यमोत्तमत्वात् अर्थात् लक्ष्यस्यश्रोतृवक्तृस्वरूपस्य हीनत्वेन मध्यमत्वेन उत्तमत्वेन च त्रैविध्यात् इतिभावः । मध्यपदेन मध्यमपदस्यबोधः । मध्यमहीनयोः किंचिदूनत्वादेवतयोः समसंख्यकैः त्रिभिः त्रिभिरेवाध्यायैर्वर्णनमिति सुधीभिर्विभाव्यम् । ॥ ६ ॥ तत्प्रकारमाह श्रोतार इति—(श्रोतारः) श्रीमद्भागवतकथाशुश्रूषवः (क्रमात्) यथासंख्येन (उत्तमाः) क्लिष्टकल्पनयाश्रोत्तमपदेनैकांगग्रहणाद्यथांगिनो ग्रहणं तद्वदेवहीनमध्यमयोः स्वीकारः तथा च शौनको हीनः श्रोता स च प्रथमप्रकरणे त्रिभिरध्यायैर्वर्णित इति स्फुटार्थः । व्यासस्तु मध्यमः श्रोता सत्वपि तस्मात्किञ्चिदाधिक्यत्वात् द्वितीयप्रकरणे तत्समसंख्याकैरेव त्रिभिरध्यायैर्निरूपित इति विशदार्थः । परीक्षिच्चोत्तमः श्रोता सर्वे सर्वोत्कृष्टत्वात् पूर्वापेक्षयाधिक्यैकादशभिरेवाध्यायैर्निदर्शित इति विकासतार्थः । केचित्तु शौनकव्यासयोर्हीनमध्यमत्वसत्वेऽपि वृद्धत्वात्तद्गौरवाच्च स्फुटतया ग्रन्थकर्त्रा नामोच्चारणं श्लोके न कृतं अपितु इंगितत्वेव विज्ञापितमिति वदन्ति । (अमीवक्तारोऽपि) कथावाचकाअपि (तथा) हीनमध्यमोत्तमाः के ते तानाह (सूतः) सूतो हीनो वक्ता । (नारदः) नारदो मध्यमो वक्ता । (शुकः) शुकदेवः उत्तमो वक्ता । एषां न्यूनाधिकता क्रमशः पूर्ववद्बोध्या ॥ ७ ॥

(मू०) वैराग्यस्य प्रकर्षेण प्रकर्षोऽत्र विवक्षितः ॥
तल्लक्षणपरः श्रोतुं वक्तुं चार्हति संहिताम् ॥ ८ ॥
पुराणेष्वितिहासैर्हि लक्षणादिनिरूपणम् ॥

(भाषार्थ) कैसे सर्व साधारण राजा परीक्षित के श्रोताओंकी गिनती में शौनक तथा व्यासजी से अधिक महत्व दिखाया । और कैसे योगसे परिपक्व नारद महर्षि से भी ज्यादा वक्ताओंकी गिनती में उत्कर्षता शुकदेवजी की कही ऐसा अपने चित्तमें विचार कर ग्रन्थ कर्ता इस बातको प्रकट करतेहैं वैराग्यस्य इस पद्यसे । इन तीनों श्रोता तथा वक्ताओं में वैराग्य की अधिकता से महत्त्व कहाहै मनुष्य, मुनि, बालक, वृद्ध चाहें कोई क्यों न हो किन्तु जिसमें प्रेमकी प्रबलता होगी उसीमें भक्ति की आधिक्यताजानो कुछ इसमें देवर्षि तथा ब्रह्मर्षियोंकी गणनाही नहींहै अर्थात् देवर्षि ब्रह्मर्षियों कोही भक्ति अधिकहो तथा मनुष्यों को न्यूनहो यह बातठीक नहीं ! शुकदेव जी का बडप्पन तो श्रीमद्भागवत में प्रसिद्धही है जब शुकदेव जी घर बार छोड़ वन को चले उनके पीछे२ ही पिता व्यासजी भी "अरे पुत्र कहाँ जाओ हो?? यह कहते२ चलदिये कुछ थोडी दूरही एक तालाब में नंगी स्त्रियें स्नान कर रही थीं वृद्ध व्यासजी को देख उन स्त्रियोंने लज्जा की परन्तु युवा शुकदेवजी को देख नहीं इसका यही तात्पर्य है कि यह शुकदेव जी भक्ति ज्ञान वैराग्य में अपने पिता व्यासदेवजी से भी अधिक हैं और न उनको अपने देहका अनुसन्धान था यह बात स्पष्टही है । परीक्षितभी श्रोताओंमें बडाही होना चाँहियें क्योंकि जो परीक्षित मुनिपुत्रसे सात दिनका अपना मरण सुन परमानन्दहो शीघ्रही भागीरथी के किनारे अनशन व्रतकर श्री कृष्णचन्द्र

आनन्दकन्दकी कथा में मग्नहो योगधारणासे अपने देहको त्यागताहुआ इसीसे शौनक व्यास इन दोनों से अधिक परीक्षितको कहाहै। जैसे इन श्रोता वक्ताओंने भागवतको सुना सुनाया इसी प्रकार अगाडी को जो ऐसे प्रेमवाले श्रोता वक्ताहोंगे उनकी पूर्वोक्त तीन प्रकार में संख्याहोगी और वेह कथा सुने। जिन श्रोता तथा वक्ताओंको जबतक प्रेम न होगा तब तक कथामें भी स्वाद तथा प्रेम न होगा क्योंकि प्रेम रहिततो अधिकारीही नहीं ॥ ८ ॥ पहिले स्कन्धमें श्रोतावक्ता का निर्णय है ऐसा व्यासजी ने तौकहीं नहीं लिखा इस शंकाको दूर करते हैं। निश्चयसे अष्टादश पुराणों में इतिहासों के द्वारा सर्ग विसर्गादि लक्षणों का निरूपण होताहै जैसे कि लोकमें जलके भरनेका प्रयोजन होताहै तौ मनुष्य—कुम्भार के घर से घट लाता है और जब प्रयोजन नहोतौ कुम्भार उस के घर आकरभी घड़ादे तौभी नहीं लेता इस प्रकारकी साधारण लौकिकयुक्तियें पुराणों में नहीं हैं किन्तु उनमें तौ इतिहासों के चातुर्य्य से अलौकिक चमत्कारद्वारा कार्योंकी प्रवृत्ति होती है अर्थात् पुराणों के ऐसे २ गंभीर आशय हैं कि कुछ तौ उनमें कथनहै और कुछ औरही उनका प्रयोजन है कथाप्रसंग से पुराणों का उपदेशभी सबका हितकारक तथा विश्वसनीय और चमत्कारिक है ॥ ७ ॥

(संस्कृतार्थः) ननुकथमत्र परीक्षितो नृपस्य सर्वसाधारणस्य श्रोतृगणनायां शौनकव्यासतः प्रकर्षः प्रोक्तः अपि च कथं वक्तृसंख्याने योगेन परिपक्वस्य नारदमहर्षेः सकाशाच्छुकस्याप्युत्कर्षोदर्शितः इति स्वचेतसि विचार्य ग्रन्थकर्त्ता तद्विशदयति वैराग्यस्येत्यादिना (अत्र) एषुत्रिषु श्रोतृषु वक्तृषु च (वैराग्यस्य)सर्वंत्यक्त्वा भगवतिदत्तचित्तो हि वैराग्यवत्तस्य (प्रकर्षेण) उत्कृष्टतया (प्रकर्षः) महत्त्वं (विवक्षितः) अभिमतः । मानवो मुनिर्वा बालो वृद्धोवायःकोऽपिस्यात् किन्तु यत्र प्रेमप्राबल्यं तत्रैवाधिकोभक्त्युद्रेकः नतु देवर्षिनारदादिष्वेवेत्यर्थः । शुकस्य प्रकर्षस्तु "यं प्रव्रजन्तमनपेतमपेतकृत्यम्,, इत्यादि वचनैः तथा कस्मिंश्चित् सरोवरे नानास्त्रियोनृद्गणापि व्यासंदृष्ट्वात्रपां चक्रे पुनस्तदग्रे यान्तं युवानं सगद्दष्टिं तं शुकमवलोक्य न लज्जितवत्यः इत्यादि प्रमाणैश्च सुस्पष्ट एव ।। परीक्षिच्च मुनिसुतशापं परमादरेणांगीकृत्यानशनं व्रतं विधाय भागीरथी तटनिकटे ग्रन्थपठनंकृत्वा 'कृष्णकथादत्तचित्तस्तत्रयोगधारणया स्वकलेवरं जहावीति वैराग्यो- ऽपि महानित्युत्तमत्वं ताभ्याम् । ननुकिमनेन प्रसंगेन प्राप्तम् तत्राह (तल्लक्षणः) तेन हीनमध्यमोत्तमवैराग्या लक्षणं यस्येतितल्लक्षणः यथा (संहितां) श्रीमद्भागवतीं (श्रोतुं वक्तुं च अर्हति) श्रवणंकर्तुं कथितुञ्च योग्यः तथैव (परः) इदानीन्तनः पुरुषः श्रीमद्भागवतीं संहितां शृणोतु श्रावयतुच इत्यर्थः । सर्वतः परमप्रेमवता श्रोत्रावक्त्रा च श्रुतमुक्तम्वावृत्तं परिणामे वैराग्योत्पादकं भवति न तु विगतरागेणेतिभावः ॥ ८ ॥ ननु प्रथमस्कन्धादिषु वक्तृश्रोतृनिर्णयाद्विविधीयते इतिमुनिना नहि कुत्रापि प्रदर्शितं तत्कथमवबुद्धं तत्राह पुराणेष्विति—(पुराणेषु) अष्टादशसुपुराणेषु (हि) निश्चयेन (इतिहासैः) इतिवृत्तकथनद्वारा (लक्षणादि) सर्ग विसर्गादि दशलक्षणमुक्तं (निरूपणम्) वर्णनम् कृत मितिशेषः । आदिपदात्पुण्यपापयोर्ग्रहणम् । इदमस्यान्तरीयं प्रयोजनम् —यथालोके घटजलाहरणप्रयोजने कुलालगृहं गत्वा कथयति घटं कुरु कार्यमनेनकरिष्यामीति प्रयोजनाभावेतु घटं नयेति कुम्भकारेण प्रेरितोऽपि घटंना कार्षीत् किम पिनानेन प्रयोजनं मदीयं

इत्यादयः साधारणयुक्तयो भवन्ति पुराणेषु नैवं विधास्तत्र तु इतिवृत्तकथनचातुर्यलौकिकचमत्कारादिना कार्यप्रवृत्त्यादिर्युच्यते न स्फुटतया। किञ्चपुराणोपदेशोऽपि कथा प्रसंगेन प्रतिपदं सार्वजनीनं विश्वसनीयं भंगियुक्तञ्च भवतीतिभावः ॥ ७ ॥

(मू०) वेदः पुराणं काव्यञ्च प्रभुर्मित्रं प्रियेवच ॥ ९ ॥
बोधयन्तीति हि प्राहु स्त्रिवृद्भागवतं पुनः ॥

(भाषार्थ) अब जो कि प्राचीनों का आचार तथा प्रचार है उसे पुष्ट करते हैं वेद इत्यादि से । अधिकारियों के पृथक् २ तथा तीन होनेसे उपदेश तीन प्रकार का है । जिन की योगसे अत्यन्त परिपक्व (पकी) बुद्धि है वेह पुरुष वेद में अधिकारी होसक्ते हैं । योगी हों या न हों किन्तु श्रद्धालु हों वहीं पुराणों में अधिकारी मानेगये हैं । जोकि सुकुमार मति (कोमल बुद्धिवाले) हैं वेह काव्यरस वेत्ता हैं । वेद में शब्द की मुख्यताहै । पुराणोंमें अर्थकी दृढताहै। काव्य में रसकी पुष्टता है । इसी कारण इन सब के यथायोग्य अधिकारी उत्तमादि होते हैं । वेद स्वामी के तुल्य पुरुष को सब करने योग्य कामों में नियुक्त करता है । जैसे कि स्वामी की आज्ञा में भला बुरा न विचार सेवक भली प्रकार कार्य करतेहैं । तैसे ही प्रतिदिन संध्या करे इत्यादि वेद बचनोंको मान द्विज आदि उन २ कार्य्यों में प्रवृत्त होते हैं । पुराण मित्र के तुल्य आज्ञा करता है जैसे मित्र मित्र को स्वामी के समान आज्ञा नहीं देते किन्तु युक्ति से बोध कराते हैं तैसे ही हे मित्र देखो सदाचरण और सत्य बोलने से युधिष्ठिर को जय की प्राप्ति तथा राज्य का लाभ हुआ । निषिद्धाचरण और असत्य बोलने से दुर्योधन की पराजय तथा हरण हुआ। ऐसा मन में विचार आप युधिष्ठिर के समान आचरण करो और दुर्योधन के समान नहीं यही उपदेश पुराणों का है । रघुवंशादि काव्य पुरुष को निज प्रियतमा (प्राणप्यारी) के समान प्रार्थनाकर समुझाते हैं यथा जैसे कोई स्त्री भ्रुकुटि कुटिल कर मन्द २ हँस बल से कामी को अपने आधीन करे है और वह कामी भी उसके मानसिक विचारके अनुसार अवश्य उन२ कार्य्योंको साधनकरैहै ऐसेही काव्य अपना लोकोत्तर चमत्कार दिखाय मानो हठ से पुरुष को अपने आधीन कर तथा रसिक जन के मन को सरस कर रामचन्द्र जीके अनुकूल सुकर्म करने और रावण के समान कुकर्म न करने इत्यादि कार्य तथा अकार्य की प्रवृत्ति तथा निवृत्ति इस उपदेशद्वारा आज्ञा देता है । यह तीनों मिलकर इत्यादि बातों को सूचन्न करते हैं ऐसा प्राचीनोंका निश्चय है । (शंका) प्रकरण के अनुसार पुराण का वर्णन करना तो युक्तियुक्त

है परन्तु वेद काव्य के वर्णन करने का कुछभी प्रयोजन नहीं और यह प्रकरण विरुद्ध भी है (उत्तर) श्रीमद्भागवत पुराण तो वेद, काव्य, पुराण इन तीनों के तुल्य उपदेश करता है इसी हेतु से इस ग्रन्थ में कहीं वेद के समान उपदेश है और कहीं काव्य के तुल्य आदेश है तथा कहीं पुराण के नाईं आज्ञा का वर्णन है यह तात्पर्य जानना ।

(संस्कृतार्थः) पूर्वत्र प्राचीनाचारप्रचाराभ्यां [illegible] पुराणानि वेद इति [illegible] पाने कपात् त्रिरवाचापदेशोऽपि त्रिविधः । [illegible] वेदेऽपि [illegible] । [illegible] भवन्तु मा भवन्तु किन्तु ये श्रद्धावन्तः सन्तः सन्ति ते पुराणेषु । ये न [illegible] तेन [illegible] । वेदे शब्दस्य मुख्यता । पुराणेऽर्थस्य दृढता । काव्यच रसस्यैव ॥ । एवं यथा [illegible] न्ते । (वेदः) ऋग्वेदादिः (प्रभुरिव) स्वामी यथा [illegible] नरं नियोजयति तथा [illegible] म्यादेशविरुद्धानिष्टेष्टापविचारेण सेवकः [illegible] " [illegible] नफलंज भक्षयेत् ,, इति वेदविहित [illegible] प्रवर्तन्ते । (पुराणम्) शिवविष्णु पुराणादि (मित्रमिव) सुहृदिवाज्ञापयति यथा सुहृदः सुहृदं [illegible] किन्तु युक्त्याऽऽगयन्ति तथैव सदाचरणात् सत्यानुष्ठानात् [illegible] नि· षिद्धाचरणादसत्यभाषणाच्च दुर्योधनस्य पराजयो राज्यापहरणमासीत् इति [illegible] भवता.सता युधिष्ठिरवेव भवितव्यम् नवा दुर्योधनवदित्युपदेशः । (काव्यम्) रघुवंशादिकाव्यम् (प्रियेव) प्रियतमा स्ववशंपत्नीवत् प्रार्थयति यथा [illegible] व कामिनं स्वाधीनं करोति सचानदं तदाधीनतामंगीकृत्य तथा काव्यं [illegible] हठादि वस्ववशमानीयरसिकजनमनःसरसीकृत्य रामादिवत्प्रवर्तितव्यं नच रावणादिवदित्यादि कार्याकार्यप्रवृत्तिनिवृत्त्युपदेशद्वारेणादिशति । इति [illegible] त्रीणि इमानि बोधयन्ति [illegible] (इति) अमुनाप्रकारेण (हि) निश्चयेन प्राचीनाः [illegible] (प्राहुः) [illegible] कथयामासुः [illegible] । नन्वत्र प्रस्तुते पुराणप्रसंगे किमनयोः वेदकाव्योर्विचारः तत्राह (भागवतम्) श्रीमद्भागवतं पुराणं (त्रिवत्) त्रिभिः वेदकाव्यपुराणैः समानं बोधयति । अ- स्मिन् ग्रंथे कचित् वेदवदुपदेशः कुत्रचित् काव्यवत् कचन पुराणवत् इत्यर्थः ॥

(मू०) पञ्च प्रश्नाः शौनकस्य सूतस्यात्रोत्तरं त्रिषु ॥ १० ॥
अवतारप्रश्नयोश्च व्यासस्यानिर्वृतिः कृतात् ॥
नारदस्यात्र हेतूक्तिः प्रतीत्यर्थं स्वजन्म च ॥ ११ ॥

(भाषार्थ)—पहिले प्रकरणों के अर्थों को कहकर यथाक्रम श्लोकके एक२ चरण से अध्यायों के अर्थों का निरूपण करते हैं अर्थात् कवि ने एक २ अ- ध्यायके प्रयोजन को चौथाई २ श्लोक में वर्णन किया है अब उसी को दिखाते हैं—सूत के प्रति शौनक के पाँच प्रश्न हैं यही प्रथम स्कन्ध के पहिले अध्याय में निरूपण है । सम्पूर्ण वेद तथा शास्त्रों का जो गूढाशय है उसके सुनने के बहाने से " नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे " इस प्रथम स्कन्ध के प्रथमाध्याय के चतुर्थ

श्लोक ४ से लेकर " येनात्मासंप्रसीदति " इस ग्यारहवें श्लोक ११ तक कृष्ण उपासना का प्रश्न है यही उन पाँच प्रश्नों में से पहिला प्रश्न जानना । १ । वह परमात्मा रूपी कृष्ण साकार तथा निराकार भेद से दो प्रकार का है उन दो प्रकारों में केवल साकार उपासना का प्रश्न " सूत जानासि भद्रन्ते " इस वारहवें १२ श्लोक से लेकर १३ तेरहवें के आधे " अहंस्यंगानुवर्णितम् " यहां तक दूसरा प्रश्न समुझना । २ । उस के भी श्रवण आदि भेद हैं उन भेदोंके प्रसंग से श्रवणकी सिद्धि होनेपर " यस्यावतारो भूतानाम् " इस तेरहवें १३ के आधे श्लोक से " लीलयादधतः कलाः " इस सत्रहवें १७ श्लोक पर्यन्त श्रीकृष्ण लीला का तसिरा प्रश्न वर्णन किया है ।। ३ ।।

उसके आन्तरीयकता अर्थात् भीतरी वात होनेसे " अथाख्याहि हरेः ,, इस अठारहवें १८ श्लोक से लेकर " स्वादु स्वादु पदे पदे ,, इस उन्नीस १९ श्लोक तक चौथा ४ अवतार लीला का प्रश्न जानो ।। उस अवतार में भी सार भूत होनेसे " कृतवान् किल ,, इस वीसवें २० श्लोक से लेकर अध्याय समाप्ति तक कृष्णावतार लीला का प्रश्न पांचवां जानना ।। ५ ।। इन प्रश्नों में भी उत्तरोत्तर प्रश्नको मुख्यता है अर्थात् कृष्णोपासना रूप प्रथम प्रश्न से साकार उपासना रूप द्वितीय प्रश्न को मुख्यता है । पुनः दूसरे साकार उपासनारूप प्रश्न से कृष्ण लीला रूप तीसरे प्रश्नको प्राधान्यता है। और कृष्ण लीला रूप तीसरे प्रश्न सै अवतार लीला चौथे प्रश्न को उत्तमता है। तथा अवतार लीलारूप चौथे प्रश्नसै कृष्णावतार लीला रूप पाँच में प्रश्नको श्रेष्ठयता है यह जानना । किन्तु उत्तर प्रश्नसे पूर्व प्रश्न का खण्डन नहीं होसकता यदि ऐसा स्वीकार करोगे तौ कथनके भंग का प्रसंग होने लगेगा । यही प्रथमस्कन्ध के प्रथमाध्याय में प्रतिपाद्य अर्थ है यह अर्थ "पञ्चप्रश्नाःशौनकस्य,, इस श्लोक के एक चरण से निरूपण कियाहै इसी प्रकार आगेके सब अध्याय जानो पहिले अध्यायमें वर्णनकियेहुए उनपांचप्रश्नों मेंसे पहिले तीनप्रश्नोंका उत्तरही इस दूसरे अध्याय में दिया है । " नैमिषे ,, इत्यादि प्रथमाध्याय के कृष्ण उपासना रूप प्रश्न का उत्तर "सवै पुंसांपरोधर्मः,, इस दूसरे अध्याय के छटे ६ श्लोक से लेकर,, कुर्वन्त्यात्म प्रसादनीं,, इस वाइसवें २२ श्लोकतक लिखाहै । और सूतजानासि ,, इस साकार उपासनारूप दूसरे प्रश्नका उत्तर,, सत्वंरजस्तम इति,, इस तेईसवें २३ श्लोक से लेकर,, वासुदेवपरागति,, इस उन्तीस २९वें श्लोकतक कहाहै तथा । "यस्यावतारः,, इस तीसरे कृष्णलीलारूप प्रश्न का उत्तर "सएवेदम्,, इस तीसवें ३० श्लोक से लेकर अध्याय समाप्तितक कथन किया है । यही तीन उत्तर इस द्वितीय अध्याय में—प्रतिपादन कियेहैं ।। १० ।।

(अवतार प्रश्नयोश्च) चकारसे उत्तर का बोध होता है । यहां एकशेषसमास होनेसे दो प्रश्नहोते हैं एकतो अवतारलीला प्रश्न दूसरा कृष्णावतारलीला प्रश्न । "अथाख्याहि,, इस अवतारलीलारूप चौथे प्रश्न का "जगृहेपौरुषंरूपम्,, इस तीसरे अध्यायके पहिले श्लोक से लेकर "सप्रजापतयस्तथा., इस सत्ताइस २७ वें श्लोक तक उत्तर जानना । "कृतवानिति,, इस कृष्णलीलावताररूपीपाँच में प्रश्न का उत्तर "एतेचांशकला: पुंस:,. इस अट्ठाईसवें २८ श्लोक से लेकर तृतीयाध्याय के समाप्ति तक है । यही तृतीयाध्याय का अर्थ है ॥ ३ ॥

(व्यासस्यानिर्वृत्तिः कृतात्) यद्यपि व्यासदेवजीने सब शास्त्रों के प्रयोजन का भण्डार महाभारत पुराणको रचा तथापि शान्ति न हुई । यद्यपि यह सारे ही अध्याय का गौणरूप से तात्पर्यहै तथा "सकदाचित्सरस्वत्या,, इस पँद्रहवें १५ श्लोक से लेकरमुख्यता से अध्याय समाप्ति तक यह प्रसंग जानना यही चौथे अध्याय का प्रयोजन है ॥ ४ ॥ (नारदस्यात्रहेतूक्तिः) यद्यपि आपने सर्वांग सुन्दर महाभारत पुराण को रचा तथापि उस में निरन्तर नारायण के चरित का वर्णन नहीं है यही इस समय आप के असन्तोष का कारण है इस प्रकार नारद जीका जो व्यासजी के प्रति कथनहै वही इस पाँचमें अध्याय का प्रयोजन है । यही पंचमाध्याय का अर्थ है ॥५॥ (प्रतीत्यर्थं स्वजन्म च) इस अध्यायमें व्यासजी के विश्वासके अर्थ इस छटे अध्याय में नारदजी ने अपने जन्मकी प्राप्ति प्रतिपादन की है । अर्थात् पहिले जन्म में भगवतभक्तोंसे दी हुई जो भक्ति उस भक्तिके प्रभाव से निरन्तर नारायणके चरणों का स्मरण करतेहुए मुझको नारदत्व जन्मकी प्राप्तिहुई यह कथा मानों व्यासजी के विश्वासके दृढ करनेको कही है । यही प्रथम स्कन्ध के छटे अध्याय का प्रयोजन है ॥ ६ । ११ ॥

पूर्वप्रकरणार्थं कथयित्वा क्रमशश्चरणैरध्यायार्थान् विवृणोति पंचेत्यादिना (पंच प्रश्नाः शौनकस्य) शौनकस्य सूतम्प्रति पंच प्रश्नाः सन्ति इति प्रथमाध्याये निरूपितम् । निखिलनिगमागमगूढाशयश्रवणप्रश्नापेक्षेण " नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ,, इत्यादिना कृष्णोपासनाप्रश्नइत्येकः प्रश्नः ॥ १ ॥ तस्य साकारनिराकारभेदाद्द्विविधतया "सूत जानासि भद्रं,, मित्यादिना साकारोपासनप्रश्नःइति द्वितीयः प्रश्नः ॥ २ ॥ तस्य श्रवणादि भेदप्रसंगतः श्रवणसिद्ध्यर्थं " यस्यावतारोभूतानामित्यादिनाकृष्णलीलाप्रश्नः इतितृतीयः प्रश्नः ॥ ३ ॥ ततोऽवान्तरीयकतया "अथाख्याहि हरेरित्यादिनावतार लीलाप्रश्न इतिचतुर्थः प्रश्नः ॥ ४ ॥ तास्मिन्नपि सारभूतत्वात् "कृतवान् किलेत्यादिना कृष्णावतारलीलाप्रश्नः इति पंचमः प्रश्नः ॥ ५ ॥ एषां च प्रश्नानामुत्तरोत्तर मुख्यता न तु परेण पूर्वस्य प्रत्याख्यातमन्यथा तत्कथनभंगप्रसंगापत्तेः । इदानीमाद्य स्कन्धप्रथमाध्यायस्यप्रतिपाद्योऽर्थः "पंच प्रश्नाः शौनकस्ये,, त्यनेनैकेन चरणेन निरूपित । इत्युत्तरमखिल पादेषु बोध्यम् (सूतस्यात्रोत्तरांत्रिषु) अत्र पूर्वाध्यायोक्तेषु पंचसु प्रश्नेषु मध्ये त्रिष्वाद्येषूत्तरं

द्वितीयाध्यायस्यार्थः—त्रिष्विति षष्ठ्यर्थे सप्तमी सत्यामपि विषयसप्तम्यां सम्बन्धतः प्राबल्यात् षष्ठ्येवसाध्वी । नैमिषे इत्याद्यप्रश्नस्योत्तर "सवै पुंसांपरोधर्मः, सूतजानासीतिद्वितीयप्रश्नस्य "सत्वं रजस्तम,, इत्युत्तरम्, "यस्यावतार इति तृतीयस्य च "सएवेद,, मित्युत्तरं बोध्यम् । इति द्वितीयार्थः ॥ (अवतार प्रश्नयोश्च) चकारादुत्तरं सूच्यते—अवतार प्रश्नश्च अवतार प्रश्नाश्च तौ अवतार प्रश्नौ तयोः अवतार प्रश्नयोरित्येक शेषः । यद्यप्यत्रावतारप्रश्नयोरिति सामान्येन निर्देशस्तथापि विशेषतोऽवतारलीला प्रश्नः एकः कृष्णावतारलीला प्रश्नः द्वितीयश्चेति बोध्यम् । अथाख्याहीति चतुर्थ प्रश्नस्य "जगृहे पौरुषंरूप,, मित्युत्तरम्, कृतवानिति पंचमप्रश्नस्य चोत्तर "मं ते चांशकलाः पुंसः इति । तृतीयार्थः (व्यासस्यानिर्वृतिः कृतात्)कृतात् भारतादेः अनिर्वृतिरसंतोषः—यद्यपि श्री व्यासदेवमुनिना सर्वशास्त्रार्थगर्भमहाभारतपुराणमपि विनिर्मितं तथाप्यस्यमुनेः सन्तोषो न जात इति । इति चतुर्थार्थः ॥ ४ ॥ (नारदस्यात्र हेतूक्तिः) अत्रानिवृत्तौ—अविरतं त्वया नारायणचरितं न वर्णितमिति तवाद्यासंन्तोषे इद मेव कारणम् इतिनारदस्य व्यासं प्रत्युक्तिरस्मिन्नध्याये इति भाव: इति पंचमार्थः ॥ ५ ॥ (प्रतीत्यर्थं स्वजन्मच)—व्यास प्रत्ययार्थं नारदेन स्वजन्म प्राप्तिः प्रतिपादिता । पूर्वजन्मनि भगवद्भक्तप्रदत्तभक्तिप्रभावात् निरन्तरंनारायणचरणस्मरणकुर्वतो ममापरजनुषि नारदत्वप्राप्तिरभूदिति दृढीकृतमितितात्पर्यम् ॥ इति षष्ठार्थः

सुप्तघ्नद्रौण्यभिभवस्तदस्त्रात्पांडवावनम् ॥
भीष्मस्य स्वपदप्राप्तिः कृष्णस्य द्वारकागमः ॥ १२ ॥
श्रोतुः परीक्षितो जन्म धृतराष्ट्रस्य निर्गमः ॥
कृष्णमर्त्यत्यागसूचा ततः पार्थमहापथः ॥ १३ ॥
भूधर्मयोः कलेर्भीतिः ततस्त्राणं परीक्षिता ॥
परीक्षितो ब्रह्मशापः प्रायेऽस्य शुकसंगमः ॥ १४ ॥

(भाषार्थ)—(सुप्तघ्नद्रौरायभिभव:) सोते हुए बालकों को मारने वाले अश्वत्थामा का तिरस्कार । यहाँ सुप्तघ्न पद का यही भाव है कि जिसने सोतेहुए बालकों को मारा उस्का अवश्य तिरस्कार होना योग्य है । और द्रौणी इस शब्द से यही तात्पर्य निकलता है कि गुरु द्रोणाचार्य का पुत्र है इसी से मारने योग्य भी नहीं है क्योंकि यही धर्मशास्त्र में लिखा है यदि गुरु का पुत्र कोई भी अपराधकरै तौ भी उस्को प्राणदण्ड न दे ॥ अबकुछ मत भेद कहना है यथा—वोपदेव के मत में छटे अध्याय के पहिले श्लोक से लेकर सप्तमाध्याय के ग्यारहवें श्लोक तक छटाही अध्याय माना है अर्थात "एवं निशम्य भगवान्,, । इस श्लोक से— "नित्यं विष्णुजनप्रिय!,, इस श्लोक तक छटा ही अध्याय है तदनन्तर ही सातवें अध्याय का प्रारम्भ अर्थात्—"परीक्षितोऽथ राजर्षे:!,, इस बारहवें श्लोक से—अध्याय समाप्ति तक ही सातवाँ अध्याय है यदि ऐसा न मानोंतौ एक प्रसंगमें दो

प्रसंगों का मेल होता है। ७। यही सातवें अध्याय का प्रयोजन है (तदस्त्रात्पाण्डवावनम्) उस अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्र से पांडवोंकी रक्षा करनी। और कुन्तीने जो श्रीकृष्णकी स्तुति करी है वह मुख्यप्रसंग नहींहै किन्तु पांडवरक्षा प्रसंगसे है इसी के अवान्तर भेदहै। अब कुछ औरोंके मतसे विलक्षणता दिखाते हैं—"व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः,, इस अष्टम अध्याय के छयालीस ४६ वें श्लोक से लेकर अध्याय समाप्ति के बावन ५२ श्लोक तक यह सात श्लोकभी नवम अध्यायकी भूमिका है यहभी नवम अध्याय में ही जानने यदि ऐसा न मानोगे तो यहांभी पहिले के समान एक प्रसंग में दूसरे प्रसंग का प्रवेश होकर गडबडी मच जायगी यह विचारभी वोपदेव जी का युक्ति युक्त है। ८। यही अष्टमाध्याय का अर्थ है। (भीष्मस्यस्वपदप्राप्तिः) कृष्णादि का दर्शनकर भीष्मजीकी स्वपदप्राप्ति अर्थात् उत्तरायण में स्वर्गादि लोक का गमन। यही नवमाध्याय का प्रयोजन है॥ (कृष्णस्य द्वारकागमः) श्रीकृष्णचन्द्रका द्वारकापुरी में जाना। यहांभी वोपदेवजी औरोंसे अपनेमत का भेददिखाते हैं—इस प्रथमस्कन्ध का दशवां तथा ग्यारहवां अध्याय एकही हैं क्योंकि दोनोंमें द्वारिका के जानेकाही प्रसंग आता है इस प्रसंग के एक होनेसे अध्यायभी अवश्य एकही होना चाहिये। इसी कारणं इन्होंने इस प्रथम स्कन्धके अठारह १८ अध्यायमाने हैं तथा औरोंने उन्नीस १९स्वीकाराकिये हैं वोपदेवजी के सामने उन उन्नीस मानने वालोंका मत निर्युक्तिक है। यही दशमअध्यायका अर्थ है १०। (श्रोतुः परीक्षितो जन्म) शुकदेवजी के मुख से कृष्णकथा के सुननेकी इच्छाकरने वाले राजापरीक्षित का जन्म। ११। (धृतराष्ट्रस्य निर्गमः) पुत्रों के मरणसे दुःखित अपने भ्राता विदुरजी के उपदेशसे धृतराष्ट्रकाप्राणत्यागार्थ उत्तरदिशाकी ओर जाना। १२। यही बारहवें अध्याय का प्रयोजन है॥ (कृष्णमर्त्यत्यागसूचा) श्रीकृष्णजी आज इस अभागी भूमिको छोड़ कर वैकुंठपुर पधारे यह समाचार दुःखित अर्जुन को देख तथा अपनी स्फूर्ति से जान लिया तेरहवें अध्याय का अर्थहै १३। (ततःपार्थमहापथः) श्रीकृष्णजी पृथ्वीको छोड़ गये इसको भलीभांति जान पाण्डवोंनेभी देहत्यागार्थ हिमालयको गमन किया। १४। चौदहवें अध्याय का प्रयोजन है (भूधर्मयोः कलेर्भीतिः) गो रूप पृथ्वी तथा वृषभ रूपधर्मको कलियुग से भय। यही पन्द्रह में अध्याय का अर्थ है। (ततस्त्राणं परीक्षिता) गोरूप के धारण करनेवाली धरणी तथा वृषभ रूप के धारण करनेवाले धर्मके पीछे दौड़ते हुए तथा शूद्रके रूपको धारण करने वाले कलियुगको जान कर राजापरीक्षित ने उस कलियुग का निग्रह किया तथा उस पृथिवी और धर्मका पालन किया। १६। सोलहवें अध्याय का अर्थ है (परीक्षितो ब्रह्मशापः) परीक्षित से गिराये हुए तथा

पिता के गले में लिपटे हुए मरेसर्प को देख क्रोध कर आज से सातवें दिन यही सर्प तुझे काटेगा यह ब्राह्मण कुमारने राजाको शाप दियाहै । १७ । यही सत्रहवें अध्याय का अर्थ है (प्रायेऽस्य शुकसंगमः) संन्यासपूर्वक निराहार व्रतको प्रायः कहते हैं उसके धारण करने से गंगाके किनारे बैठे हुए राजा परीक्षित से शुकदेवजीका संगम होना १८ यही अठारहवें अध्याय का अर्थ है १४ ॥

(संस्कृतार्थः) (सुप्तघ्नद्रौण्यभिभवः सुप्तान् शयनं कुर्वतः पांडवशिशून् हन्तीति सुप्तघ्नः द्रोणस्यापत्यं पुमान् द्रौणिः अश्वत्थामा इत्यर्थः । सुप्तघ्नश्चासौ द्रौणिः तस्य अभिभवः तिरस्कारः । हेतुगर्भितमश्वत्थाम्नो विशेषणद्वयम्—सुप्तघ्नत्वात्तिरस्करणीयः, गुरुद्रोणसुतत्वादवध्य इत्यर्थः । इदानीं मत भेदतः किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति तदुच्यते—बोपदेवमते षष्ठाध्यायस्याद्य श्लोकमारभ्य सप्तमाध्यायस्यैकादशश्लोकान्तः षष्ठ एव तदनन्तरं सप्तमाध्यायस्य प्रारंभः अन्यथा प्रसंगद्वयस्य समावेशः स्यादितिभावः । इति सप्तमाध्यायार्थः ॥ ७ ॥ (तदस्त्रात्पांडवावनम्) तस्याश्वत्थाम्नोऽस्त्रात्पाण्डवानां भवनं रक्षणं, कुन्ती प्रार्थना तु पांडवरक्षाप्रसंगात्—किञ्चिदन्यमततो विलक्षयति—व्यासा येरीश्वरेहाज्ञैः ,, इमत्सष्टमाध्यायस्यषट् चत्वारिंशतिमं ४६ श्लोकमारभ्याध्यायसमाप्तेः द्विपञ्चाशतश्लोकपर्यन्ता नवमाध्यायस्यभूमिकाऽन्यथा प्रसंगद्वयस्यैकत्वं भवेदत इत्युक्तंबोपदेवविदुषा ॥ इत्यष्टमाध्यायार्थः ॥ ८ ॥ (भीष्मस्य स्वपदप्राप्तिः) यतोभ्वस्तो जगतिपतितस्ततस्वपदं स्वस्थानं भीष्मस्य गंगासुतस्य स्वपदप्राप्तिः स्वर्गादिलोकगमनमुत्तरायणे इति नवमाध्यायार्थः ॥ ७ ॥ (कृष्णस्य द्वारकागमः) कृष्णस्य द्वारकापुर्यां गमनमित्यर्थः । बोपदेवोऽन्यतः स्वमत भेदं प्र॰ाशयति—दशम एकादशश्चैक एव द्वारकागमनप्रसंगस्यैकत्वात् ॥ १० ॥ इति दशमाध्यायार्थः. (श्रोतुः परीक्षितो जन्म) श्रोतुरिति हेतुगर्भविशेषणम् । शुकमुखात् कृष्णकथां श्रोतुमिच्छोः परीक्षित उत्पत्तिरस्यार्थः ॥ ११ ॥ इति एकादशाध्यायार्थः (धृतराष्ट्रस्य निर्गमः) पुत्रमरणान्निर्विण्णस्य धृतराष्ट्रस्योदगगमनम् इत्यर्थः ॥ १२ ॥ इति द्वादशाध्यायार्थः (कृष्णमर्त्यत्यागसूचा) कृष्णेन मर्त्यदेहोलोको वा त्यक्त इति युधिष्ठिरेण दुखितार्जुनमवलोक्य स्वस्फूर्त्या निश्चितः इति तृयोदशाध्यायार्थः (ततः पार्थमहापथः) ततः त्यक्तः कृष्णेन भूमि इति सम्यग ववुध्य पार्थानां पाण्डवानां महापथो मरणार्थं प्रयाणं हिमालये । इति चतुर्दशाध्यायार्थः (भूधर्म गोः कलेर्भीति) गोरूपायाः पृथिव्याः, वृषभरूपस्य च धर्मस्य कलेः सकाशात् भीतिः भयप्राप्तिः ॥ १४ ॥ इति प्र॰पञ्चदशाध्यायार्थः (ततस्त्राणां परीक्षिता) गोरूपधरांधरणीं वृषभरूपधरं धर्म मनुधावन्तं धृतशूद्ररूपं कलिंज्ञात्वा परीक्षिता नृपेण तस्य निग्रहः तयोश्च त्राणं पालनं कृतमित्यर्थः ॥ इति षोषशाध्यायार्थः (परीक्षितो वप्रशापः) परीक्षित् पातितं पितृगलगुण्ठितं मृतमुरगं दृष्ट्वा ब्राह्मणबालकेन सप्तमेन्हि अयमेव दक्ष्यतीति शापोदत्तः ॥ १६ ॥ इति सप्तदशाध्यायार्थः ॥ (प्रायेऽस्य शुकसंगमः) संन्यासपूर्वकं निराहार व्रतमेव प्रायः तत्कृते अस्य परीक्षितः ॥ १७ ॥ शुकसंगमः शुकदेवप्राप्तिः । इत्यष्टादशाध्यायार्थः ॥ १४ ॥

(मू॰) इत्यष्टादशाभिः पादैरध्यायार्थः क्रमात्स्मृतः । १५ ।
स्वपरप्रतिबन्धोनं स्फीतं राज्यं जहौ नृपः ।
इति वैराग्यदार्ढ्योक्त्यै प्रोक्ता द्रौणिजयादयः । १६ ।

(भापार्थ) इसप्रकार अठारह पादों द्वारा (एक२ पाद से एक२ अध्याय का वर्णन इस क्रमद्वारा) अठारह अध्यायोंका निरूपण किया । १९ । यदि बारह अध्यायों में उत्तम श्रोताका वर्णन किया है तो फिर प्रसंग विरुद्ध द्रोणि जयादि सात क्यों वर्णन किये इस शंका के उत्तर में "स्वपर प्रतिबन्ध,, इस श्लोक का प्रमाण देते हैं—राजा परीक्षित् अपने तथा दूसरे के विघ्नों से रहित तथा वृद्धि युक्त राज्यकोभी छोड देतेहुए इसी कारण यह सिद्ध होताहै कि वैराग्यकी दृढता दिखाने के अर्थ द्रोणि जयादि सात का निरूपण किया अर्थात् जिस के अपने पक्ष के तथा शत्रुपक्ष के कोई मनुष्य अपने से बलवान हो तबतो राज्य का छोड देनाही ठीक है परन्तु अपने पक्ष वाले धृतराष्ट्र भीष्म पाण्डवोंके यात्रा करने पर तथा परपक्ष वाले अश्वत्थामा आदि के तिरस्कार द्वारा शमनहोने परभी केवल वैराग्यही के हेतु राजा ने राज्य छोडा और कोई कारण नहीं यदि कोई कहे कि विप्रशाप से व्याकुल चित्त वाले राजाको कैसे वैराग्य प्राप्ति होसक्ती है यह कहना ठीक नहीं क्योंकि शाप के सुनने से पहिलेही "अथेविहायेम,, इस श्लोकके द्वारा सिद्ध होता है कि राजाको पहिले ही से वैराग्य था यह प्रथमस्कन्ध के अन्तिम (अन्त के) अध्याय का पाँचवाँ श्लोक है । महाभारत आदि में यह भी लिखा है कि जब राजाको शाप की खबर हुई तब एक बडे भारी स्थान को बनवाकर चारों तरफ से पैरेदार विठादिये और सात में दिन जब राजाको वही मराहुआ सर्प जीकर काटने आया तो बीच में एक ब्राह्मणभी उस सर्प को मिला और उस सर्प ने ब्राह्मण से पूँछा कि तुम कहां जाते हो ब्राह्मण ने उत्तरदिया कि मैं राजा को सर्प के विष से अच्छा करूँगा यह सुनते ही सर्प ने एक वृक्ष में फुँकारमारी और वह वृक्ष भस्म होगया उसी समय ब्राह्मण ने मन्त्र पढ जभी जल उस वृक्ष पर छिडका तो वह वृक्ष हराभरा होगया यह देख वह सर्प वडा चकितहुआ ब्राह्मण को कुछद्रव्य दे तथा ऐसी ही भवितव्यता है यह प्रार्थना कर उस को विदा किया यह कथा दूसरेकल्पकी है क्योंकि कल्पोंके भेद होतेही रहतेहैं इस कारण न्यायसिद्धान्त मुक्तावलीमें भी कल्प भेद मानकर ही नृसिंह में जातिका स्वीकार किया है इसी वातको हम ने उसी मुक्तावली के भापाटीके में वहुत अच्छेप्रकार से समुझाया है यह भापाटीका हमने काशी तथा वृन्दावन में अनेक न्यायादि शास्त्रों को पढ वहुत परिश्रम से सविस्तार वनाया है इस को मँगाकर आपलोग अपने अनेक शंसयों को दूर करैं ॥

इति प्रथमस्कन्धः ॥

दोहा ॥

श्री नारायणदास जी सारस्वत गुणरास ।
तिनकेहिसुत हरिचरणरत बैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
प्रथमस्कन्धसमाप्तलखि बुधजनपावहिंहर्ष ॥

(सँस्कृतार्थः) (इति) अनुना प्रकारेण (अष्टादशभिः) अष्टादशसंख्याकैः (पादैः) चरणैः श्लोकचतुर्थांशैरित्यर्थः । पादो बुध्नेतुरीयांशे इतिमेदिनी । अध्यायानाम् अष्टादशानाम् (अर्थः) प्रयोजनम् (क्रमात्) यथासंख्यातः (स्मृतः) कथितः । परमते त्वेकोनविंशतिसंख्यका अध्यायाः प्रथमे ; ग्रन्थकर्तृमतेत्वष्टादश इति तत्र युक्तिदार्ढ्यात् ॥ १५ ॥ नन्वत्र द्वादशभिरध्यायैस्तमे प्रतिपादितेऽपि किमित्यलाक्षितानागनवयवानां द्रौणिजयादीनांसप्तानांविन्यासः— तत्राह स्वपरेत्यादिना (नृपः) राजा परीक्षित् (स्वपरप्रतिवन्धोनम्) स्वप्रतिवन्धेन परप्रतिवन्धेन च ऊनम् हीनम्—(स्फीतमपि) वृद्धियुक्तमपि (राज्यं) चक्रवर्तिरूपं राज्यं (जहौ) त्यक्तवान् । (इति) अस्मादेव कारणात् वैराग्यदार्ढ्योक्त्यै) वैराग्यस्य दृढता प्रदर्शनाय (द्रौणिजयादयः) द्रौणिजयादि सप्त (प्रोक्ताः) प्रतिपादिताः इत्यन्वयार्थः । अत्रान्तरंग कतिपयप्रयोजनमुच्यते—यदाल्पं राज्यमनल्पप्रतिवन्धं च स्यात्तदा त्यजेत् । प्रतिवन्धश्च स्वकीयैः परैर्वा भवति—अत्र त्वनुभयं—यथा—स्वप्रतिबन्धराहित्यन्तु धृतराष्ट्रभीष्मपाण्डवापगमात् । परप्रतिवन्धराहित्यमपि कृष्णप्रयाणद्रौणिजयादिना । अस्माद्धेतोः परीक्षितस्तु स्वपरप्रतिवन्धरहितं वृद्धियुक्तमपि राज्यं हरिचरणशरणलिप्सया त्यक्तवानिति नृपस्य दृढवैराग्यसूचनायैव द्रौणिजयादयः कथिता इति नानवयत्वमेषाम् । न चाश्वत्थामा पाण्डवगमनानन्तरं कथं तद्राज्यं स्वाधीनं न कृतवान् इतिवाच्यम्—शिशुहननस्ववन्धनकृततिरस्कारकारणात् शस्त्रत्यागप्रतिज्ञापालनाच्च । न च विप्रशिशुशापवशादुद्विग्नमनसो नृपस्य कुतो वैराग्यमिति शंक्यं—शापात् पूर्वमेव जगन्मिथ्यात्वज्ञाने 'दृढवैराग्यसत्वात् । तदुक्तं " अथोविहायेममसुंच लोकं विमर्शितो हेयतया पुरस्तात् । कृष्णांघ्रिसेवामधिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्यामिति अन्तिमाध्यायस्य पञ्चम श्लोक पूर्वार्द्धेन प्रागेव वैराग्यमितिपुष्टं । शाप निराकरणे समर्थोऽपि नतत्प्रतीकारार्थ मुद्योगं कृतवान् । या तु महाभारते सर्पदंशनापाये' विप्रकथा साऽपि कल्पभेदतोऽविरुद्धा—अतः सिद्धं नृपस्य वैराग्यबाहुल्यम् ॥

वंशेसारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्योद्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेनह्या कारिटीका प्रचरतुसततं कृष्णलीला मृताख्या ।
तस्यां श्रोतुश्च वक्तुः कथनपर इतः स्कन्धः आद्यः समाप्तिम् ॥ १॥

अथ द्वितीयस्कन्धः प्रारभ्यः



(मू०) द्वितीये श्रवणांगानि ध्यानं श्रद्धा विमर्शनम् ।
द्विद्विपड्भिर्दशाध्याये ध्यानं साधारणे हरेः ॥ १ ॥
देहेऽसाधारणे जीवैः श्रद्धा श्रोतरि वक्तरि ॥
उत्पत्तौचोपपत्तौ च विमर्शस्तत्र देहयोः ॥ २ ॥
उत्पत्तिस्त्रिविधा ह्यस्य मूर्तामूर्तविभेदतः ।
उपपत्तिस्त्रिविधाक्षेपसमाधानप्रयोजनैः ॥ ३ ॥
त्रयाणां दशभिर्भेदैरित्यध्याया दशक्रमात् ॥

(अन्वयार्थ) दूसरेस्कन्ध में श्रवण के तीन अंगोंका वर्णन है एक ध्यान, दूसरा श्रद्धा, तीसरा विमर्श । पहिला ध्यानरूपी अंग दोप्रकारकाहै इसीसे इसका निरूपणभी पहिले तथा दूसरे अध्याय में है । दूसरा श्रद्धारूपी अंगभी दोप्रकारका है इन दोनोंका वर्णनभी दो अर्थात् तीसरे और चौथे अध्यायमें किया है तीसरा श्रवण का अंग छः प्रकार का है इसका कथनभी छः अध्याय अर्थात् पांच छः सात आठ नौ और दश अध्यायोंमें है । साधारण हरिके देह का ध्यानकरना तथा असाधारण हरि के देह का ध्यान करना इसीसे इस ध्यान के दो भेद हैं । श्रोता की श्रद्धा तथा वक्ताकी अतएव श्रद्धा के भी दो प्रकार हैं । उन्हीं पूर्वोक्त देहों की उत्पत्ति तथा उपपत्तिरूपसे विमर्श दो प्रकार का है परन्तु यहाँ इतना और अधिक है कि मूर्त साधारण देह अमूर्त साधारण देह तथा असाधारण देह इन भेदों से उत्पत्ति तीन प्रकार की है और उपपत्ति आक्षेप समाधान प्रयोजन इनतीन भेदों से यहभी तीनही प्रकार की है तो सब मिलकर इस विमर्शरूपी श्रवण के अंग के छः भेदहोगये । अब श्रवण के तीनों अंगों के दश भेद हैं इसी से इस द्वितीय स्कन्धके दश अध्याय हैं । वह कौन २ भेद किस २ अध्याय में है इसबात का सारांश दिखाते हैं यथा—जीवों से हरि का साधारण देह में ध्यान करना यह ध्यान का प्रथम भेद है इस का निरूपणभी प्रथमाध्याय में है ॥१॥ जीवों से हरि का असाधारण देह में ध्यान करना यह दूसरा ध्यान का भेद है इस का वर्णनभी दूसरे अध्याय में है ॥२॥ श्रोताकी श्रद्धा यह श्रद्धा का पहिला भेद है इस्काकथन तीसरे अध्याय में है ॥३॥ वक्ताकी श्रद्धा यह श्रद्धा का दूसरा भेद है इसका निर्णय चौथे अध्याय में है ॥४॥ हरिके साधारण मूर्तरूप देहकी उत्पत्तिरूप जो वि-

मर्श है यह विमर्श का पहिला भेद है इसका कथन पांचसे अध्यायमें कियाहै ॥५॥ हरिके साधारण अमूर्त देहकी उत्पत्तिरूप विमर्शही विमर्श का दूसरा भेद है इसका व्याख्यान छटे अध्याय में किया है ॥६॥ हरिके असाधारण देहकी उत्पत्तिरूप यह विमर्श का तीसरा भेद है इसको सातवें अध्याय में प्रकट किया है ॥ ७ ॥ हरिके देहकी उत्पत्तिके प्रति राजापरीक्षित का आक्षेपरूप विमर्श है यह विमर्श का चौथा भेद है इसका विन्यास आठमें अध्यायमें कियाहै॥८॥हरिके देहकी उत्पत्ति के प्रति शुकदेवजी का समाधान रूप जो विमर्शहै यह विमर्शका पांचवांभेद जानो इसका लेख नौवें अध्याय में है ॥ ९ ॥ हरिके देहकी उत्पत्ति के निरूपण का कथनरूप विमर्श उस विमर्श का छटा प्रकार है इसको दश में अध्याय में चिन्हित किया है ॥ १० ॥ १ । २ । ३ ॥

(अन्वयः) द्वितीये (स्कन्धे) श्रवणांगानि (त्रीणिसन्ति कानितान्याह ध्यानम् (प्रथमं श्रवणाङ्गम्) श्रद्धा (द्वितीयं श्रवणाङ्गम्) विमर्शनम् (तृतीयं श्रवणाङ्गम्) कथम्भुते द्वितीये (स्कन्धे) दशाध्याये (तान्यंगानि) द्वि द्वि षड्भिः (अध्यायैः) (प्रतिपादितानि अर्थात् ध्यानं प्रथमाद्वितीयाभ्यां कथितं श्रद्धा तृतीयचतुर्थाभ्यां वर्णिता विमर्शस्तु आपञ्चमाद्दशमान्तैः षड्भिरध्यायैर्निरूपितः) तत्र ध्यानं द्विविधम्) जीवैः साधारणे हरेर्देहे (ध्यानमेकम्) जीवैः असाधारणे हरेर्देहे (ध्यानं द्वितीयम्) श्रद्धातु द्विविधा श्रोतृरूपा (एका) वक्तृरूपा (द्वितीया तत्र त्रिषु मध्ये) विमर्शोऽपि द्विविधः देहयोः (साधारणासाधारणे शरीरयोः) उत्पत्तौ च उपपत्तौ च (विषये अर्थात् साधारणदेहस्य हरेः उत्पत्तिरूपो विमर्श एकः असाधारणदेहस्य हरेः उपपत्तिरूपो विमर्शो द्वितीयः) उत्पत्तिरपि त्रिविधा आद्यस्य (.साधारणस्य देहस्य) मूर्तामूर्तविभेदतः द्वौभेदौ (साधारणदेहस्य हरेः मूर्त्युत्पत्तौ विमर्श इत्येकः साधारणस्य हरेर्देहस्य अमूर्तस्योत्पत्तौ विमर्श इति द्वितीयः) अन्यस्य च तृतीयो भेदः (असाधारणस्य हरेर्देहस्योत्पत्तौ विमर्श इति विमर्शस्य तृतीयः) उपपत्तिरपि त्रिविधा आक्षेपसमाधानप्रयोजनैरिति त्रिभिर्भेदै (हरिदेहोत्पत्तिं प्रति नृपस्य आक्षेप इत्येकः । हरिं देहोत्पत्ति प्रति शुकस्य समाधानम् इति द्वितीयः । हरिदेहोत्पत्तिनिरूपणप्रयोजनकथनमिति तृतीयः) त्रयाणां (ध्यानश्रद्धाविमर्शानाम्) दशभिर्भेदैः क्रमात् दश अध्यायाः (सन्ति—जीवैः साधारणे हरेर्देहे एकं ध्यानं प्रथमाध्याये निरूपितम् १ जीवैः असाधारणे हरेर्देहे द्वितीयं ध्यानं द्वितीयाध्याये २ श्रोतृरूपैका श्रद्धा तृतीयाध्याये ३ वक्तृरूपाऽपराश्रद्धा चतुर्थाध्याये ४ साधारण देहस्य हरेर्मूर्तस्योत्पत्तिरूपो विमर्शः पञ्चमाध्याये ५ साधारणदेहस्यहरेरमूर्तस्योत्पत्तिरूपो विमर्शः षष्ठाध्याये: ६ असाधारणदेहस्य हरेरुत्पत्तिरूपो विमर्शः सप्तमाध्याये: ७ हरिदेहोत्पत्तिं प्रति नृपस्याक्षेपरूपो विमर्शोऽष्टमाध्याये: ८ हरिदेहोत्पत्तिं प्रति शुकदेवस्य समाधानरूपो विमर्शो नवमाध्याये ९ हरिदेहोत्पत्तिनिरूपणप्रयोजनकथनरूपो विमर्शो दशमाध्याये: १०)

(भावार्थ) इस प्रकार प्रथम स्कन्ध में वक्ता तथा श्रोता के प्रसंग का प्रकाश कर अब अंग सहित तथा फलवाले श्रवण का निरूपण द्वितीय स्कन्ध में

कियाजाता है। यथाक्रम पद तथा वाक्य की शक्ति और तात्पर्य का जो जानना है वही श्रवण कहाता है। आत्मतत्व का विचार करना यही ध्यान का अर्थ है। मनकी प्रसन्नता का होना ही श्रद्धाहै। हे सौम्य तुम श्रद्धा करो यह श्रुति मेंभी कहाहै। बुद्धिमें भलीभांति विचारकाकरनाही विमर्शहै इसी को मननभी कहते हैं। यही श्रवणके अंग हैं। (प्रश्न) ध्यान श्रद्धा विमर्श यह तीनों श्रवणके अंगहैं तथा श्रवण इन तीनोंका अंगी है इसकारण पहिलेअंगोंका निरूपणकर पश्चात् अंगीका निरूपण करना उचितहै (उत्तर) स्वरूपोपधापि तथा फलोपधापि यह दोप्रकार के कारण तथा अंगहोते हैं इन में से स्वरूपोपधापि अंगो को ही पूर्व रहना आवश्यक है परन्तु यहां कुछ दोष नहीं है। अब यहाँ तीन प्रकारके मतों का विलक्षण आशय दिखाते हैं इस के दिखाने का यही प्रयोजन है कि पूर्वोक्त शंका का निराकरण हो। फलोपकारी मनन तथा निदिध्यासन अंग है इनका श्रवण अंगी है ऐसा कोई मानते हैं। तथा फलोपकारी श्रवण मनन अंग है और इन का ध्यान अंगी है ऐसा कोई कहते हैं। और कोई ऐसा स्वीकार करते हैं कि तीनों को (मनन श्रवण ध्यान) समानता है और यह सब अंगी हो सकते हैं परन्तु यहाँ आचार्य ने पहिले पक्ष कोही स्वीकार किया है अब प्रकरणों का वर्णन करते हैं—दो अध्यायों में ध्यान कहा है और दोही अध्यायोंमें श्रद्धा का निरूपण है। विमर्श का तो छः अध्यायों से कथन है इस कारण यह सबमिल कर दश अध्याय होते हैं ? अब किस २ अध्याय में कौन २ से अंग के भेदका निरूपण है और वह कौन२ भेद हैं इसको दिखाते हैं यथा—श्रवण विषयक राजा परीक्षित के प्रश्नको आगाडीकर अभी मुख्यमान जीवोंसे साधारणाकार विराट संज्ञक भगवान् के रूप में ध्यान करना यही प्रथमाधय में कहा है ? फिर स्थूल मूर्त्ति विराटरूप के ध्यान से मन को जीत कर जीवों से असाधारण कार चतुर्भुजत्वादि गुणविशिष्ट सर्व साक्षी सर्वेश विष्णु में ध्यान का जो लगाना है यही दूसरे अध्याय का आशय है। २। श्रद्धादो प्रकार की है एक श्रोतृरूपा दूसरी वक्तरूपा—सम्पूर्ण देवताओं से अधिक विष्णुमें वडप्पन को मान कर भक्ति की अधिकता से श्रोता की श्रद्धा का वर्णन तीसरे अध्याय में है यह श्रद्धा " आयुर्हरति वैपुंसां ,, इस सत्रहवें १७ श्लोक से आदि लेकर जो शौनक के वचनहैं उनके द्वाराही जानीजानी है ॥ ३ ॥ सृष्टि को आदि लेकर जो विष्णु के चेष्टित कर्म हैं (उनको कहो) इस प्रकार के परीक्षितके प्रश्न को आगे कर वक्ताकी श्रद्धा का चौथे अध्याय नें कथन है वह श्रद्धा " नमः परस्मैपुरुषाय " इस वारहवेंश्लोक १२ स्थित जो प्रणामहै उस के द्वाराही जानीजाती है ।२४। पहिले

पहिल विमर्श दो प्रकार है एक तो उत्पत्ति रूप दूसरा उपपत्ति रूप—उत्पत्ति तीन प्रकार की है जैसे साधारण देहरूप, मूर्त १ साधारण देहरूप अमूर्त, २ और असा. धारण देहरूप, ३। उपपत्ति भी तीन प्रकार की है यथा आक्षेप १ समाधान २ प्रयोजन ३। यह सब भेद मिलकर विमर्श छः प्रकार का होता है यह भेद कौन २ अध्याय में हैं इस्को दिखाते हैं साधारण मूर्त्तमान् विराटदेहकी उत्पत्ति में जो विमर्श है वह पञ्चमाध्याय में है। ५। "सहस्रशीर्षा" इत्यादि पुरुषसूक्त द्वारा साधारण मूर्त्त रहित विराट देहकी उत्पत्ति में जो विमर्श (मनन) का करना है इसका निरूपण छठे अध्याय में है ६। हरि के अवताररूप असाधारण देह में जो विमर्श है वह सातवें अध्याय नें कहा है ७ जीवात्मा तथा परमात्माके देह सम्वन्धके प्रति राजा परीक्षितका आक्षेप करनाही आठ में अध्याय का प्रयोजन है ८ उसी आक्षेपका समाधान करना यह विमर्श नौवें अध्यायमें है ९ देह की उत्पत्ति के निरुपण के प्रयो जन का विमर्श दशवें अध्याय का तात्पर्य है १० इस रीति के अनुसार ध्यान श्रद्धा इन दोनों के दो २ भेद और विमर्श के छः भेद सिद्धहुए इस प्रकारइन सव भेदों में से एक २ भेद का यथा क्रम एक २ अध्यायमें निरुपण है इसी लिये इस दूसरे स्कन्ध में दश अध्याय कहे हैं ॥ ३ ॥

दोहा ॥

श्री नारायणदास जी सारस्वत गणराश ।
तिनकेहिसुत हरिचरणरत बैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
द्वितीयस्कन्धसमाप्तलखि बुधजनपावहिंहर्ष ॥

(संस्कृतार्थः) एवं प्रथमस्कन्धे वक्तृश्रोतृप्रसंगं प्रकाश्येदानीं सांगत्वात्सफलस्य श्रवणस्य निरूपणं द्वितीयस्कन्धे ग्रन्थकृता क्रियते द्वितीय इत्यादिना तत्र श्रवणं क्रमशः पदवाक्ययोः शक्तितात्पर्यज्ञानम् ध्यानं—आत्मतत्त्वविचारः, श्रद्धा मनः प्रसन्नता—श्रद्धत्स्व सौम्येति श्रुतेश्च। विमर्शनम्—बुद्धौ युक्त्या सम्यगालोचनम् मननमित्यर्थः। एतानि श्रवणस्यांगानि। न चांगत्वात्पूर्वं ध्यानश्रद्धाविमर्शनानि ततोंगित्वात् श्रवणं कर्त्तव्यमितिवाच्यम्—स्वरूपोपकारिणामेवांगानां पूर्वभावित्वात्। अयमत्राशयः—श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इत्यत्र पुराणशास्त्रेषु मतत्रयमस्ति फलोपकार्यंगाभ्यां मनननिदिध्यासनाभ्यां श्रवणनामांग्यंगीक्रियते इत्येके फलोपकार्यंगाभ्यां श्रवणमननाभ्यां ध्याननामांगी विधीयते इत्यन्ये। त्रयाणामपि तुल्यकोटितया प्रत्यक्षग्रहणं प्रत्यांगित्वमि-

त्यपरे । तेषु प्रथमं पक्षमालोच्यैवाचार्येणोक्तान्यिमानि श्रवणाङ्गानि । अधुना प्रकरणान्युच्यन्ते—द्व्यादिभिः—ध्यानं द्वाभ्यां श्रद्धापि—द्वाभ्यां विमर्शस्तु षड्भिरित्यर्थः । दशाध्यायवतीति स्कन्धस्य विशेषणम् इदानीमध्यायप्रयोजनान्युच्यन्ते—ध्यानमिति—ध्यानमारभ्य जीवैरित्यन्तोऽन्वयः कार्यः ध्यानं द्विविधम् । जीवैः साधारणं हरेर्देहं ध्यानमिति प्रथमो भेदः—जीवैरसाधारणं हरेर्देहं ध्यानमिति द्वितीयो भेदः ॥ १ ॥ तत्र श्रवणविषयकनृपप्रश्नस्योत्तरं परतः कृत्य जीवैः साधारणकारे विराट्संज्ञके भगवद्रूपे धारणोच्यते प्रथमाध्याये (१) पुनः स्थूलमूर्तिविराड्धारणया मनो विजित्य जीवैः असाधारणाकारचतुर्भुजत्वादिविशिष्टे सर्वसाक्षिणि स्वदेहे विष्णोः धारणा कथ्यते द्वितीयाध्याये (२) (श्रद्धेति—श्रद्धा द्विविधा श्रोतृरूपा वक्तृरूपा च तत्र सर्वदेवेभ्यो विशेषतो विष्णोर्महत्त्वं ज्ञात्वा भक्त्युद्रेकेण श्रोतृश्रद्धा तृतीयेऽध्याये ३ तत्र च "आयुर्हरति वै पुंसां" इत्यादि शौनकवचनैरनुभूयते ॥ ३ ॥ सृष्ट्यादिविष्णुचेष्टितरूपं नृपप्रश्नं पुरस्कृत्य वक्तृश्रद्धा चतुर्थेऽध्याये सापि "नमः परस्मै पुरुषाय" इति द्वादशादिश्लोकस्पन्दनसहस्रेण गम्यते॥४॥विमर्शोऽपि द्विविधः उत्पत्तिरूपोऽर्थचोपपत्तिरूपः—उत्पत्त्युपपत्ती च साधारणासाधारणदेहयोः सम्बन्धवत्यौ तत्रोत्पत्तिस्त्रिधा—तत्र साधारणस्य देहस्य मूर्त्तामूर्त्तत्वभेदात् भेदद्वयम्—असाधारणस्य देहस्य चैको भेदः । तत्र साधारणविराड्देहस्य मूर्त्तस्योत्पत्तौ विमर्शः पञ्चमाध्याये ॥ पुनस्तस्यैव साधारणस्यैव विराड्देहस्यामूर्तस्योत्पत्तौ विमर्शः षष्ठाध्याये ६ । हरेरवतारस्यासाधारणस्य देहस्योत्पत्तौ सप्तमाध्याये ७ ॥ उपपत्तिरपि त्रिविधा—आक्षेपरूपा १ समाधानरूपा २ सिद्धान्तरूपा च ३ तत्राष्टमे ईशजीवयोः देहसम्बन्धं प्रति नृपस्याक्षेपविमर्शः ८ ॥ तस्यैवाक्षेपस्य समाधानविमर्शो नवमे ९ । देहोत्पत्तिनिरूपणप्रयोजनविमर्शो दशमे १० । अधुना निजप्रयोजनं सिद्धान्तयति—त्रयाणामिति त्रयाणाम्—ध्यानश्रद्धाविमर्शानां ध्यानश्रद्धयोर्द्वौ द्वौ प्रकारौ विमर्शस्य भेदाः षट् इत्येवं दशभिर्भेदैरेकैकभेदनिरूपणपुरस्कारेण दशाध्याया एव निरूपिताः ॥ ३ ॥

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्योद्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेनव्याकारिटीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
तस्यांस्कन्धोद्वितीयः श्रवणविधियुतो यातिसद्यः समाप्तिम् ॥२॥



इति श्रीमहामहोपाध्याय वोपदेवकृतायां हरिलीलायां सारस्वतवंशोद्भव श्री मन्नारायणसूनु वैद्यनाथकृत कृष्णलीलामृताख्य टीकायां द्वितीयः स्कन्धः समाप्तः ॥

अथ तृतीयस्कन्धः प्रारम्भः



(मू०) तृतीये तु त्रयस्त्रिंशदध्यायाः सर्गवर्णने ॥
सर्गः कारणसंभूतिर्भिन्ना सा योगसांख्ययोः ॥ १ ॥
विदुरायोक्तवान् योगं मैत्रेयो देवहूतये ॥
कपिलः सांख्यमित्येतावितिहासाविहोदितौ ॥ २ ॥
ऊनविंशतिराद्योऽत्र चतुर्भिर्विदुरागमः ॥
अष्टभिः सर्गविस्तारः सप्तभिः क्रीड़ता हरेः ॥ ३ ॥
सर्गाधारधरोद्धर्तुर्द्वितीयस्तु चतुर्दश ॥
एकेन तत्र संक्षिप्तः सर्गस्तद्विस्तरोक्तये ॥ ४ ॥
चतुर्भिः कपिलोत्पत्तिर्नवभिः कपिलोक्तयः ॥

(भाषार्थ) इस रीति के अनुसार पहिले स्कन्ध में अधिकारि का निरूपण कर तथा दूसरे स्कन्ध में श्रवण का वर्णन कर अव कृष्णलीलाके यथाक्रम सर्ग आदि भेदों का कथन करते हुए ग्रन्थकार इस तृतीय स्कन्ध से पहिले सर्गरूपी भेद का विन्यास करते हैं—तृतीयस्कन्ध में सर्ग वर्णन के विषय में ३३ तेंतीस अध्याय हैं। अवसर्ग का लक्षण कहते हैं पञ्चभूत (पृथिवी अप तेज वायु आकाश) पञ्चतन्मात्रा (गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द) इन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय) अहंकार और महत्तत्व इन का गुणों के परिणाम द्वारा जो परमेश्वर से उत्पन्नहोनाहै उस को सर्ग कहते हैं। उस सर्ग के दो भेद हैं एक योग दूसरा साँख्य । १ । इसी कारण इस तीसरे स्कन्ध में दोही महाप्रकरण हैं एक योगेतिहास दूसरा सांख्येतिहास। मैत्रेयजीने विदुरजीके प्रति योगमार्गद्वारा योग शात्र का वर्णन किया है तथा कपिलमुनिजी ने सांख्यमार्ग द्वारा सांख्यशास्त्र का अपनी माता देवहूति के अर्थ कथन किया है। इसी से यहां योग तथा सांख्यका वर्णन इन्ही दो इतिहासोंसे है ॥ २ ॥ अव इन दोनों महाप्रकरणोंके अध्यायों का संक्षेप से वर्णनकरते हैं यथा—पहिले योग प्रकरणमें १९ उन्नीस अध्यायहैं और दूसरे सांख्यप्रकरणमें १४ चौधे अध्याय हैं। अव पहिले योग प्रकरण के अवान्तर (भीतरी) प्रकरण कहते हैं जैसे—पहिले चार अध्यायों में धृतराष्ट्रके समीप कौरव और पांडवों के कलहको दूरकरनेके लिये विदुरजीका गमन। आठ अध्यायोंमें अर्थात् पाँच छःसात आठ नौ दश ग्यारह वारह इन अध्यायों में सविस्तार सर्ग का वर्णन है। तथा

सात अध्यायों में भगवान के वराहावतार का निरूपण है अर्थात् तेरह चौदह पन्द्रह सोलह सत्रह अठारह उन्नीस इन अध्यायों में वराह लीला का कथन है। ॥ ३ ॥ (प्रश्न) सर्ग के वर्णन करने में प्रसंग विरुद्ध वराह लीलाको क्यों कहा (उत्तर) इस सर्गकी जो आधारभूत पृथ्वी है इसका वराह जी महाराज ने ही उद्धार किया है इसी लिये इनका प्रसंग कहना आवश्यकीय है। अब दूसराजो सांख्यइतिहास जिसका कि चौदह १४ अध्यायों में वर्णन है उस के अवान्तरभेदों का निरूपण करते हैं। एक अध्याय में अर्थात् बीस २० वें अध्याय में संक्षेपसे सर्ग का वर्णन है। और उसी सर्ग का फिर विस्तार से निरूपण चार ४ अध्यायोंमें अर्थात् इक्कीस बाईस तेईस चौबीस—२१—२२—२३—२४ अध्यायों में कपिलदेव जी की उत्पत्ति के द्वारा किया है। नौ ९ अध्यायों में कपिलदेवजी का कथन अर्थात् पच्चीस छब्बीस सत्ताईस अट्ठाईस उन्तीस तीस इकत्तीस बत्तीस तैंतीस २५—२६—२७—२८—२९—३०—३१—३२—३३ अध्यायों में कपिलमुनि के सदुपदेशोंके कथन हैं। इस प्रकार यह दो महाप्रकरण तथा इन दोनों के अवान्तर भेद संक्षेप से वर्णन किये हैं। अब जिस २ अध्यायकी जो २ कथा है उसका एक २ अध्याय द्वारा आगे निरूपण किया जायगा। ४ ।

(संस्कृतार्थः) एवंप्रथमेऽधिकारिणं द्वितीये च श्रवणं निरूप्येदानीं लीलायाः क्रमशः सर्गरूपं प्रथमं भेदंवक्तुं तृतीयस्कन्धः प्रारभ्यते "तृतीयेविति—(सर्गवर्णने)सर्गस्य—सृष्टेः वर्णने निरूपणे (तृतीयेतु) तृतीयस्कन्धे (त्रयस्त्रिंशदध्यायाः) त्रयस्त्रिंशत्संख्याका अध्यायाः कृता इति शेषः। सर्गलक्षणमुच्यते सर्ग इति (सर्गः कारणसंभूतिः) कारणानां जगदुत्पादकानां पंचभूततन्मात्रेन्द्रियाहंकारमहत्तत्त्वानां (संभूतिः) उत्पत्तिः स सर्गः (सा) कारणसंभूतिः (योगसांख्ययोः सांख्येन मार्गेणयोगपथा च (भिन्ना) भेदवतीत्यर्थः ॥ १ ॥ अतोऽस्मिन्स्कन्धे महाप्रकरणद्वयमिच्यतेविदुरायेति—(मैत्रेयः) कौषारविर्मुनिः—(विदुराय) क्षत्रे तांपूर्वोक्तां कारणसंभूतिं (योगं) योगमार्गेण योगशास्त्रं (उक्तवान्) कथितवान्। (कपिलस्तु) कपिलमुनिरपि (देवहूतये) स्वमात्रे (सांख्यम्) सांख्यमार्गेण सांख्यशास्त्रं उक्तवान् (इति) इतिशब्दो हेत्वर्थे (एतौ इतिहासौद्वौ) योगेतिहास आद्यः सांख्येतिहासोऽपरश्च (इह) अस्मिन् तृतीयस्कन्धे (उदितौ) कथितौ ॥ २ ॥ द्वयोरध्यायानसंक्षेपतोवर्ण्यते—ऊनविंशतिरिति—(ऊनविंशतिः) एकोनविंशतिसंख्यका अध्यायाः (आद्यः) आद्येतिहासंनिरूपिता इत्यर्थः। इहैवान्तरप्रकरणान्याह अत्रेत्यादिना (अत्र) आद्येऽस्मिन् प्रकरणे (चतुर्भिः) चतुर्भिरध्यायैः प्रथमैः (विदुरागमः) धृतराष्ट्रसमीपे कौरवपांडवानां कलहनिवारणार्थमागमनंविदुरस्योच्यते। (अष्टाभिः) अष्टसंख्यकैरध्यायैः (सर्गविस्तारः) सर्वस्यैव पूर्वोक्तकारणसंभूतेः विस्तारः कथ्यते। (सप्तभिः) सप्तसंख्यकैरध्यायैः (हरेः) विष्णोः (क्रीडता) वाराहरूपलीला प्रतिपादिता ॥३॥ ननुसर्गे प्रोच्यमाणे किं वराहरूपवर्णनेनेत्याशंक्योत्तरयति सर्गाधारेति—कथम्भूतस्य पूर्वोक्तस्यहरेः (सर्गाधारधरोद्धर्तुः) सतुसर्गस्याधारभूतां धरणीमुद्धृतवान् आधाराधेयसापेक्षम्। (द्वितीयस्तु)

सांख्योत्तद्दासः-(चतुर्दश) चतुर्दशाध्यायविशिष्ट० इत्यर्थः । पूर्ववदिहाप्यवान्तर प्रकरणान्याह—एकेनेति-(एकेन) एकेनाध्यायेन विशोध्यायेनेत्यर्थः । (तत्र) तेषु चतुर्दशसु अध्यायेषु मध्ये (सर्गः) पूर्व लक्षणलक्षितः । (संक्षिप्तः) संक्षेपण वर्णितः । (तद्विस्तरोक्तये) तस्य संक्षिप्तस्य सर्गस्यविस्तरेण उक्तयकथितुं (चतुर्भिः) चतुर्भिरध्यायैः (कपिलोत्पत्तिः) कपिलमुनिजन्मनिरूपणम् । (नवभिः) नवभिरध्यायैः (कपिलोक्तयः) कपिलमुनेः सदुपदेशा वर्णिताइत्यर्थः ॥ ४ ॥

(मू०) बन्धुभिः क्षलरुद्धासस्तद्धतेः श्रुतिरुद्धवात् ॥ ५ ॥
कृष्णावतारावसितेर्मैत्रेयात्स्वहितस्य च
सत्त्रयोर्विंशतेर्जन्म सद्भिर्व्यक्तिः परात्मनः । ६ ।
सम्यक् बुद्ध्वा पुनः प्रश्नः सद्व्यक्तात्पद्मजोद्भवः ।
पद्मजन स्तुतिस्तस्य सर्गाः कालोक्तये दश ॥ ७ ॥
कालांशाः परमाण्वाद्या ब्रह्मपुत्रसमुद्भवः ।
आविर्भावो वराहस्य गर्भाधानं च दैत्ययोः । ८ ।
शापो मुनिभ्यो वैकुंठे विष्णूक्तेभ्यस्त्वनुग्रहः ॥
हिरण्याक्षस्य सामर्थ्यं वराहेण च संगरः ॥ ९ ॥
वधश्च देवस्तोत्रेषु—

(भाषार्थ) इस प्रकार प्रकरणों के प्रयोजन को कहकर यथा क्रम एक २ चरणसे (श्लोकके चतुर्थांशसे) एक २ अध्याय का वर्णन करते हैं दुर्योधनादिकों से अपमान द्वारा विदुरजी को अपने नगरसे निकाल देना — और उद्धव के साथ विदुरजी का संवादतो प्रसंग वशसे जानना ॥ यही प्रथमाध्यायका अर्थ है ॥ तदनन्तर विदुरजीने उद्धवजी के मुखसे उन अपने इष्टमित्रोंका मरण सुना । यद्यपि यह प्रसंग प्रचलित भागवत पुस्तकों के दुसरे अध्याय में नहीं पायाजाता तथापि,, सुयोधनं सानुचरं शयानं,, इस तीसरे अध्याय के १३ तेरहवें श्लोकतक दूसराही अध्याय है यहबात सूक्ष्मदर्शी वोपदेवमहर्षिने दिखाया है । अथवा तत् पदसे यदुरूपी बन्धुओं का ग्रहण होता है । यदुप्रश्न ही प्रथमाध्याय में प्रकृतहै उन के वधका श्रवणतो,, कृष्ण द्युमणि ० ,, इस सातवें श्लोक के वचन से ज्ञातहोताहै यही दुसरे अध्यायका अर्थ है कृष्णावतार का समाप्ति अर्थात् कृष्णचन्द्र ने पृथ्वी को छोड कर गमन किया इस कटु वचन कोउद्धव से सुनना यह कथा तबही ठीक होसती जब कि इसतीसरे अध्यायको,, सोहंतदर्शनात्० इत्यादि चौथे अध्याय के उन्नीस श्लोकतक माना जाय और यह मान करही ग्रन्थ कारने ऐसा कहा है यही तीसरे अध्यायका अर्थ है

वन्धुओं के मरण को सुनकर वैराग्य द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति के अर्थ उद्धव के उपदेश से विदुर जी मैत्रेय मुनि के निकटगये। यही चौथे अध्याय का अर्थ है महदादिकों की सृष्टि मैत्रेय जी ने विदुर जी के अर्थ कथन की और इसही प्रसंग से हरिकी स्तुति का भी निरूपण किया है यह तत्व सांख्यशास्त्र में प्रसिद्ध हैं इन तत्वों का वर्णन हमने अपनी भाषा टीके की मुक्तावली के आत्मनिरूपण में भलीभांति कराहै। यही पाँचवें अध्यायका अर्थहै॥ईश्वरमें प्रविष्ट पूर्वोक्त तत्वोंसे विराट् पुरुष की सृष्टि का निरूपण तीसरे स्कन्ध के छठे अध्याय का अर्थ है॥६॥ संशय के दूर करनेवाले मैत्रेय के वाक्य को भली भांति विचार कर फिरभी विदुर जीका प्रश्न यह सातवें अध्यायका अर्थ है॥तत्वोंमें व्यक्त अर्थात नराकार को प्राप्त होनेवाले जलशायी विष्णु की नाभि के सकाश से ब्रह्मा जी की उत्पत्ति आठमें अध्याय का अर्थ है॥उन सद्व्यक्त अर्थात नारायण को ब्रह्मा जी से स्तुति करनी यही नवम अध्याय का प्रयोजनहै॥समय निरूपण के अर्थ यह सृष्टि दश प्रकारकी है। अब उन दश भेदों का संक्षेप से निरूपण करते हैं-यथा पहिली महत्तत्व की सृष्टि। दूसरी अहंकार की। तीसरी महाभूतों की। चौथी इन्द्रियों की।पाँचवीं देवताओंकी। छठी तमकी। सातवीं वृक्षों की। आठवीं पशुपक्षियोंकी। नवमी मनुष्योंकी। दशमी उभयात्मका सृष्टि है यही दशवें अध्यायका अर्थ है ॥७॥कालके अवयव परमाणु आदि हैं यहां आदि पदमें द्व्यणुकत्र्यणुकको आदि लेकर परार्द्ध पर्यन्त संख्याका ग्रहणहै। यह ग्यारहवें अध्यायका अर्थ है॥ ब्रह्मा के मानसिक पुत्र सनक रुद्रादिकों का जन्म बारहवें अध्यायका अर्थ है॥ दैत्यों के दमनार्थ तथा पृथ्वी के उद्धारार्थ वाराहावतार का प्रकट होना तेरहवें अध्याय का अर्थ है॥हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु का कश्यप ऋषि से दिति जी में गर्भाधान होना यही चौदहवें अध्याय का प्रयोजनहै ॥८॥ विष्णु के दूत तथा द्वारपालक जय और विजय को हरिदर्शनार्थ आये हुए तथा इन द्वारपालों से रोकेहुए सनकादिकों से शापका देना यही पन्द्रहवें अध्याय का अर्थ है ॥ उन सनकादि मुनियों को आदर पूर्वक विष्णु भगवान ने समझाया और शान्त कर उन दूतों के ऊपर अनुग्रह कराया यही सोलहवें अध्याय का अर्थ है॥दिग्विजयमें हिरण्याक्ष दैत्यकी अद्भुतशक्ति का दिखाना यही सत्रहमें अध्याका अर्थ है। पृथ्वी के उद्धार करने वाले वाराहावतार के साथ हिरण्याक्ष का महा युद्ध यही अठारहवें अध्याय का अर्थ है ॥ ९ ॥ वाराहजी ने हिरण्याक्ष को मारा तथा उसे मराजान देवताओं ने वराह देव जी की स्तुति की यही उन्नीसवें अध्याय का अर्थ है

(संस्कृतार्थः) एवं प्रकरण प्रयोजनमभिधाय क्रमशश्चरणै रध्यायार्थानाह—बान्धुभिरिति (बन्धुभिः क्षत्तुरुद्वासः) बन्धुभिः दुर्योधनादिभिः क्षत्तुः विदुरस्य क्षदति क्षदसौत्रः तृन्तृचौशंसि क्षदादिभ्यः संज्ञायांचानिटौ " क्षत्ताशूद्रात्क्षत्रियाजे प्रतीहारेचसारथौ भुजिष्यातनये क्षत्तानियुक्तेच प्रजासृजि इति विश्वः " उद्वासः निजनगरान्निर्वासनम् । अथबानिर्गतस्यतस्योद्धवेनसह संवादस्तु तत्प्रसंगादुक्तः इतिप्रथमार्थः (तद्वतःश्रुतिरुद्धवात्) तेषांसुहृदां हतेहननस्य श्रुतिराकर्णनम् उद्धवात् सकाशात् विदुरस्येत्येव । अयंचप्रसंगो यद्यपि प्रचलितपुस्तकेषु द्वितीयेऽध्यायेनोपलभ्यते तथापि ' सुयोधनंसानुचरंशयानं ' इति तृतीयस्य त्रयोदश श्लोकान्तो द्वितीयाध्याय एव इति बुद्धवा सूक्ष्म दृशापि देवं नैवमुक्तं । अथ वेदं तत्पदं यदुवाचनं वन्धुपदमाकर्षति, प्रकृतश्च प्रथमाध्याये यदु. प्रश्नस्तद्वधश्रवणन्तु " कृष्णद्युमणिनि म्लोचेगीर्णेष्वजगरेणह " इति सप्तम श्लोक वचनेन ज्ञायते इति द्वितीयार्थः ।५। (कृष्णावतारावसितेः) श्रुतिरुद्धवादिति चोत्तर वाक्यद्वयेऽनुवर्तनीया। कृष्णस्य अवतारः कृष्णावतारस्तस्य अवसितिः समाप्तिस्तस्याः श्रुतिः श्रवणमुद्धवादित्येव । इदमपि 'सोहं तद्दर्शनाल्हादवियोगार्तियुतः प्रभो ' इति चतुर्थाध्यायस्य एक विंशति श्लोकान्तं तृतीयाध्यायमवग म्योक्तम् । ' इति तृतीयार्थः (मैत्रेयात्स्वहितस्यच) तन्त्रन्यायेन श्रुतिरितिपदमनुवर्तनीयम् ॥ अतश्च मैत्रेयात् स्वहितस्य तत्व ज्ञानस्य श्रुतिः श्रवणं भविष्यतीत्युद्धवात् श्रुतमित्यर्थः बन्धुनिधन- माकर्ण्यात्म ज्ञान प्राप्तये उद्धवस्योपदेशेन विदुरो मैत्रेय मनुजगामेति भावः इति चतुर्थार्थः (सत्त्रयो विंशतेर्जन्म) सतांमहदादि तत्वानां यात्रयो विंशतिः तस्या जन्म उत्पत्तिः । महदादीनां सर्गं मैत्रेयेण विदुरं प्रत्युक्तं तत्प्रसंगादेवइदं उत्पत्तिरित्यर्थः ॥ तानिच तत्वानि प्रकृति पुरुषौ विहाय- सांख्यकारिकोक्तानिबोध्यानि कारिकाचेयम् यथा—मूल प्रकृति रविकृतिर्महदाद्याः प्रकृति विकृतयः सप्तषोडश कस्तुविकारोन विकृतिः प्रकृतिः पुरुषः इति प० ॥ (सद्भिर्व्यक्तिः परात्मनः सद्भिः तत्वैः परात्मनः परमपुरुषस्य श्रीकृष्णस्य व्यक्तिः स्वस्मिन्प्रकटी करणम् । ईश्वरविष्टैः पूर्वोक्तैः तत्वैः विराट् पुरुषस्य सृष्टिरुच्यते इतिभावः इतिषष्ठार्थः ॥६॥ (सम्यक्बुद्ध्वापुनःप्रश्नः) सम्यक् बुद्ध्वा संशयच्छेदं मैत्रेय वाक्यं सुन्दरमवगम्य पुनरपि विदुरस्य प्रश्नः इतिसप्तमार्थः (सद्व्यक्तात्पद्मजोद्भवः) सत्सुतत्वेषु व्यक्तात् विष्णोः पुरुषाकारं प्राप्तवतो जल शायि. नः नाभेः सकाशात् ब्रह्मण उत्पत्तिरित्यर्थः । इति अष्टमार्थः ॥ (पद्मजेनस्तुतिस्तस्य) पद्मजपद प्रतिपादनेन प्रथमं पद्मोत्पत्तिः पश्चात् ब्रह्मा समुद्भूतः इतिक्रमोदर्शितः । तस्य सद्व्यक्तस्य नारा- यणस्य पद्मजेन ब्रह्मणास्तुतिः स्तवनं. कृतमित्यर्थः । इति नवमार्थः ॥ (सर्गाः कालोक्तये- दश) कालोक्तये समय निरूपणाय तेच सर्गाः दश विधाः सन्तिकेचतेतानाह प्रथमा महतः सृष्टिः, अहंकारस्य द्वितीया, महाभूतानां तृतीया, इन्द्रियाणां चतुर्थी, देवतानां पंचमी तमसः षष्ठी, तरूणां सप्तमी, पशुपक्षिणामष्टमी, मानवानांनवमी, उभयात्मका सृष्टिर्दशमी इति सर्ग- स्य दशभेदाः ॥ इतिदशमार्थः ॥७॥ (कालांशाःपरमाण्वाद्याः) कालांशाः—कालस्यावयवाः परमा ण्वाद्याः—परमाणुः आदिर्येषान्ते सन्ति आदिपदात् द्व्यणुकत्र्यणु पदादयः पराद्धान्तावोध्याः । इत्येकादशार्थः (ब्रह्मपुत्रसमुद्भवः) ब्रह्मणः पुत्राः मानसाः सनकरुद्रादयः तेषां समुद्भवः जन्म ॥ इति द्वादशार्थः ॥ (आविर्भावोविराजस्य —आविर्भावः प्राकट्यमवनतु पुंस्त्री संयोगाज्जन्म । इतित्रयोदशार्थः ॥ (गर्भाधानञ्चदैत्ययोः) दैत्यो हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपूतयोर्द्वयोः गर्भा- धानम्—कामतः काश्यपात्दितेः गर्भसंभवः ॥ इति० चतुर्दशार्थः ॥८॥ (शापोमुनिभ्योवैकु- ण्ठे) द्वाःस्थयोस्तयोर्जयविजययोः विष्णुभृत्ययोः वैकुण्ठे—विष्णुलोके मुनिभ्यः—तत्र हरिदर्शनाय प्राप्तेभ्यः सनकादि विप्रेभ्यः शापः निरोध निमित्तकः ॥ इति पञ्चदशार्थः ॥ (विष्णू क्तेभ्यस्तत्त्वनुग्रहः) विष्णूक्तेभ्यः विष्णुना सादरवचनैः उक्तेभ्यः कथितेभ्यः मुनिभ्य तयोरसुरभा

नेऽप्यनुग्रहः कृतः । भावार्थ गूढोऽभिप्रायः—चतुःसनादि प्रह्लादान्तभक्तिस्थानि निरूपणद्वारेण मोक्षाविष्का णि चेत्यनुग्रहः ध्वनितोऽस्मिन्नत्र सप्तमे इति पंचदशार्थः ॥ १६ ॥ (हिरण्याक्षस्य सामर्थ्यम्) हिरण्याक्षस्य दैत्यस्य सामर्थ्यम् दिग्विजये अद्भुतः प्रभावः इति सप्तदशार्थः (वराहेणेचसंगरः) वराहेण -- ब्रह्मकर्तृकवराहावतारेणसार्कसंगरः महायुद्धम् कर्दमस्याकशिपोः हि रण्याक्षस्यैवेत्यर्थः ॥ इत्यष्टादशाध्यायार्थ ॥ १ ॥ (वधश्च दैत्यस्यामिन्) वधश्च—वराहेण हिर ण्याक्षहननमिदंपर्थः । देवहूत्योऽप्यादि वाक्यं गुरुराध्यायवर्णनादयोक्तम् इदं कोनविंशार्थः ॥

(सू०) कारणोक्तिःसमासतः ॥
कर्दमेन हरेस्तोषो देवहूतेः करग्रह ॥ १० ॥
तयोर्विचित्रः संयोगः ताभ्यां कपिलजन्म च ।
लक्षणं भगवद्भक्तेः सचतुर्विंशतेस्तथा ॥ ११ ॥
असत्पुरुषयोश्चैव ज्ञानयोगस्य चक्रमः ।
भक्तियोगस्य कालाद्ः पापात्तामस्यधोगतिः ॥ १२ ॥
राजसस्यन्तः पुण्यपापात् सात्विकस्योर्द्ध च पुण्यतः ।
देवहूतिमदात्मासिरध्यायार्थाइमोसिभिः ॥ १३ ॥

(भावार्थ) इस प्रकार योगेतिहास संज्ञक प्रथम प्रकरण का वर्णन करके अब दूसरे प्रकरण सांख्येतिहास का निरूपण कियाजाता है । महदादि कारण का संक्षेप से कथन अर्थात् पहिले निरूपण कीहुई भी सृष्टि का फिर दुबारा प्रस्तुत मनु वंश वर्णन के बहाने से स्मरण कराते हैं यही बीसवें अध्याय का अर्थ है ॥ तप से कर्दम मुनि ने विष्णु को सन्तुष्ट किया । और मुनि के विवाह की बात चीत भी मनुवंश के प्रसंग से कहदी यही इक्कीसवें अध्याय का अर्थ है ॥ कर्दम मुनि ने मनु की पुत्री देवहूति के साथ विवाह किया । पहिले अध्याय में विवाहकी चर्चा है और इस में साक्षात् विवाह है इसी से यहां पुनरुक्ति नहीं है बाईसवें अध्याय का अर्थ है ॥१०॥ तप के बल से निर्माण कियेहुए सम्पूर्ण सम्पत्ति वाले यथेच्छाचारी विमान में इन कर्दम मुनि तथा देवहूति की विचित्र रति का वर्णन है यही तेइसवें अध्याय का अर्थ है ॥ इन कर्दम मुनि पिता तथा देवहूति मातासे कपिल देव जीकी उत्पत्ति यही चौबीसवें अध्याय का अर्थ है ॥ कपिल मुनि ने माता के संसारबन्धन छुडानेको परम भक्ति का लक्षण कहा यही पच्चीसवें अध्याय का अर्थ है ॥ उन चौबीस तत्वों की उत्पत्ति तथा जन्म । यही छब्बीसवें अध्यायका अर्थ है ॥११॥ प्रकृति पुरुष के लक्षण का कथन । यही सत्ताइसवें अध्याय का अर्थ है ॥ जिस क्रम से ज्ञान योग हो उसी को ज्ञान योग क्रम कहते हैं उसी से सर्व उ-

पाधि रहित स्वरूप ज्ञान होता है । यही अट्ठाईसवें अध्याय का अर्थ है ॥ विरक्ति के अर्थ कालरूप भगवान के स्वरूप की सामर्थ्य दिखाना । यही उन्तीसवें अध्याय का अर्थ है ॥ निज शरीर स्त्री आदि में जिनके मन व्याकुल है उनकी पाप से नरक में लेजाने वाली तामसी गति होती है । यही तीसवें अध्याय का अर्थ है ॥ १२ ॥ जब पाप पुण्य दोनों मिलते हैं तब मनुष्य लोक में नरदेह मिलती है । यही इकतीसवें अध्याय का अर्थ है ॥ सात्विक धर्मों से स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है । यही बत्तीसवें अध्याय का अर्थ है ॥ जैसे इस दो प्रकार की सृष्टि के ज्ञान से देवहूति को जीवन्मुक्तिता हुई इसी प्रकार अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान होना चाहिये यही तैंतीसवें अध्याय का अर्थ है । एक२ चरणों से इस तीसरे स्कन्ध के तेंतीस अध्याय वर्णन किये ॥ १३ ॥

दोहा ॥

श्री नारायणदास जी सारस्वत गुणराश ।
तिनकेहिसुतहरिचरणरत बैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
तृतीयस्कन्धसमाप्तलखि बुधजनपावहिंहर्ष ॥

इति तृतीयस्कन्धः ॥ ३ ॥

(संस्कृतार्थः) एवंयोगेतिहाससंज्ञकं प्रथमं प्रकरणमुक्त्वा सांख्येतिहासनामेदानीं द्वितीयं प्रकरणमुच्यते (कारणोक्तिःसमासतः) कारणं महदादि तस्योक्तिः समासतः संक्षेपतः कथ्यते पूर्वकथितमपिसर्गं पुनरपि प्रस्तुतमनुवंशवर्णनमिषेणाऽनुस्मर्य्यते इतिभावः । इति विंशार्थः ॥ (कर्दमेनहरेस्तोषः) तपसा कर्दमेन—कर्दममुनिना हरेः विष्णोः तोषः संतुष्टिः अथमुनेः मनोः पुत्र्यासह विवाहस्तत्कथातु मनुवंशप्रसंगतः उक्ता ॥ इति० एक विंशार्थः ॥ (देवहूतेः करग्रहः) मनुपुत्र्याःदेवहूतेः करग्रहः विवाहः कर्दमेन कृत इतिशेषः पूर्वेतुचर्चाऽस्मिश्च साक्षाद्विवाह इत्यपौनरुक्त्यम् ॥ इति० द्वाविंशार्थः ॥ १० ॥ (तयोर्विचित्रस्संयोगः) तयोः कर्दमदेवहूत्योः विचित्रः संयोगः तपोनिर्मिते सर्वसंपदि कामचारिणि विमाने विचित्रा रतिरुक्ता इति० त्रयोविंशार्थः ॥ (ताभ्यां कपिलजन्मच) कर्दमदेवहूतिभ्यां कपिलजन्म कपिलस्योत्पत्तिरित्यर्थः ॥ इति चतुर्विंशार्थः ॥ (लक्षणं भगवद्भक्तेः) कपिलमुनिर्जननीबन्ध विमोचनाय परम भक्ति लक्षणमुवाच ॥ इति पंचविंशार्थः ॥ (सच्चतुर्विंशतेस्तथा) चतुर्विंशतितत्वा

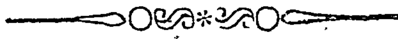
नामुत्पत्तिः तथाशब्दात् लक्षणमप्युक्तम् । इतिषड्विंशार्थः ॥ (असत्पुरुषयोश्च) असत प्रकृतिः चशब्दाल्लक्षणमर्थात् प्रकृतिपुरुषयोर्लक्षणमुक्तम् । इति सप्तविंशार्थः ॥ (ज्ञानयोगस्य चक्रमः) येन क्रमेण ज्ञानयोगो भवेत्स ज्ञानयोगस्यक्रमः तेन च सर्वोपाधिविनिर्मुक्तस्वरूपज्ञानं भवति । इत्यष्टाविंशार्थः ॥ (भक्तियोगस्य कालादेः) कालादेः भक्तियोगक्रमः विरक्तस्यैव कालस्य बलं कालरूपस्य भगवतः स्वरूपं सामर्थ्यञ्चेतिभावः । इत्येकोनत्रिंशाध्यायार्थः ॥ (पापात्ताम स्यधोगतिः) पापात्तामसीगतिः साचअधोनरके । कामकान्ता व्याकुलमनस्कामिनो पापात्तामसी नरकप्राप्तकरीगतिर्भवतीतिभावः ॥ इति त्रिंशार्थः ॥ (राजस्यन्तः पुण्यपापात्) पापपुण्याभ्यां—अन्तः-मनुष्यलोके राजसीगतिर्भवति । मिश्रितैः पापपुण्यैः मानवगतिः संप्राप्तिर्भवेत् इति-भावः । इत्येकत्रिंशार्थः ॥ (सात्त्विक्यूर्द्ध्वं पुण्यतः) पुण्यात्सात्त्विकीगतिः साचऊर्द्ध्वस्वर्गलोके । स्वात्त्विकैधर्मैः स्वर्गलोकप्राप्तिर्भवतीतितात्पर्यः सुस्पष्टमिदं सांख्ये " धर्मेण गमनमूर्द्ध्वं गमनमधस्ताद्भवत्यधर्मेण उर्द्ध्व सत्वविशालस्तमोविशालश्चमूलतः सर्गः मध्ये रजोविशालोब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त इति ।.इति द्वात्रिंशार्थः ॥ (देवहूतिपदाप्तिः) भक्त्यादिविधाना अपि गूढः सम्यक् ज्ञानात् आत्मनः प्राप्तिः जीवन्मुक्तिता देवहूति वदन्येषामपिस्यादितिभावः । इति त्रयस्त्रिंशार्थः ॥ (अध्यायार्था इमे त्रिभिः) त्रिभिःश्लोकैः इमे पूर्वोक्ताः तृतीयस्कन्धवर्णिताः अध्यायार्थाः त्रयस्त्रिंशत्परिमिताः सन्तीतिभावः ॥

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्यो द्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेन ह्याकारि टीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
तस्यां सृष्टेस्तृतीयः सुललितकथया स्कन्धआप्तः समाप्तिम् ॥ ३ ॥



इति श्रीमहामहोपाध्यायवोपदेवकृतायां हरिलीलायां सारस्वतवंशोद्भव-
श्रीमन्नारायणसूनुवैद्यनाथकृतकृष्णलीलामृताख्यटीकायां
तृतीयः स्कन्धः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थस्कन्ध प्रारम्भः ॥



(मू०) एकोनत्रिंशताध्यायैर्विसर्गस्तुर्य ईरितः ॥
विसर्गः कार्यसंभूतिः कार्यं बुद्ध्वा चतुर्विधम् ॥ १ ॥
स्त्रीबालवृद्धप्रौढत्वैश्चतुःप्रकरणीकृता ॥
सतीध्रुवपृथुप्राचीनेतिहासैस्तदुक्तये ॥ २ ॥

(भाषार्थ) इस प्रकार तृतीय स्कन्ध में सर्ग का निरूपण कर अब चौथे स्कन्ध में विसर्ग का वर्णन करते हैं। उन्तीस अध्यायों से चतुर्थ स्कन्ध में सर्ग कहा है। जो बहुत प्रकार के कार्य्यों के अनुरूप हो वही विसर्ग है अर्थात् विराट् पुरुष की रचीहुई अनेक प्रकार की सृष्टि को विसर्ग कहते हैं। स्त्री, वाल, वृद्ध इन भेदों से वह कार्य चार प्रकार का है ऐसा मुनि ने निज मन में जान इस कार्य के चार प्रकरण किये हैं। यदि लिंगपरक कार्य को मानोगे तौ लिंग—स्त्री पुन्नपुंसक भेद से तीनही हैं और कार्य चार हैं तौ लिंगपरकमानना भी ठीक नहीं। पुनर्यदि कार्य को अवस्थापरक मानो तौ अवस्था भी वाल युवा वृद्ध यह तीन ही हैं। कोई कहे कि हम एक पौगंड अवस्था को स्वीकारकर चार अवस्था मानैंगे वह भी योग्य नहीं क्योंकि पौगण्डका वालमें ही अन्तर्भावहोता है। अथ च यदि लिंग और अवस्था दोनों अंगीकार करो तौ दोनों के मिलकर छः भेद होने चाहिये यह भी युक्ति युक्त नहीं। इस प्रकार यही सिद्ध होता है कि अनेक कार्य के भेद हैं तो भी पुरुषार्थोपयोगी स्त्री वाल प्रौढ वृद्ध यह चारही हैं इस कारण मुनि ने चार ही स्कन्ध में दृष्टान्त द्वारा वर्णन किये हैं ॥ १ ॥ साधारण रीतिसे इस भागवतशास्त्र के सुनने में स्त्री, द्विज, शूद्र यह सवही अधिकारी हैं इसी लिये मुनिने वक्ष्यमाण चार प्रकार के कार्यों में कोई जातिका निर्णय नहीं किया। नपुंसक का स्त्रीपुरुषों में तथा पौगंडताका वालमें अन्तर्भावहै इस कारण इनको पृथक् निरूपण नहीं किया। अव उस चार प्रकार के कार्यको स्पष्ट करते हैं यथा सती—स्त्री, ध्रुव—वाल, पृथु—प्रौढ, प्राचीनवर्हि—वृद्ध, यह चारकार्य के दृष्टान्तहैं इसीसे चार प्रकरण कियेहैं यह सिद्ध होगया ॥ २ ॥

(संस्कृतार्थः)—एवं सर्गं तृतीये निरूप्य तदनन्तरमिदानीं विसर्गश्चतुर्थे वर्ण्यते एकोनत्रिंशताध्यायैरिति—(एकोनत्रिंशताध्यायैः) ऊनत्रिंशत्संख्याकैरध्यायैः—(तुर्ये) चतुर्थस्कन्धे (वि-

सर्गः) पुराणस्य द्वितीयं लक्षणमित्यर्थः (ईरितः) कथितः । कार्यविसर्गरूपलक्षणप्राधान्येन (विसर्गः कार्यसम्भूतिः) बहुविधकार्योत्पत्तिर्विसर्ग इतिभावः । प्रकरणान्याह (चतुर्विधम्) स्त्रीबालप्रौढवृद्धस्यभेदाच्चतुःप्रकारकम् । (कार्यम्) कार्यमात्रम् (बुद्ध्वा) ज्ञात्वा मुनिना चतुः प्रकरणीकृतेत्युत्तरेणान्वयः ननु सत्स्वप्यनेकेषु कार्येषु किमिति चतुर्विधमित्युक्तम् तत्राह यदि लिङ्ग मनुवर्तेत तदा सर्वकार्यप्राप्तिर्भवेत् किन्तु तस्य स्त्रीपुंनपुंसकभेदेन त्रित्वाच्चतुर्विधाकर्मत्वात् नापि वयः पौगण्डकैशोरव्याप्तिः तत्तु दुर्ज्ञानत्वेन तयोस्त्रित्वयुग्मयस्तदा बहुविधत्वप्रसंगः स्यादिति चेन्न सत्स्वपि बहुविधकार्येषु पुरुषार्थोपयोगिना वक्ष्यमाणप्रकारस्यैवोपादानादित्यनवद्यम् ॥ १ ॥ (स्त्रीबालप्रौढवृद्धत्वैः) स्त्रीत्वेन बालत्वेन प्रौढत्वेन वृद्धत्वेन चेति चतुर्विधकार्यभेदैः । (चतुःप्रकरणी-कृता) चत्वारि प्रकरणानि कृतानि विसर्गस्येत्यर्थः । साधारणत्वाद्विजस्त्री शूद्रादयः सर्वेऽप्यधिकारिणः इति मत्वा मुनिना चतुष्टये विशेषनिर्णयो न कृत इति विशदार्थः । नपुंसकस्य नैरर्थक्यात् पौगण्डस्य च बाल्येऽन्तर्भावान्न पृथगुक्तिः । कार्येषु चातुर्विध्यं स्पष्टयति सतीति—सती–स्त्री, ध्रुवो–बालः, पृथुः–प्रौढः, प्राचीनबर्हिः–वृद्धः, तेषामितिहासैः पार्थिवेत्यत्र भोगाद्युत्तरश्लोकः । (तदुक्तये) तस्य चतुर्विधस्य कार्यस्य उक्तये निरूपणाय चतुःप्रकरणीकृतेत्यन्वयः कार्यः ॥ २ ॥

(मू०) सप्तभिश्च चतुर्भिश्च दशभिश्चाष्टभिस्तथा ॥
मनुकन्यान्वयः सत्यै द्वेषस्तत्पतितातयोः ॥ ३ ॥
पत्या निषेधनं सत्या देहत्यागः पितुर्मखे ॥
गणैर्दक्षमखध्वंसो ब्रह्मणा रुद्रसान्त्वनम् ॥ ४ ॥
विष्णुना यज्ञसंसिद्धिर्ध्रुवेणाराधनं हरेः ॥
कामलाभो ध्रुवस्यास्माद्यक्षान्ताद्वारणं मनोः ॥ ५ ॥
विष्णुध्रुवपदप्राप्तिः पृथवे वेणसंभवः ॥
वेणवाहेः पृथूत्पत्तिः सूताद्यैः स्तवनं पृथोः ॥ ६ ॥

(भापार्थ) अब अध्यायों के अर्थका विभाग करते हैं सात अध्यायोंमें सतीके इतिहासका वर्णन है । चार अध्यायों में ध्रुवजी के चरित्र का निरुपण है । दश अध्यायों में पृथुका प्रसंग है । तथा आठ अध्यायों में प्राचीन बर्हीका वर्णन है । अब क्रमसे चरणों द्वारा एक २ अध्याय के अर्थ का निरुपण करते हैं । सती के प्रसंग निरुपणार्थ मनु की कन्याओं के वंशका वर्णन है—यही इस चौथे स्कन्ध के पहिले अध्यायका अर्थ है ॥ ३ ॥ उस सतीके पति तथा पिता अर्थात् महादेव और दक्षका परस्पर विरोध—यही दूसरे अध्याय का अर्थ है ॥ तुम विना बुलाए पिता के घर को मत जाओ इस प्रकार शिवने पार्वती को निषेधकिया—यही इस तीसरे, अध्याय का अर्थ है ॥ पिता दक्ष के यज्ञ में सतीने अपना देह त्याग किया—यही इस चौथे अध्याय का अर्थ है ॥ शिवजी के प्रमथादि गणोंने दक्षके यज्ञका विध्वन्स

क्रिया—यही इस पाँच में अध्याय का अर्थ है ॥ दक्ष आदि के जिवाने केलिये देवताओं के साथ ब्रह्माजी ने कैलासपर जाय शिवजी के क्रोधको दूरकिया—यही इस छटे अध्याय का अर्थ है ॥ ४ ॥ श्री विष्णु जीने यज्ञ को पूरण कराया—यही सातवें अध्याय का अर्थ है ॥ क्रोध कर घरसे निकले हुए ध्रुवजी ने तपकर भगवान का आराधन किया—यही इस आठमें अध्यायका अर्थ है ॥ ध्रुवजी को विष्णुभगवान से अपनी इष्टवस्तुकी प्राप्ति होनी--यही इस नौवेंअध्यायका अर्थ है ॥ अपने भाई के मारने वाले यक्षोंका वधकरते हुए ध्रुवजी को स्वायंभू मनुने उस वधसे निवारण किया वोपदेव के मतानुसार ग्यारहवें अध्याय का दशमें अध्यायमेंही अन्तर्भावहोजाताहै क्योंकि दोनो अध्यायों में युद्ध तथा युद्ध का निवारण मिलता हुआ है यही इस दशमें अध्यायका अर्थ है ॥५॥ विष्णुभगवानसे दियाहुआ जो निश्चलपद है उसपदकी ध्रुवजी को प्राप्तिहोनी—इस ग्यारहवें अध्याय तक ही ध्रुव चरित है क्योंकि वोपदेव जीं के मत से यह ध्रुव चरित चार ही अध्याय में है और तीसरे श्लोक में " चतुर्भिश्च " इस पदसे चारही अध्याय की प्रतिज्ञा है और आज कलकी प्रचलित पुस्तकों में ध्रुवचरित में पाँच अध्याय की प्रतिज्ञा है उस में कोई पाँच अध्याय होने की दृढ युक्ति नहीं देखती । यही इस ग्यारहवें अध्यायका अर्थ है ॥ पृथु के प्रसंगार्थ वेण की उत्पत्ति—यही बारहवें अध्यायका अर्थ है ॥ उसी वेणकी भुजसे पृथुजीका जन्म—तेरहवां तथा चौदहवां अध्याय एकही है क्योंकि इन दोनों में उसकी भुजा का मथन ही है और निषाद की उत्पत्ति तो गौण है क्योंकि वोह तो पृथु जी के प्रसंग से ही वर्णन की है तथा मुख्यता पृथु जी को ही है इसी से यह दो अध्याय एक ही हैं और वोपदेव की प्रतिज्ञा भी है कि दश अध्यायसे पृथु चरित का वर्णन करूंगा परन्तु और टीकाकार तो इस चरित को ग्यारह अध्याय से निरूपण करते हैं इन दोनों मतों में वोपदेव जी का मतही युक्तियुक्त मालूम होता है—यही तेरहवें अध्याय का अर्थ है। सूत मागध वन्दिजनों ने पृथु जीकी स्तुति की—यही चौदहवें अध्याय का अर्थ है ॥ ६ ॥

(संस्कृतार्थः) अध्यायार्थान् विभजते (सप्तभिश्च) सप्तभिरध्यायैः स्त्रीयाःसत्याइतिहासोवर्ण्यते: । (चतुर्भिश्च) चतुर्भिरध्यायैरपि बालकस्य ध्रुवस्यचरितं निरूप्यते । (दशभिश्च) दशभिरध्यायैः प्रौढस्यपृथोः प्रसंगउच्यते । (तथा अष्टभिश्च) तेनैव प्रकारेण अष्टभिरध्यायैर्वृद्धस्य प्राचीनबर्हिषः कथा कथ्यते । अथ क्रमशश्चरणैरध्यायार्थानाह मन्वित्यादिभिः । (सत्यै) सतीप्रसंगार्थे (मनुकन्यान्वयः) मनुकन्यानांवंशः । इति प्रथमार्थः ॥ (द्वेषस्तत्पातितातयोः) तस्याः सत्याः पतिश्वतातश्चतयोः महादेवदक्षयोरितिभावः द्वेषः परस्परविरोधः—इति द्वितीयार्थः ॥ ३ ॥ (प-

त्या) शिवेन (सत्याः) पार्वत्याः (निषेधनम्) दक्षयज्ञगमनेऽनिषेधनम् इति तृतीयार्थः ॥ (पितुः) दक्षस्य (मखे) यज्ञे (देहत्यागः) सत्यां देहत्यागकरणम्—इति चतुर्थार्थः ॥ (गणैः) शिवरूपगणाः प्रमथाख्यास्तैः (दक्षमखभङ्गः) दक्षयज्ञविनाशः । इति पञ्चमार्थः (ब्रह्मणा) देवैःसह पितामहेन (रुद्रसान्त्वनम्) रुद्रस्य शिवस्य सान्त्वनम् क्रोधहरणम् दक्षादिजीवनार्थमितिशेषः । इति षष्ठार्थः ॥ ४ ॥ (विष्णुना) श्रीनारायणेन (कृतसंसिद्धिः) यज्ञस्यपूर्तिकरणम् । इति सप्तमार्थः ॥ शिष्यमुक्तत्वाद्भक्त्याह—(ध्रुवेण) रोषतो निजनगरान्निर्गतेन बालेन ध्रुवेण (हरेः) विष्णोः । आराधनम् तपसा तोषणम् । इत्यष्टमार्थः ॥ (तस्मात्) हरेः (ध्रुवस्य) तस्यैव बालस्य ध्रुवस्य (कामलाभः) इष्टप्राप्तिः । इतिच० नवमार्थः ॥ (यक्षान्तात्) यक्षाणामन्तोनाशस्तस्मात् भ्रातृहन्तृणांयक्षाणां वधादित्यर्थः (मनोः वारणम्) मनोरित्यत्र कर्तरिषष्ठी मनोः स्वायंभुवः अर्थात् स्वायंभुवमनुकर्तृकम् वारणम् निवारणम् । इतिच दशमार्थः ॥ मुनिमततो दशमे एकादशाध्यायस्यान्तर्भावात् दर्शितेऽपि युद्धनिवारणार्थः संक्षिप्तत्वाच्च ॥५॥ (विष्णुपदप्राप्तिः) विष्णुना नारायणेन दत्तम् ध्रुवेणेदं नित्यस्थानं तत्प्राप्तिःध्रुवस्येतिशेषः । इति एकादशार्थः ॥ श्रीदत्ताह—(नृपते) नृपाः प्रसंगार्थम् । (वेणसम्भवः) वेणस्योत्पत्तिः । इतिच० द्वादशार्थः ॥ (मन्थनाद्दोः) वेणस्यबाहुमन्थनात् (पृथूत्पत्तिः) पृथोर्जन्म । इतिच० त्रयोदशार्थः ॥ (सूतादेः) आदिपदान्मागधवन्दिनां ग्रहः । सूतमागधवन्दिभिः (पृथोः) पृथुनृपस्य (स्तवनम्) स्तुतिः । इतिच० चतुर्दशार्थः ॥६॥

(मू०) पृथुना निग्रहो भूमेः तत्तद्दुग्धस्य दोहनम् ।
जयोऽश्वमेधे शक्रस्य साक्षात्कारो मधुद्विषः ॥ ७ ॥
सभामध्ये स्वधर्मोक्तिः कुमारेभ्यः परात्मधीः ।
तया वने स्वधर्मोक्तिः तपः चित्रं प्रचेतसाम् ॥ ८ ॥
ध्यात्मोक्तिर्नारदेनास्मै पापर्द्धिस्थां विनात्मजः ।
कालाभिभूतिस्तच्छक्तेः मुक्तिर्द्वन्द्वविपर्यये ॥ ९ ॥
पुरंजनादिव्याख्यानं तपः सिद्धिः प्रचेतसाम् ।
दक्षमुत्पाद्य निर्वाणमध्यायार्थस्पृशांत्रयः ॥ १० ॥

(भावार्थ) वजिके ग्रसनेवाली पृथिवीको पृथुराजाने दण्ड देनेकी इच्छा की—यही पन्द्रह में अध्याय का अर्थ है ॥ १५ ॥ पृथुआदि बछडे बन इच्छा के अनुसार उस पृथ्वी से सब प्रकार के दूधको दुहते हुए—यही सोलहवें अध्याय का अर्थ है ॥ अश्वमेध यज्ञमें अश्वमेध के अंगभूतघोड़े के चुरानेवाले इन्द्र का पृथुने जय किया—यही सत्रहवें अध्याय का अर्थ है ॥ पृथु के यज्ञ में वरदान के प्रसंग से विष्णुभगवान का साक्षात्कार होना । यही अठारहवें अध्याय का अर्थ है ॥ ७ ॥ उस महायज्ञकी महासभा में पृथुने निज प्रजाको विष्णुसेवा आदि धर्मकी शिक्षाकी—यही उन्नीसवें अध्याय का अर्थ है ॥ सनकादिकों ने पृथु

को तत्त्वज्ञान का उपदेशकिया— यही वीसवें अध्याय का अर्थ हैवनमें गमन कर तपके प्रभाव से पृथुजी का विमान में चढ़ कर वैकुंठको जाना । यही इक्कीसवें अध्याय का अर्थ है पिता प्राचीनवर्हि के अर्थ प्रचेतसोंका तप करना— यही वाईसवें अध्याय का अर्थ है ॥ ८ ॥ प्राचीनवर्हि के अर्थ नारदमुनि ने पुरंजनीरूप बुद्धि तथा पुरञ्जनरूप आत्मा का वर्णन कियां यही तेईस के अध्यायका अर्थ है पुरञ्जन रूप आत्मा के विना पुरञ्जनी रूप बुद्धिको शिकार का खेलना— यही चौवीस में अध्यायका अर्थ है उस पुरञ्जनकी शक्ति (सामर्थ्य) का कालसे तिरस्कार होना । यही पचीसवें अध्यायका अर्थ है इस संसाररूपी द्वन्द्व जालको वृथा जान कर मोक्षका होना— यही छब्बीसमें अध्यायका अर्थहै ॥ ९ ॥ महागूढ पुरञ्जनोपाख्यान का सरल रीतिसे प्रत्यक्ष कर समुझाना—यही इस सत्ताइसवें अध्यायका अर्थहै तपसे संतुष्ट हुए हरिसे प्रचेतसोंको वरदान देना । यही अठ्ठाईसवें अध्याय का अर्थ है दक्ष—पुत्रको उत्पन्न कर और उस्कोराज्यदे वनको गये हुए उन प्रचेतसोंको नारदजी के उपदेश से मोक्ष पानी— यही उन्तीसवें अध्याय का अर्थ है इस प्रकार एक २ चरण से एक २ अध्याय का निरूपण कर उन्तीस अध्याय का वर्णन किया (कईएक श्रीधर स्वामीको आदिलेकर टीकेकार इकत्तीस ३१ अध्याय इसस्कन्धके कहते हैं उन के मतसे ध्रुवचरित्र का ग्यारहवां अध्याय तथा पृथुचरित्र का चौदहवाँ अध्याय अधिकहै और वोपदेव के मतसे ग्यारवेंका दशमें तथा चौदहवें का तेरहवेंमें अन्तरभाव होकर एक २ अध्याय होजाता है इसी कारण वोपदेवजी चार अध्यायों में ध्रुवचरित्रतथा दशअध्यायों में पृथु चरित्रको लिखते हैं अन्यटीका कारतो पाँचअध्यायों में ध्रुवचरित्र तथा ग्यारह अध्यायों में पृथुचरित्र का कथन करते हैं इसी से उनके मत में ३१ इकत्तीस तथा वोपदेवजी के मतमें उन्तीस अध्यायहैं यहीभेद है ॥ १० ॥

(संस्कृतार्थः) (पृथुना) नृपेण (भूमेः) ग्रस्तवीजायामह्याः (निग्रहः) स्वायत्तीकरणम् ॥ इति च० पञ्चदशाध्यायार्थः ॥ (तत्तद्दुग्धस्य) तस्यतस्य ओषधि छन्दोऽन्नादिरूपस्य दुग्धस्य (दोहनम्) पृथ्व्यादिभिः दोहनंकृत मित्यर्थः इति षोडशार्थः (शक्रस्य) अश्वमेधांग हयापहरण शीलस्य इन्द्रस्य (अश्वमेध) यज्ञे (जयः) पृथुनाजयः कृतइत्यर्थः । इति च० सप्तदशार्थः ॥ (मधुद्विषः) विष्णोः (साक्षात्कारः) वरदान प्रसंगेन पृथोः यज्ञेसाक्षात्कारः अर्थादन्योन्यप्रीतिः । इत्यष्टादशार्थः ॥ ७ ॥ (सभामध्ये) महायज्ञस्यमहासदसि (स्वधर्मोक्तिः कथनमंर्थात्प्रजानां विष्णु सेवादि धर्मानुशासनमित्यर्थः ॥ इति० ऊनविंशार्थः ॥ (कुमारेभ्यः) कुमाराः सनकाद्याः तेभ्यः (परात्मधीः) तत्वज्ञानम् । पृथवे परं ज्ञानं सनकाद्या उपदिशंतिस्मेतिभावः । इति० विंशार्थः ॥ तया) परात्मबुद्ध्या (वने) अरण्ये (स्वधर्माप्तिः) पृथोरितिमण्डूकप्लुत्याऽनुवर्तनीयचतुर्थ

सभार्यस्य पृथोः वने तपःप्रभावात् विमानमधिरुह्य वैकुंठ गमनमित्यत्र स्वर्ग्याणिः ॥ इति० एकत्रिंशार्थः ॥ वृद्धकार्यमाह—(पित्र) प्राचीनवर्हिषे तत्प्रसंगागमित्यर्थः (प्रचेतसांतपः) तेषांतपः करणम् । रुद्रगीत मित्यन्तोऽध्यायार्थः । इति० द्वात्रिंशार्थः ॥ ८ ॥ (अस्मै) प्राचीन वर्हिषे(नारदेन) मुनिना (अध्यात्मोक्तिः आध्यात्मा च अध्यात्मानौ तयोरुक्तिः अर्थात् धियः पुर-ञ्जनीरूपायाः आत्मनश्च पुरञ्जनस्य बुद्ध्यात्मनो वर्णनमितिभावः । इति त्रयोत्रिंशार्थः ॥ (ताम्) धियं पुरञ्जनीरूपां (विना) तद्रहितस्य (आत्मनः पुरञ्जनस्य (पापर्द्धिः) मृगया । मृगया व्याजात् स्वप्नजागरणोक्तिः सद् बुद्धिसंयोगवियोगाभ्यां संसृतिर्वर्ण्यतेतिभावः—इति चतुस्त्रिं-शार्थः ॥ (तच्छत्रोः) तस्य पुरञ्जनस्य शत्रोः (कालाभिभूतिः) कालेन तिरस्कारः कलत्रमित्रभृत्यपुत्रासक्तस्य विस्मृतात्मनः कालकन्याभुजापानव्याजात् जरारोगग्रस्तत्वमितिः ॥ अत्र " एवंकृपणाया बुद्धयेत्यन्तमध्यायार्थंबुद्धवोक्तम् । इति० पञ्चत्रिंशार्थः ॥ (इन्द्र विपर्ययं) द्वन्द्वानिशीतोष्णादीनि तेषां विपर्ययं अनंगीकारे सति यद्वा द्वन्द्वेषु विपर्यये जन्मान्तरेऽ-न्यथाभावे सति (मुक्तिः) आत्मनोमोक्षः ॥ इति षट्त्रिंशार्थः ॥ ९ ॥ (पुरञ्जनादि व्याख्यानम्) परोक्षार्थव्याख्यानेनारूढार्थत्वात् तस्यैव पुरञ्जनादेः पुनःस्फुटव्याख्यानमित्यर्थः ॥ इति० सप्त त्रिंशार्थः ॥ (प्रचेतसां) तेषां (तपःसिद्धिः) तपसा सिद्धिः । तपसस्तुष्टाद्विष्णोर्लब्ध वरास्ते प्रचेतसोजाता इतिभावः ॥ इति० अष्टत्रिंशार्थः ॥ (दक्षं) पुत्रं (उत्पाद्य) उत्पन्नंकृत्वा (निर्याणम्) तेषां प्रचेतसामितिशेषः । अर्थात् दक्षंपुत्रमुत्पाद्य सांकेतिक ऋषिमार्गे न्यस्य वनेगतवतां तेषांप्रचेतसां नारदस्योपदेशतोमोक्षः इति भावः । अत्र दक्षोत्पत्तिस्तुगौ-णापायत्वा अतएव दक्षमुत्पाद्येत्येवं तस्य गौणत्वेन निर्देशः इत्येकोन त्रिंशार्थः ॥ (अध्यायार्थस्पृशः) अध्यायानां अर्थंस्पृशन्ति ये ते । (अंघ्रयः) चरणानि । एकोऽध्यायः एकेन चरणेन निरूपित इतितात्पर्यार्थः एकादशचतुर्दशपंचदशत्रयोदशाध्यायेषु स्थानैकोनत्रिंश ताया हानिः प्रतिज्ञातं च पुरपृथुचरितयोः " चतुर्भिस्त्रयोदशाभिरितिपद्येनेत्यलम् ॥ १० ॥

(मू०)—उपक्रमोपसंहारौ प्रचेतोभिस्तदात्मजैः ॥
तथाप्यध्यात्मपारोक्ष्यात् श्रेष्ठ्यं प्राचीनवर्हिषः ॥ ११ ॥
पुण्यं पुत्रस्य पितुरप्यन्तःकरणशुद्धये ॥
भवेदितिद्योतयितुं प्रचेतोवृत्तवर्णनम् ॥ १२ ॥

(भाषार्थः) इसप्रकरणमें जो प्राचीनवर्हिनामक कहाहै यह अयुक्तहै क्योंकि उपक्रमोपसंहार में अर्थात् आद्यन्त में उस के पुत्र प्रचेतोंका वर्णन है अतः वही नायक होने चाहिये इस शंकाका समाधान करते हैं कि यद्यपि प्राचीन वर्हि के पुत्र प्रचेताही यहां नायक होते परन्तु पुरंजनउपाख्यानरूप मुख्यतत्त्व का उपदेश प्राचीन वर्हि को ही किया है अतः इस प्रकरण में वही मुख्य है और उत्तम है इसी लिये वही नायक है यह सिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ ऐसा होने परभी और एक शंका उत्पन्नहोती है कि यदि पुत्रों को नायकता नहीं है तो उन का वर्णन क्यों किया उसका उत्तर देते हैं कि इस में एक बहुत विलक्षणबात दिखाई है यथा—

पुत्र का पुण्य अपने अन्तःकरण की शुद्धि के लिये होता है यह बाततौ संसारमें प्रसिद्धही है परन्तु पुत्र का पुण्य पिताके अन्तःकरण की शुद्धि के लियेभी होता है इस बातके प्रकट करने को प्रचेताओं का वर्णन किया है क्योंकि पिता पुत्र भिन्न नहीं होते पिता का पुण्य पुत्र को और पुत्र का पुण्य पिता को मिलता है इस में " आत्मा वै जायते पुत्रः ,, यही प्रमाण है। इति चतुर्थस्कन्धः। ४।

दोहा ॥

श्री नारायणदास जी सारस्वत गुण रास ।
तिनकेहिसुतहरिचरणरत वैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
तुर्यस्कन्ध समाप्तलखि बुधजन पावहिं हर्ष ॥

(सँस्कृतार्थः)—नन्विह प्राचीनबर्हिर्नायक इत्युक्तंतच्चायोग्यम् उपक्रमोपसंहारयोः तस्य प्रचेतसां पुत्राणामेव नायकता दृश्यते स्यादतस्तेषामेव प्रकरणार्थता न प्राचीनबर्हिष इति शंक्याह उपक्रमोपसंहाराविति—यद्यपि प्राचीनबर्हिषस्सुतैः प्रचेतोभिः प्रकरणस्योपक्रमोपसंहारौ प्रतीयेते तथापि (अध्यात्मपरोक्ष्यात्) पुरञ्जनोपाख्यानरूपाध्यात्मतत्त्वस्य तत्प्रत्ययेवापदेशात् (प्राचीनबर्हिषः) तस्यैव (श्रैष्ठ्यम्) तेभ्यः पुत्रेभ्यः उत्तमता । अतःसिद्ध तस्यैव नायकता ॥ ११ ॥ नन्वेवमपिकिं पुत्राणां वृत्तनिरूपणेन तत्राह पुण्यमिति—सुतस्य पुण्यं तस्यैवान्तःकरण शुद्धये भवेदिति तु लोकतः सिद्धमेव परन्तु पुत्रस्य पुण्यं "आत्मावैजायतपुत्र इति प्रमाणत ऐकात्म्य स्वात्,, पितुरपिअन्तः करणशुद्धयेभवेदितिद्योतयितुं प्रकटयितुं प्रचेतसांतत्पुत्राणामपि वृत्तान्त निरूपणकृतमित्यर्थः ॥ १२ ॥

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्यो द्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेन ह्याकारि टीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
तस्यां स्कन्धो विसृष्टेर्गुणगणगणने याति तुर्यः समाप्तिम् ॥४॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायवोपदेवकृतायां हरिलीलायां सारस्वतवंशोद्भव श्रीमन्नारायणसूनुवैद्यनाथकृतकृष्णलीलामृताख्यटीकायां चतुर्थः स्कन्धः समाप्तः ॥

अथ पञ्चमस्कन्ध प्रारम्भः

(मूल) पञ्चमे स्थानमध्यायैः षड्विंशत्या निरूपितम् ।
मर्यादापालनं स्थानं तास्त्रिस्रो लोकभेदतः ॥ १ ॥
लोकाः क्षिति द्यौः पातालं प्रियव्रततदुद्भवः ।
क्षितेर्द्वीपादिमर्यादाः कृताः प्राक् तत्तदन्वयः ॥ २ ॥
एवं च पञ्चदशभिः पञ्चभिश्च त्रिभिस्त्रिभिः ।
चतुःप्रकरणीप्रोक्ताध्यायार्थान् क्रमशः शृणु ॥ ३ ॥

(भावार्थ) इस विसर्ग का चतुर्थस्कन्ध में प्रतिपादन करके अब पञ्चम स्कन्ध में क्रमसे स्थान का वर्णन करते हैं—इस पाँचवें स्कन्ध में छब्बीस अध्याय हैं । अपने कर्मों से प्राप्त जो पृथिवी आदि लोक, उनकी सीमा का रक्षण करनाही मर्यादा है वोह मर्यादा तीनों लोकों के भेदसे तीनप्रकार की है ॥१॥ पृथिवी स्वर्ग पाताल यही तीन लोक हैं । (शंका) स्थान के निरूपण करने में प्रियव्रत के वंश के वर्णन करने का क्या प्रयोजन है (उत्तर) प्रियव्रत तथा उसके पुत्र पौत्रादि इनके द्वारा ही भूमि की व्यवस्था का वर्णन है इसही लिये इनकें वंश का निरूपण करना आवश्यकीय है ॥ २ ॥ अब सब चार प्रकरण होते हैं यथा—प्रियव्रत के वंशका पहिला प्रकरण । और मर्यादा निरूपण में तीन प्रकरण हैं · उस मर्यादा के भी तीन भेद हैं पृथिवी की मर्यादा १ स्वर्ग की मर्यादा २ पातालकी मर्यादा ३ । पहिले पहिल पन्द्रह अध्यायोंसे तो प्रियव्रत के वंश का निरूपण है । फिर पाँच अध्याय में भूमि का दूसरा प्रकरण है । पुनः तीन अध्यायों द्वारा स्वर्ग का तीसरा प्रकरण है । तदनन्तर तीन अध्यायों से पाताल लोक की मर्यादा का चौथा प्रकरण है यही इस पाँचवें स्कन्ध में चार प्रकरण जानो । अब आगे अध्यायों के अर्थ का कथन किया जायगा ॥ ३ ॥

(संस्कृतार्थः)—एवं विसर्गं चतुर्थे प्रतिपाद्याथ पञ्चमे क्रमशः स्थानमुच्यते—पञ्चमइति (पञ्चमे) पञ्चमस्कन्धे (अध्यायैः षड्विंशत्या) तत्संख्यया (स्थानम्) तृतीयं पुराणलक्षणम् (निरूपितम्) कथितम् । स्थानंलक्षयति (मर्यादापालनंस्थानम्) निजकर्मप्राप्त लोकद्वीपादिसीमानां रक्षणमेव मर्यादाः ताः लोकभेदतः लोकत्रयभेदात् तिस्रः-संख्याकाः तासामनुक्रमं घनामित्यर्थः॥१॥प्रकरणानिप्रकाशयितुं लोकानुदीर्यते लोकाइति—(क्षितिः) पृथिवी (द्यौः) स्वर्गः (पातालम्) अधोलोकम् इति लोकत्रयम् । ननुस्थानेऽभिहिते किं प्रियव्रतान्वयनिरूपणेन तत्राह

(प्रियव्रततद्बुद्भवैः) प्रियव्रतेन तदुद्भवैः तत्पुत्रपौत्रैश्च (क्षितेः) भूमेः (द्वीपादि मर्यादाः) द्वीपादिव्यवस्थाः (कृताः) अभिहिताः (तत्) तस्मात् (प्राक्) पूर्वं (तदन्वयः) तदन्वय अन्वयःवंशः कथित इति भावः । ॥ २ ॥ ततश्च चत्वार्येवप्रकरणान्युच्यते एवंचेति—प्रियव्रतवंशस्यैकं प्रकरणम् । मर्यादानांचत्रीणि प्रकरणानीतिमिलित्वा चत्वारिप्रकरणानि जातानि तानि च क्रमात् यथा—(पञ्चदशभिः) अध्यायैः वंशवर्णनम् । (पञ्चभिः) अध्यायैः क्षितिलोकप्रकरणम् द्वितीयम् । (त्रिभिः) अध्यायैः स्वर्लोक प्रकरणम् तृतीयम् (त्रिभिः) पुनस्त्रिभिरध्यायैर्नागलोक प्रकरणं चतुर्थम् । इति चतुःप्रकरणीकृता । अथ (क्रमतः) क्रमेण (अध्यायार्थान्) अध्यायानांप्रयोजनम् (शृणु) शृण्विति गुरुणाबोपदेवेन कंचिच्छिष्यंप्रयुक्तामिस्यर्थः ।

(मू०) प्रियव्रताग्नीध्रनाभिष्वेकैक ऋषभे त्रयः ॥
राजोपदेशमुक्तत्वे भरतेऽष्टौप्रपौत्रजे ॥ ४ ॥
पुण्यैणसंगजडताशिविकोक्तिप्रकाशनैः ॥
तत्वाख्यानभवारण्यतद्व्याख्यानैः परोन्त्रये ॥ ५ ॥
मेर्विलावृतषट्काद्विवर्षद्वीपैश्च पञ्च कौ ॥
दिवि क्रमात्त्रयः सूर्यदिवसूर्यान्तरध्रुवैः ॥
पातालशेषनरकैस्त्रयोधो भुवने मताः॥ ६

(भाषार्थ) प्रियव्रतराजाकी कथा में पहिला अध्याय है ॥ अग्नीध्रके चरित्र में दूसरा अध्याय है ॥ नाभिके प्रसंग में तीसरा अध्याय जानो ॥ सौ पुत्रोंके साथ ऋषभ देवजी के राज्य वर्णन में चौथा अध्याय है ॥ उन्ही ऋषभदेवजी ने अपने पुत्रोंको मोक्षधर्म का उपदेश किया यही पाँचवां अध्यायहै ॥ ऋषभदेवजी के मुक्तिका छटा अध्याय है ॥ प्रियव्रत के पोतेभरत मुनिके चारित्रके आठ अध्यायहैं ॥ ४॥ यथा—भरतजीने यज्ञादि पुराणोंसे हरिको सन्तुष्ट किया यही सातवां अध्याय है ॥ मृग के पालन से उन्हीं भरतजी को मृगपना प्राप्तहुआ यही आठवां अध्याय है ॥ सब के समान भाव देखने से भरतजी ही जड भरत हुए यहीनवां अध्याय है ॥ उन्हीभरत मुनिने रहूगणकी पालकी उठाई यही दशवांअध्याय है ॥ फिर उन्हों ने अपना योगी का स्वरूप प्रकट किया यही ग्यारहवां अध्याय जानो ॥ पुनः इस रहूगण के अर्थमुनि ने परमतत्व का उपदेश किया यही बारहवांअध्याय है ॥ वैराग्यकी दृढता के अर्थ भवाटवीका वर्णन तेरहवें अध्याय में है ॥ तत्पश्चात् उसी भवाटवी के रुपक का यथार्थ व्याख्यान यही चौदहवें अध्याय का तात्पर्य है ॥ भरतवंशके निरुपण में पन्द्रहवाँ अध्याय है ॥ ५ ॥ अब दूसरे भूमि प्रकरण को कहते हैं मेरु पर्वत की स्थितिही सोलहवाँ अध्याय है ॥ इलावृत कथाही इस अध्या

यका मुख्यार्थ हैं और गंगाका प्रसंग गौण है यही सत्रहवाँ अध्यायहै ॥ भद्राश्व, हरिवर्ष, केतुमाल, रम्यकूट, हिरणमय, उत्तरकुरु, इन छः वर्षो का निरूपणही अठारहवाँ अध्यायहै ॥ किंपुरुष तथा भारत यहभी दोवर्ष हैं इन का निरूपणभी उन्नीसवें अध्याय में हैं ॥ जम्बू प्लक्ष, शालमली कुश क्रौंच पुष्कर इनसात द्वीपों की कथा बीसवें अध्याय हैं ॥ अब तीसरा स्वर्गप्रकरण कहतेहैं — लोकयात्रार्थ प्रतिदिन सूर्य के कालचक्र का घूमना यही इकीसवाँ अध्याय है ॥ आकाश तथा सूर्य के मध्य के भाग में ज्योतिश्चक्रका दिखाना यही बाईसवाँ अध्यायहै शिशुमार स्वरूपद्वारा ध्रुवस्थान का दर्शाना यही चाईसवें अध्याय में है ॥ अब चौथे पाताल प्रकरण को कहते हैं पाताल आदि नीचे के लोकों का कथन यही चौवीसवाँ अध्याय है भगवान के शेषावतार का स्थान, पच्चीसवें अध्याय में है ॥ सम्पूर्णनरको की रचना यही छव्वीसवाँ अध्याय है ॥

दोहा ॥

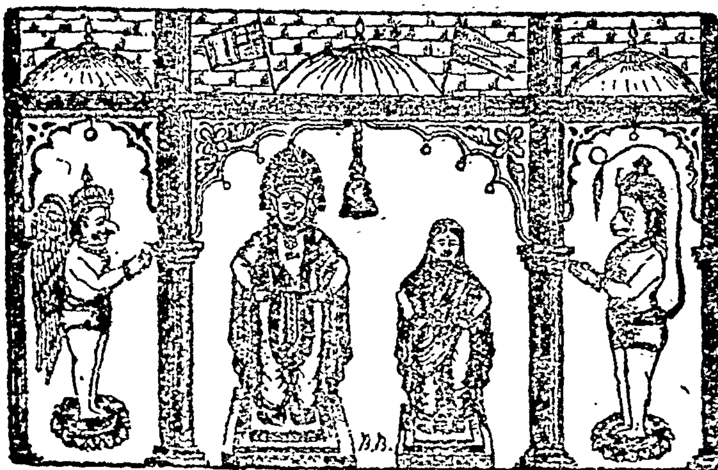
श्री नारायणदास जी सारस्वत गुण रास ।
तिनकेहिसुतहरिचरणरत वैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
पंचमस्कन्धसमाप्तलखि बुधजन पावहिंहर्ष ॥

इति पञ्चमस्कन्धः ॥

(संस्कृतार्थः) (प्रियव्रताग्नीध्रनाभिषु) प्रियव्रतनृपे, आग्नीध्रे भूपाले नाभौ च राशि (एकैकः) एकैकोऽध्यायः । प्रियव्रतकथायां प्रथमः । आग्नीध्रचरिते द्वितीयः । नाभि प्रसंगे तृतीय इतिभावः ॥ (ऋषभे) ऋषभदेवगाथायां (त्रयः) त्रयोऽध्यायाः कैर्हेतुभिस्तानाह— (राज्योपदेष्टृमुक्तत्वैः) ऋषभस्य राजत्व, मुपदेष्टृत्वं मुक्तत्वंचेति क्रमात्त्रिषु । स्वपदंतु प्रत्येकान्वयि शतपुत्रस्यार्षभस्य राज्यवर्णने चतुर्थः । तस्यमोक्षधर्मोपदेशः पुत्रानुशासनेपञ्चमः । तस्यैव मुक्तोपष्टः इति तात्पर्यः । (प्रपौत्र जे) प्रियव्रतस्येतिशेषः । (भरते) भरतविषये (अष्टौ) अष्टावध्यायाः ।४। क्रमादष्टानां प्रयोजनं प्रतिपादयत्यधो लिखित हेतुभिः (पुण्यैणसंगजडता शिबिकोढिप्रकाशनैः तथा तत्वाख्यानभवारण्यतद्व्याख्यानैश्च) पुण्यम्, एणोमृगस्तस्यसंगः,जडत्वम्, शिबिकाऊढिः स्कन्धेप्रापणम् प्रकाशनंस्वरूप प्रकटीकरणम्, तत्वानिरूपणम्, भवाटवी वर्णनम्, भवाटव्याव्याख्यानम्, भरतः यज्ञादिपुण्यैर्हरितुंतोष इतिसप्तमार्थः । तस्यमृगपालन प्रसक्तस्यमृगताप्राप्तित्यष्टमार्थः । पुनस्तस्यरागाद्यभावतो जडत्वंजातमिति नवमार्थः । ततःसमुनी

रहूगणस्य शिविकामुवाहेति दशमार्थः । पश्चात्स्वयोगिस्वरूपं प्रकाशितवानित्येकादशार्थः । ततः परं स तस्मै परं तत्वमुपादिशदिति द्वादशार्थः । अथ वैराग्यदाव्यापभवाट व्युपवर्णनमिति त्रयोदशार्थः ततो भवाटवीरूपकस्य प्रस्तुतार्थव्याख्यानमिति चतुर्दशार्थः । इत्यष्टानामर्थोजातः । (परः) पञ्चदशाध्यायः (अन्वये) भरतवंशविषये । तस्यैव भरतस्य वंशजा नृपाः कथ्यन्ते इतिपञ्चदशार्थः ॥५॥ अथ क्षितिप्रकरणमाह—(क्षौ) भूमिविषये (पञ्च) पञ्चसंख्याका अध्यायाःसन्ति तानाहैर्भिर्हेतुभिः (मेर्विलावृतषट्कद्विवर्षद्वीपैः) मेरुश्चइलावृतञ्च षट्कञ्च द्विवर्षञ्च सप्तद्वीपानिच तैः । मेरोः स्थितिरेव षोडशार्थः । इलावृतकथैवमुख्यार्थः गङ्गावतारप्रसंगस्तु पूर्वाध्यायशेषः इति सप्तदशार्थः । भद्राश्वहरिवर्ष केतुमाल रम्यकूटाहिरणयोभरतकुरव इत्येषां वड्वर्षाणां निरूपणमेवाष्टादशार्थः । किंपुरुषं भारतंचात द्वूवर्षे तयोवर्णनमेवैकोनाविंशार्थः । जम्बूप्लक्षशाल्मली कुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञकानिसप्तद्वीपानि तेषांकथैव विंशार्थः । स्वर्गप्रकरणमाह—(दिवि) स्वर्गप्रकरणविषये (त्रयः) त्रयएवाध्यायाः—(सूर्यदिवसूर्यान्तरध्रुवैः) सूर्यश्चादिवसूर्ययोरन्तरश्च ध्रुवश्च तैः क्रमात्त्रयोऽध्यायाः । लोकयात्रार्थमन्वहं सूर्यस्यकालचक्रेण भ्रमणमेत्येकाविंशार्थः । दिवसूर्ययोरन्तरं ज्योतिश्चक्रम् तस्य कथनमितिद्वाविंशार्थः । शिशुमारस्वरूपेणध्रुवस्थाननिरूपणमितित्रयोविंशार्थः पातालप्रकरणमाह—(अधोभुवने) पाताले क्रमात् (त्रयोमताः) त्रयोऽध्यायाःसन्ति कैःकारणैः तानाह—(पातालशेषनरकैः) पातालञ्च शेषंच नरकाश्च तैः पातालाद्यधोलोककथनमिति चतुर्विंशार्थः । शेषावतारस्य भगवतःस्थितिरेव पञ्चविंशार्थः । सकलनरकाणां रचनैवषड्विंशार्थः ॥६॥

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्यो द्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेन व्याकारि टीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
तस्यां स्थान प्रसंगे व्रजतिलघुशुभः पंचमोयं समाप्तिम् ॥ ५ ॥



इति श्रीमहामहोपाध्यायवोपदेवकृतायां हरिलीलायां सारस्वतवंशोद्भव श्रीमन्नारायणसूनुवैद्यनाथकृतकृष्णलीलामृताख्यटीकायां पञ्चमः स्कन्धः समाप्तः ॥

अथ षष्ठस्कन्ध प्रारम्भः।

(मू॰) षष्ठ एकोनविंशत्या पुष्टिः सानुग्रहोहरेः ॥ १
कर्मणा येन यैर्यत्र स्थातव्यं तेन तत्र ते।
तिष्ठन्तीति हि मर्यादापालनं स्थानमीरितम् ॥ २
कृतेऽपि पातके यत्र न पातः प्रत्युतोन्नतिः।
सोऽनुग्रहोऽजामिलस्य भुवीन्द्रस्य तथा दिवि ॥ ३
त्रिभिः षोडशभिश्चेन्द्रे पापं षट्काष्टकेद्विके।
विश्वरूपस्य वृत्रस्य मरुताञ्च वधात् त्रिधा ॥ ४
दक्षान्वयस्तदुत्पत्त्यै विश्वरूपेत्रिकेऽग्रिगे ॥
वृत्राष्टकेचतुःकेन्ते वृत्रमाक्चित्रकेतुताः ॥ ५ ॥

(भावार्थ) इस प्रकार पाँचवेंस्कन्धमें स्थानका निरूपण करके इसछटेस्कन्ध में पोषण का वर्णन किया जाताहै इसछटेस्कन्ध में उन्नीस अध्याय से पोषण को कहा है वह पोषण, दुराचारी भक्तोंके ऊपरभी हरिका अनुग्रह करना यही है। ।१। (शंका) स्थाननिरूपण के अनन्तरही पोणका निरूपण है इसमें क्या प्रमाण है और हम यह कहैंकि पोषणहीके अनन्तर जो स्थानका निरुपण होता तो इसमें क्या हानिथी (उत्तर) जिनकर्मोंसे जिन अधिकारियोंको जिन २ भूमि आदिस्थानों में रह ना चाँहिये उसीमर्यादा का पालन करनाही स्थान है यही स्थान का लक्षण पाचवें स्कन्धमें किया है परन्तु वेद विहित शुभ कर्मो के न करनेपरभी जिनभक्तोंका भग वतभक्ति के प्रभावसे नरक आदि नीचे के लोकों में गमन नहोय प्रत्युत सद्गति और उन्नति ही होय ऐसा जो श्रीभगवान का अनुग्रह है यही पोषण है इस कारण जब तक मर्यादा स्थितिरूप स्थान का निश्चय न होता तबतक मर्यादा भंग रूपी पोषण की किस प्रकार सिद्धि होसकती है इसीलिये प्रथमस्थान का निरूपण कर व्यासजी ने पोषण का निरूपण किया है। यह पोषण रूप अनुग्रह फिर दोप्रकार का है एक पृथ्वी में दूसरा स्वर्ग में इस में से पहिले प्रकार को दृष्टान्त द्वारा कहते हैं यथा- भगवानने अतिदुराचारी पापी अजामिलका उद्धार किया यहीपृथ्वी का अनुग्रह है अब दूसरे प्रकार का कथन करते हैं यथा—इन्द्रने विश्वरूप, वृत्रासुर तथा मरुतों को मारा परन्तु इतने पर भी श्री भगवान की कृपा से उनका शंकट कटा यही स्वर्ग का दूसरे प्रकार का अनुग्रह है। इन दो प्रकार के अनुग्रह करने से यही

सिद्धहोताहै कि जितनें पृथिवी तथा स्वर्गके वासी हैं वोह जब २ भगवानकी भक्ति करैंगे तभी तब श्रीभगवान उनके पापोंको दूरकर उद्धार कर देंगे यह जानना।(शंका) दोही लोकोंका निरूपण किया परन्तु पाताल का क्यों नहीं (उत्तर) पाताल तथा स्वर्गको समानही माना है इसकारण स्वर्गहीमें पाताल का अन्तरभाव जानो ॥३॥ इस कारण इस पूर्व कथन से यही तात्पर्य निकला कि इस स्कन्ध में दो २ महा प्रकरण हैं एक तौ अजामिल का दूसरा इन्द्र का। अजामिल का बृत्तान्त तीन अध्यायों में कहा है तथा इन्द्र का १६ सोलह अध्यायों में इस प्रकार सब मिलकर १९ उन्नीस अध्याय हुए। अब दूसरे महा प्रकरण में अवान्तर प्रकरणों का निरूपण करते हैं—पहिले अवान्तर प्रकरण में इन्द्र ने विश्वरूप नामक ब्राह्मण का संहार किया इस में छः अध्याय हैं। दूसरे अवान्तर प्रकरण में इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया इसमें आठ अध्याय हैं। तथा तीसरे अवान्तर प्रकरण में इन्द्र ने मरुतों का हनन किया इस में दो अध्याय हैं ॥ ४ ॥ (शंका) विश्वरूप के प्रकरण में छः अध्याय कहे हैं यह युक्तिविरुद्ध है क्योंकि इन छओं में पिछले तीन अध्यायही विश्वरूप के वर्णन में अर्थात् सात आठ नौ में और पहिले तीनों में अर्थात् चार पांच छः में दक्ष के वंश का वर्णन है (उत्तर) इस दक्ष का वंश भी विश्वरूप ही की उत्पत्ति के अर्थ है अर्थात् दक्ष के दौहित्रं ही के पुत्र विश्वरूप हैं तौ इसका वर्णन उचितही है। इसी प्रकार वृत्रासुर वध के आठ अध्याय भी जानों अर्थात् पिछले चार अध्याय (चौदह पन्द्रह सोलह सत्रह) वृत्रासुर के वध में जानने तथा पहिले चार अध्याय (दश ग्यारह बारह तेरह) इसी वृत्रासुर के पूर्व जन्म के चित्रकेतु होने की कथा में जानने। ५।

(संस्कृतार्थः) एवं पंचमार्थं प्रकाश्य षष्ठं पोषणमुच्यते षष्ठइत्यादिना। (षष्ठे) षष्ठस्कन्धे (एकोनविंशत्या) एकोनविंशतिभिरध्यायैः (पुष्टिः) पोषणम् उक्तमितिशेषः। (सा) पुष्टिः (हरेरनुग्रहः)आचाररहितेष्वपिभक्तेषु अनुग्रहः अर्थात् अतिलंघित मर्य्यादस्यापिभक्तस्य रक्षणलक्षणमेव पोषणमित्यर्थः ॥ १ ॥ ननुपूर्वस्थानं निरूपणीयं तदनुपोषणमित्यत्र किंमानं विपर्य्ययएव किंनभवेदिति शंकानिरासार्थं कथितमपिस्थान लक्षणं पुनरपिप्रकटयति (येन) कृतेन (कर्मणा) कर्तव्येन (यैः) अधिकारिभिः (यत्रस्थातव्यम्) यत्रस्थाने भवितव्यम् (तेन) तेनैवकर्मणा (ते) अधिकारिणः (तत्र) स्थाने (तिष्ठन्ति) (इति) पूर्वोक्तप्रकारेण या (मर्यादा) तस्याः (पालनम्) रक्षणमेव (स्थानं ईरितम्) स्थानं तच्च कथितम् पञ्चमस्कन्धे भूस्थित्यादिप्रसंगेन ॥ २ ॥ (पातके) वेदविहितकर्मोल्लंघनेनान्यथाकरणं तस्मिन् (कृतेऽपि) (यत्र) यस्मिन् भगवद्भक्ति प्रभावात् (न पातः) नाधोगमनम् (प्रत्युत) किन्तु (उन्नतिः) वृद्धिरेवभवतिसएवानुग्रहः दृष्टान्तेनदृढयति—यथा कुत्सितकर्मकरणेऽपि (अजामिलस्य) भक्तस्यपापान्मुक्तिः (सानुग्रहः) सएवानुग्रहपदवाच्यः एषच (भुवि) भूमौ (तथा) तेनैवप्रकारेण (इन्द्रस्य) स्वर्गरक्षकस्य (दिवि) स्वर्गे। इति कथनेनइदंबोध्यम्—भूमिस्थानां स्वःस्थानांचान्यपापानि

पातकिनामपि ग्रहणं कर्तव्यमितिदिक् । नानात्वं तु स्वर्गस्यैव भागइति पृथङ्नोक्तः ॥ ३ ॥ अन इचाङ्गद्वाप्रकरणद्वयमेवाच्यते । त्रिभिरित्यादिना—(त्रिभिः) त्रिभिरध्यायैः (षोडशभिश्च)षोडशाध्यायैश्च कथादिविशेषः भूप्रकरणमथच स्वर्गप्रकरणमितिद्वयमित्यर्थः । द्वितीयेऽवान्तरप्रकरणान्याह । (विश्वरूपस्य) त्वष्टुरनाम्नोविप्रस्य (वृत्रस्य) वृत्रासुरस्य (मरुतांच) वायूनांच (वधात्) हननात् (ऐन्द्रंपापं) इन्द्रसम्बन्धी) अधर्मः (त्रिधा) त्रिविधः तच्चाध्यायानां(षट्के) षड्भिरध्यायैः (अष्टके) अष्टभिरध्यायैः (द्विके) द्वाभ्यामध्यायाभ्यामुक्तम् समुदायेनप्रत्ययः ।४। ननुविश्वरूपप्रसंगं षट्कइति विरुद्धम् प्रथमेऽध्यायत्रिके दक्षवंशनिरूपणात् इत्याशंक्याह दक्षान्वय इति—(वैश्वरूपं) विश्वरूपसम्बन्धिनषट्के—(आद्यं) आद्ये (त्रिके) त्रिष्वध्यायेषु (दक्षान्वयः) दक्षवंशोनिरूप्यत इतिशेषः । कस्मैसिद्धये (तदुत्पत्यै) तस्यविश्वरूपस्य उत्पत्त्यै तज्जननप्रसंगार्थमित्यर्थः । वृत्राष्टकस्याशंकाऽपि विश्वरूपस्य षट्कवत् अर्थात्—(वृत्राष्टके) वृत्रनिरूपणाष्टकध्ये (अन्त्ये) अष्टकस्यान्त्यभागचतुष्टये इत्यर्थः (चतुष्के) चतुर्ष्वध्यायेषु (वृत्रप्राक्चित्रकेतुना) वृत्रासुरस्यपूर्वंचित्रकेतु त्वमासीत्तदपि वृत्रप्रसंगार्थमुक्तमिति तात्पर्यार्थः ॥ ५ ॥

(मू०) अजामिलाघनाशोक्ति र्वैष्णवैर्याम्यनिग्रहः ॥
यमेन सांत्वनं तेषां दक्षेणाराधनं हरेः ॥ ६ ॥
नारदात्पुत्रनाशोऽस्य दौहित्राद्विश्वरूपभूः ॥
तस्य देवपुरोधस्त्वं गुरुत्वं विश्ववर्मणि ॥ ७ ॥
तद्वधाघाद्वृत्रभयं वृत्रवासवसंगरः ॥
वृत्रभक्तिज्ञानशौर्यं वृत्रस्य मरणं रणे ॥ ८ ॥
वृत्रहत्या प्रतीकारश्चित्रकेतोः सुताच्छुचः ॥
बोधोंगिरो नारदाभ्यां विद्यालभश्च नारदात् ॥ ९ ॥
गौरीशापाच्च वृत्रत्वं गर्भे शक्रमरुद्भिदा ॥
व्रतं दितिकृतं पुत्र्यं मरुद्भ्यः पञ्चमे स्थिताः ॥ १० ॥

(भाषार्थः) अवयथा क्रम एक२ पाद से एक २ अध्याय का वर्णन करते हैं— अजामिलके पापको दूर करना यही पहिले अध्याय का अर्थ है । विष्णु दूतों सें यम दूतों का निग्रह करना यही दूसरे का अर्थ है ॥ यमराजने अपने दूतों को विष्णुकी वडाई सुना कर शान्त किया यही तीसरे का अर्थहै ॥ प्रचेताके पुत्र दक्षने हरि का आराधन किया यही चौथे का अर्थहै ॥६॥ इसी दक्षके दशहजार पुत्रों को नारदजीने अपने उपदेशसे घरसे वनको भिजवाया यही पाँचवें का अर्थहै ॥ दक्षके दौहित्रत्वष्टा से विश्वरूप की उत्पत्ति यही छटेका अर्थहै ॥ वह विश्वरूप देवताओं का पुरोहित वना यही सातवें का अर्थहै ॥ विश्व रूप ने इन्द्रके प्रति दैत्यों के विनाशार्थ नारायण कवचको सुनाया यही आठवें का अर्थ है ॥ ७ ॥ जव इन्द्र ने विश्वरूप

का वध किया तब उसके पिता त्वष्टाने कोपकर इन्द्र के मारने को बृत्रासुर को उत्पन्नकिया उसी बृत्रासुरसे इन्द्रको भय हुआ यही नवमका अर्थ है ॥ बृत्रासुर तथा इन्द्रका परस्पर संग्राम का होना यही दशवें का अर्थ है ॥ बृत्रासुर ने कृष्णमें भक्ति अपने मन में ज्ञान तथा इन्द्रमें शूरता की यही ग्यारवेंका अर्थ है ॥ इन्द्रने बृत्रासुर को युद्ध में वध किया यही बारहवें का अर्थ है ॥ बृत्रासुर ब्राह्मण की हत्या के महाभय से विष्णु ने इन्द्र की रक्षा की यही तेरहवें का अर्थ है ॥ मृत पुत्र के स्नेह से चित्रकेतु ने अनेक प्रकार का शोच किया यही चौदहवें का अर्थ है ॥ उस चित्रकेतु का नारद जी तथा अंगिरा ऋषि ने तत्वोपदेश द्वारा शोक को दूर किया यही पंद्रहवें का अर्थ है ॥ नारद ने योग बल से उस चित्रकेतु के मृत पुत्र को जिवाकर और शेष जी के प्रसन्न करने वाली विद्या का उपदेश दिया यही सोलहवेंका अर्थ है ९ ॥ आकाशचारी चित्रकेतु बहुत सम्पत्ति से उन्मत्त होकर शिवजी की हंसी कर पार्वतीसे शाप दियाहुआ बृत्रासुर होगया यही सत्रहवेंका अर्थ है ॥ इन्द्रने दितिके गर्भ के ४९ उनंचास टुकडे किये वही वायु हुए यही अठारहवें का अर्थ है कश्यप जी ने दिति के अर्थ जो पुत्रोत्पत्ति का व्रत कहा है उस का वर्णन यही उन्नीसवें अध्याय का अर्थ है इस प्रकार इस षष्ट स्कन्धके यह उन्नीस अध्याय, एक २ पाद से निरूपण कियेगये हैं ॥ १० ॥

दोहा ॥

श्री नारायणदास जी सारस्वत गुण रास ।
तिनकेहिसुतहरिचरणरत बैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
षष्ठस्कन्ध समाप्तलखि बुधजनपावहिं हर्ष ॥

इति षष्ट स्कन्धः ॥ ६ ॥

(संस्कृतार्थः) अथ स्कन्धग्रहणे श्लोकार्थमाह—(अजामिलाघनाशोक्तिः) अजामिलस्य यः अघः पापं तस्यनाशोक्तिः दूरीकरणमित्यर्थः इतिप्रथमार्थः ॥ (वैष्णवैर्याम्यनिग्रहः) वैष्णवैः विष्णुदूतैः याम्यानां यमदूतानांनिग्रहः तिरस्कारकरम् इतिद्वितीयार्थः ॥ (यमेनसान्त्वनं तेषाम्) यमेन—यमराजेन तेषांस्वदूतानां (सान्त्वनम्) तेषामेवाकृष्टवर्णनमित्यर्थः इतितृतीयार्थः ॥ (दक्षेणाराधनंहरेः) दक्षेणप्रचेतःपुत्रेण हरेः विष्णोः आराधनम्—चिन्तनम् इतिचतुर्थार्थः ॥ ६ ॥ (नारदात्पुत्रनाशोऽस्य) अस्यदक्षस्य नारदात् नारदकर्तृकात् पुत्राणांहर्यश्वशबलाश्वकानांनाशः वाचःकृतैः नगरात्रिष्कासनम् इति पञ्चमार्थः ॥ (द्रोहाद्गुरुत्यागः) द्रोहात्स्वगुरुःसकाशात् विश्वरूपस्यगुरुत्वप्राप्तिः इति षष्ठार्थः ॥ (तस्यदेवगुरुत्वम्) तस्य विश्वरूपस्य देवानां पुरोहितत्वंपौरोहित्यम् इति सप्तमार्थः ॥ ७ ॥ (गुरुत्वंविश्ववर्मणि) विश्ववर्मणिनारायणकवचे गुरुत्वंविश्वरूपस्य इन्द्रंप्रति गुरुत्वभावः विश्वरूपःनारायणकवचं दत्तवानर्थमिन्द्रायप्राह इति अष्टमार्थः ॥ ७ ॥ (तद्वधाद्वृत्रभयम्) तस्य विश्वरूपस्यवधेनइन्द्रकृतेनवधात् वृत्रभयमिन्द्रस्य—इन्द्रेणविश्वरूपेहते तत्पितात्वष्टाइन्द्रशत्रुवधार्थंयज्ञंकृतवान् ततः वृत्रासुर उत्पन्नवान् तेनतस्यभयमासीदितिभावः इति नवमार्थः ॥ (वृत्रवासवसंगरः) वृत्रवासवयोःवृत्रपुरन्दरयोः संगरः परस्परं युद्धम् इति दशमार्थः ॥ (वृत्रभक्तिज्ञानशौर्यं) वृत्रस्यासुरस्यभक्तिः ईश्वरे ज्ञानं स्वरूपस्य शौर्यंच इन्द्रकृतमित्यनुवर्णितमित्येकादशार्थः ॥ (वृत्रस्यमरणंरणे) वृत्रासुरस्य रणेयुद्धे मरणंवध इति द्वादशार्थः ॥ ८ ॥ (वृत्रहत्याप्रतीकारः) वृत्रासुरस्य ब्रह्महत्यायाः प्रतीकारः उपायः । ब्रह्महत्याभयात् विष्णुना शक्रोरक्षित इतिभावः इति त्रयोदशार्थः ॥ (चित्रकेतोर्मृताच्छुचः) चित्रकेतोः ज्ञातिहननेहात् मृतात्पुत्रात् पुनःविविधाःशोकाः समुत्पन्नाः इति चतुर्दशार्थः ॥ (बोधोऽङ्गिरोनारदाभ्याम्) तस्यैवचित्रकेतोः अङ्गिरसानारदेनच बोधः—तत्त्वोपदेशेन शोकापनोदनंकृतमित्यर्थः इति पञ्चदशार्थः ॥ (विद्यालाभश्चनारदात्) नारदात् विद्याप्राप्तिः चकाराज्जीवोक्तिः संकर्षणदर्शने । नारदः तत्पुत्रोत्थापनेन चित्रकेतुं विशोकीकृत्यपश्चात् तोषितो महाविद्यामादिष्टवानिति षोडशार्थः ॥ ९ ॥ गौरीशापाद्वृत्रत्वम्) आकाशचरश्चित्रकेतुः सकलांसमृद्धिं प्राप्योन्मत्तःशिवविदूषकगौरीशापात् वृत्रतांगतः इति सप्तदशार्थः ॥ (गर्भशक्रमरुद्भिदा) गर्भो दितेर्गर्भे गर्भस्थानामित्यर्थः शक्रेण इन्द्रेण मरुतां भिदाभेदः यस्मिन्कृन्तनमित्यर्थः इत्यष्टादशार्थः ॥ (व्रतंदितिकृतंपुंस्वम्) पुंस्वंपुत्रायदितेः दितेःकृतं कश्यपेनप्रोक्तमित्यर्थः व्रतंवर्णितमित्येकोनविंशार्थः ॥ (प्रत्यध्यायमिमेऽर्थाः) प्रत्यध्यायं—अध्यायं अध्यायंप्रति इमे अर्थाःअर्थपादाः एकोनविंशति संख्यका इत्यर्थः । १० ।

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्यो द्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेन व्याकारि टीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
तस्यां स्कन्धः सपोपः प्रथितशुभगुणः षष्ठसंख्यः समाप्तः ॥ ६ ॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायवोपदेवकृतायां हरिलीलायां सारस्वतवंशोद्भव श्रीमन्नारायणसूनुवैद्यनाथकृतकृष्णलीलामृताख्यटीकायां षष्ठः स्कन्धः समाप्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमस्कन्ध प्रारम्भः ॥

(मू) सप्तमे पञ्चदशभिरध्यायैरूतिवर्णनम् ॥
ऊतिः प्राक्कर्मजा कर्ता भोक्तास्मीत्यादिवासना ॥ १ ॥
सा प्रल्हादेतिहासेन दशाध्यायेन दर्शिता ॥
स्वरूपतः कारणतः पंचाध्यायेन कर्मणा ॥ २ ॥
प्रल्हादस्य परो रागो द्वेषः पितृपितृव्ययोः ॥
विष्णौ तयोरविषये कर्मणोऽसुरभावदात् ॥ ३ ॥
दृष्टुमीशं विहंतुं तद्वैकुंठकलहान्मिथः ॥
चतुःसनो हि प्रल्हाद इतरौ विजयो जयः ॥ ४ ॥
प्राङ् निष्कामसकामाभ्यां भक्तिभ्यां वासना द्वयम् ॥
द्वयोरप्येकफलता कर्मणो भोगतः क्षयात् ॥ ५ ॥

(भाषार्थ) इस प्रकार छटे स्कन्ध में पोषण का वर्णन कर अब सातवें स्कन्धमें ऊति का वर्णन करतेहैं। इस स्कन्धमें पन्द्रह अध्याय हैं। उन कर्मों के अनुसार पूर्वजन्मकी "मैंने यह काम किया, मैंने इस कामको भोगा,, इस प्रकारकी जो वासनाहै वहीऊति है॥ १ ॥ अब इसी ऊतिके स्वरूप तथा कारणको कहते हैं—पहिले दश अध्यायें मेंप्रह्लाद के चरित द्वारा ऊतिके स्वरूप का निरूपणहै तथा पिछले पाँच अध्यायों में ऊति के असाधारण आदि कर्मों द्वारा कारण स्वरूप का निरूपण है इसी लिये इस सातवें स्कन्ध में यही दो प्रकरण हैं ऐसा जानना ॥ २ ॥ इसी बातको दृढ कर फिर दिखाते हैं—प्रह्लादजी की विष्णु भगवान में अत्यन्त प्रीति होनी तथा इस प्रह्लाद के पिता और पितृव्य (पिताके भाई) इन दोनों का विष्णु में अत्यन्त द्वेष होकर इस प्रकार के प्रेमतथा द्वेषके अविषय उस विष्णु में असुर भावसे उस भक्तकी भक्तिका निरोध करना तथा उस भक्त का प्रेम करना यह प्राचीन वासना है ॥ ३ ॥ इस कर्म के जानने में हेतु कहते हैं एकतौ नारायण के दर्शन करने में बद्ध दृढ भाव है और दो नारायण के दर्शन से रोकदेने में प्रवृत्त हैं यह परस्पर कलह वैकुंठसेही चलाआता है (प्रश्न) वैकुंठ में तौ प्रहलाद तथा हिरण्यकशिपु और हिर हिरण्याक्ष का कलह (लड़ाई) नहीं हुआ (उत्तर) जो इस जन्म में प्रल्हादजी हैं वह पहिलेमें चतुःसन (सनकादिचार) थे वेह सनकादि एकही ब्रह्माका तप चार प्रकार से विभक्त होगया है इसी कारण चार होगये हैं किन्तु वास्तव में तौ एकही

हैं। और जो दो विष्णुके जय विजय पार्षदथे वेही इस जन्म में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षहुएहैं यही कलहका प्रसंग वैकुंठसेही चलाआताहै। (प्रश्न) प्रल्हादही पहिले जन्म में सनकादि ऋषिथे इसमें क्या प्रमाण है (उत्तर) मूलमें जय विजयही हिरण्य कशिपु और हिरण्याक्ष हुए हैं यह लिखाहै इसहीके देखनेसे यहभी अनुमान होता है कि चतु:सनही प्रल्हाद हुए हैं क्योंकि द्वारपालों का यही काम है कि जिसको न जाने उसको विना स्वामीकी आज्ञालिये भीतर न घुसनेदें यही काम उन जय विजय ने चतु:सन के साथ किया और जो न रोकते तो अपने स्वामीकी आज्ञा भंगहोती इसीलिये इनदोनो का अपराध सिद्ध नहीं होता। परन्तु यह नीतिके मार्ग में चलरहे थे तथापि इनको विना कारण जो चतु:सन ने शापदिया और स्वपदसेच्युत किया इसही दोषके कारण यह चतु:सनभी अपने कर्मके अनुसार अपने स्थान से च्युत हुए और प्रल्हादभी हुए यही अनुमान है। इस संसार में कौन ऐसा पुरुष है कि जो अपने किये हुए पाप पुण्यके शुभ अशुभफलको न भोगे। और कौन ऐसा पुरुष है कि जो लोकोत्तर चमत्कारिक वृत्तान्त के प्रकाश करने में चतुरोंने परभी चित्त में भलीभांति विचारकर भी छिपाजाय। यह चतु:सनही प्रल्हादहुएहैं इस में केवल अनुमानही प्रमाण नहीं है किन्तु शब्द प्रमाणभी है यथा पुरुषोत्तमस्तुतिमें आचार्यों ने इसी बातको नारायणकी स्तुति करने के समय दिखाया है इसका श्लोकभी हमने सँस्कृतटीके में लिखा है सो देखलेना। इस कारण अनुचित आचार के आचरण करनेसे चतु:सन (सनक सनातन सनंदन सनत्कुमार) को निजस्थानसे च्युतिरूप भयप्राप्तहुआ और दूसरा जन्मभी धारना पड़ा क्योंकि कर्मतो भोगेही जाते हैं॥४॥ अब वासना के भेद का निरुण करते हैं—जोप्रह्लादकी श्री नारायण में बालकपन से ही विना प्रयोजन की प्रेम वासना है यही निष्काम भक्ति है। अत्यंत प्रेम का होना यह निष्काम होता है। हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष की तो सकाम द्वेष वासना है यही सकाम वासनाहीसे क्योंकि यह द्वारपालक थे इसी कारण इनका भृत्यवनकर भगवान को प्रसन्न करना तथा धनमोक्षादि की इच्छा रखनी यही काम है। अपने कार्य में सावधान हमको क्यों सनकादि मुनि ने शाप दिया और क्यों हमारा विना कारण तिरस्कार किया और इतने पर विष्णु भगवान नें उनको क्यों नहीं निषेध किया ऐसा उन जय विजयके मनमें द्वेषांकुर उदय हुआ और वही अंकुर दूसरे जन्ममें राक्षसहो ने पर भी नहीं मिटा किन्तु उसी द्वेषरूपी वासना को प्रकाशकरने लगे। जो कुछ पूर्व जन्म में कर्म कियेहैं उनका अन्यजन्म में अवश्यही फल भोगना पडता है इस गीता के प्रमाण से उनको तीनजन्मतक फलभोगना पड़ा। और जन्म में भी वही स्वभाव हुआ कि प्रह्लाद को भगवत भजन से निषेध किया तथा प्रह्लाद ने पूर्व

संस्कार से भगवान ने भजनकी इच्छा की वोह वैकुंठ का कलह परस्पर भूमि में भी होने लगा यही तात्पर्य है ॥ ५ ॥

(संस्कृतार्थः) एवं षष्ठे पोषणमुक्त्वा सप्तमे ऊतिमाह सप्तम इति सप्तमे सप्तमस्कन्धे पंच दशभिरध्यायैः ऊतेर्वर्णनम् केयमूतिस्तामाह प्राक्कर्मजातत्वेनैव कर्मानुसारिणी अहमस्य कर्ता अहमस्य भोक्ता इत्यादि रूपा या वासना सैवोतिः तत्ववयवसंस्थानम् तस्याः अनकादित्वात् ॥ १ ॥ किमस्याः स्वरूपं किंच कारणं तत्राह सा वासना दश अध्याया यस्मिन् तेन प्रह्लादस्येतिहासेन स्वरूपतः दर्शिता दशाध्यायैः तस्याः स्वरूपमुक्तमित्यर्थः । कारणतश्च तस्याः स्वरूपं कर्मणा साधारणादिकर्मनिरूपणेन पंचाध्यायेन अध्यायपंचकेन निरूपितमित्यर्थः । अतएवात्र प्रकरणद्वयमेवास्ति ॥ २ ॥ उक्तार्थमेवं प्रकटयति प्रह्लादस्येति—प्रह्लादस्य विष्णौ परः उत्कृष्टः रागः अनुरागः । तस्य च पितृपितृव्ययोः हिरण्यकशिपुहिरण्याक्षयोः विष्णौ परो द्वेषः इत्येवं प्रकाराप्राक्तनी वासनेत्यर्थः कथंभूते विष्णौ तयोः रागद्वेषयोः अविषये अलक्ष्ये यद्वा तयोः पितृपितृव्ययोः अविषये कस्मात् असुरभावदात्—असुरभावन्ददातीति असुरभावदः तस्मात् असुरभावप्रापकात् कर्मणः भक्तभक्तिनिरोधकादित्यर्थः ॥ ३ ॥ तत्कर्मज्ञाने हेतुमाह—दृष्टुमिति—एक ईशं नारायणं दृष्टुमवलोकयितुं प्रवृत्तः परौ नारायणस्य दर्शनं विहन्तुं प्रवृत्तौ तस्मात् मिथः परस्परं वैकुण्ठे कलहो जातः इति हेतोः ननु वैकुण्ठे प्रह्लादस्य हिरण्यकशिपुहिरण्याक्षयोश्चाभावात् कथं कलहप्रसंगस्तत्रोच्यते चतुःसन इति यः प्रह्लादः स पूर्वं चतुःसनो बभूव चतुःसनपदेन सनकसनन्दन सनातनसनत्कुमाराणां चतुर्णामेव बोधः तेषामेकत्वविवक्षया चतुःसन इत्युक्तम् एकं ब्रह्म तपश्चतुर्द्धाऽवतीर्णमित्यन्यत्रोक्तत्वात् । यौ इतरौ द्वौ हिरण्यकशिपुहिरण्याक्षावित्यर्थः तौ पूर्वं जयविजयौ द्वाःस्थौ विष्णुपार्षदौ बभूवतुः इत्येवं कलहप्रसंगः । नच प्रह्लादस्य चतुःसनत्वे किं मानमिति वाच्यम्—मूले जयविजयनिदर्शनेन तस्याप्यनुमातुं योग्यत्वात् । यथा च द्वाररक्षकाणामज्ञातजननिरोधकरणमेव कर्म ताभ्यां तत्कृतमिति तयोर्नापराधः अन्यथाकरणे स्वाम्याज्ञाभङ्गप्रसङ्गात् इति नयमार्गे प्रवर्तमानौ तावकारणादेव शापतश्चतुःसनेन स्वस्थानाद्भ्रंशितौ तथैव तद्दोषदूषितः सोऽपि स्वकर्मणा स्वस्थानात् भ्रष्ट इत्यनुमानमस्ति । कः खल्विह स्वकृत कुत्सिताकुत्सितकर्मणा पापपुण्ये न भुञ्जीत । कथात्र लोकोत्तरचमत्कारिकवृत्तप्रकाशनचतुरः चेतसि पर्यालोच्य विचारयेत् । एतदेव निश्चितमाचार्यैर्दर्शितंच पुरुषोत्तमस्तुतौ " जयस्य विजयस्य च च्युतिरकुण्ठवैकुण्ठतः ॥ चतुःसनरुषेति यत्तदुचितं न दौवारिके । मुनौ च पुरुषोत्तमे त्वयि च शुद्धसत्वात्मके । जयत्युदरमन्तरं कुरुत आदि राज्ञा मुनै " इति । अतोऽनुचिताचाराचरणात् तेन (चतुः सनेन) स्वनिकेतनच्युतिचिन्हा भीतिरवापितेति ध्वनितम् ॥४॥ वासनाभेदमाहप्रागिति या प्रह्लादस्य श्रीनारायणे शैशवादहैतुकी प्रेमवासना प्राक्तनी सैव निष्कामा भक्तिरित्युच्यते निष्कामत्वञ्चातिप्रेमत्वात् या तु हिरण्यकशिपुहिरण्याक्षयोः सकामद्वेषवासना सा प्राक्तनी सकामभक्तिरूपा सकामत्वञ्च कृष्णसालोक्यात् तद्द्वारपालकत्वाच्च । कथं स्वपदात् प्रमत्तास्यावयो मुनिदत्तशापजन्या हेतुरतिरस्कारो विष्णुना न निषिद्धः इत्युदितेद्रूपांकुरौ तौ प्राप्तरक्षोभावे जन्मान्तरेऽपि तमेवप्राक्तने वासने प्रकाशितवन्तौ । " अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभमिति गीताप्रामाण्यात् " पूर्वजन्मकृतकर्मणां भोगेनैव क्षयात् इहाऽपि तद्दर्शननिरोधस्वरूपं वासनद्वयं तस्य तत् पितृपितृव्ययोश्चासीदिति विशदम् ॥ ५ ॥

(मू) कुमारैर्द्वाःस्थयोः शापो हिरण्यकशिपोर्भवः (रुषः)
ब्रह्मणो वरलाभश्च प्रह्लादस्य च संभवः ॥ ६ ॥
पित्रा परीक्षणं तस्य बालानां तेन शिक्षणम् ॥
नारदोक्तानुवादश्च हिरण्यकशिपोर्वधः ॥ ७ ॥
प्रह्लादेन नृसिंहेला ततोऽस्य शिवबद्यशः ॥
सामान्येन सदाचारस्तथा त्रिष्वाश्रमेषु च ॥ ८ ॥
परिव्राजकधर्माश्च मोक्षधर्मो गृहाश्रमे ॥
श्राद्धादीनि मुमुक्षूणां यावदध्यायमंत्रयः ॥ ९ ॥

(भावार्थ) इस प्रकार स्कन्धके अर्थ को कहकर क्रमसे चरणों द्वारा अध्यायोंके अर्थ को कहते हैं। जय तथा विजय को सनकादिकों ने शापदिया। यही पहिले अध्याय का अर्थ है॥ हिरण्याक्ष भ्राताका विष्णुद्वारा वध सुन हिरण्यकशिपु को क्रोध तथा शोचकरना यही दूसरे अध्याय का अर्थ है॥ तप से सन्तुष्ट श्रीब्रह्माजीने हिरण्यकशिपु को वरदान दिया। यही तीसरे अध्याय का अर्थ है॥ प्रह्लादजी का जन्म होना यही चौथेका प्रयोजनहै ॥६॥ प्रल्हाद, मुझमें प्रीतिकरताहै वा विष्णुमें इसप्रकार की हिरण्य कशिपुसे प्रल्हादकी परीक्षा करनी यहीपांचवें अध्यायका अर्थ है॥ प्रल्हाद जी ने नारद जी के उपदेशानुसार अपनेपाठशाला के सहाध्यायियों को उपदेश किया। यही छटे अध्याय का अर्थ है॥ बालकों ने पूछा कि हे प्रल्हाद तुमें यह ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ प्रल्हाद बोले कि हे मित्रों! मेरीमाताको नारद जीने उपदेप कियाथा और मैंने गर्भमेंसे सुनाथा। यही सातमें अध्याय का प्रयोजन है॥ क्रोधकर पुत्रको मारते हुए हिरण्यकशिपु को खंभमें से निकलकर नृसिंह जीनेमारा। यही आठवें का अर्थ है। ७। प्रल्हादजी ने नृसिंह जी की स्तुति की यही नवमका अर्थ है॥ जैसे विष्णुने त्रिपुरासुरके वधमें शिवजीकी कीर्तिवढाई इसी प्रकार हिरण्य कशिपु को मार प्रल्हादको यशदिया इसी से त्रिपुर वधकी कथा यहां लिखी है यही दशमअध्यायका अर्थ है साधारण से सदाचार का वर्णन। यही वारहवें अध्याय का प्रयोजन है॥ ८॥ संन्यासियों के धर्म का निरूपण। यही तेरहवें अध्याय का वर्णन है गृहस्थियों के मोक्ष धर्म का निरूप। यही चौदहवें अध्याय का अर्थ है। मोक्ष की इच्छा करने वाले गृहस्थियों के श्राद्ध तथा काम क्रोधादि का जय निरूपण। यही पन्द्रहवें अध्याय का अर्थ है॥ ९॥

इति सप्तमस्कन्धः ॥ ७ ॥

श्री नारायणदास जी सारस्वत गुण रास ।
तिनकेहिसुतहरिचरणरत वैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
सप्तमस्कन्धसमाप्तलखि बुधजनपावहिंहर्ष ॥

(संस्कृतार्थः) एवं स्कन्धार्थं प्रकाश्य क्रमशश्चरणैरध्यायार्थानाह—कुमारैरित्यादिना—(कुमारैः द्वाःस्थयोः शापः) कुमारैः सनकादिभिः द्वारितिष्ठतः इतिद्वाःस्थै जयविजयो तयोर्द्वाःस्थयोः शापः भगवद्भक्तिनिरोधकतयेत्यर्थः इति सप्तमेप्रथमार्थः (हिरण्य कशिपोरुषः) हिरण्यकशिपोः वराहावतारधारिविष्णुकृतभ्रातृवधात् इत्यर्थः रुषः क्रोधाअभवन् शुचइतिपाठ तन्मरणादेव शोकाः समुत्पन्नाः इतिद्वितीयार्थः ॥ (ब्रह्मणो वरलाभश्च) तपसा सन्तुष्टात् ब्रह्मणः सकाशात् हिरण्यकशिपो वरलाभः वरदानप्राप्तिः । इतितृतीयार्थः ॥ (प्रल्हादस्यच संभवः) प्रल्हादोत्पत्तिः इति चतुर्थार्थः ॥ ६ ॥ (पित्रा परीक्षणं तस्य) तस्य प्रल्हादस्य पित्रा हिरण्यकशिपुना परीक्षणम् मयि विष्णौ च रत इतिपरीक्षा इति पञ्चमार्थः ॥ (बालानांतेन शिक्षणम्) तेन प्रल्हादेन बालानां सहाध्यायिनां शिक्षणं नारदोक्ततन्त्रोपदेशः इति षष्ठार्थः ॥ (नारदोक्तानुवादश्च) मात्रे नारदमुनिना यज्ज्ञानं प्रदर्शितं तच्च गर्भस्थेन मयाश्रावि भोबालकाः तस्यैवानुवादोयमिति श्रृणुध्वम् इति सप्तमार्थः ॥ (हिरण्यकशिपो वधः) रुषा सूनुं निघ्नतो हिरण्यकशिपोः आविर्भूय नृसिंहेन वधः कृत इति अष्टमार्थः ॥७॥ प्रह्लादेन नृसिंहस्तुता) सुरप्रेरितेन प्रह्लादेन समीपगत्वा नृसिंहस्य इलास्तुतिः कृताइत्यर्थः इति नवमार्थः ॥ (ततोऽस्यशिव वद्यशः) अस्य प्रह्लादस्य शिववत् यशोदत्तं हरिणा यथा त्रिपुरवधकारणतया नरायणेन महादेवस्यकीर्तिर्दत्ता एवमस्यापीतिभावः तेन त्रिपुरवधकथा प्रह्लादस्य यशो निदर्शनार्थमेवान्यथा तत्कथाऽप्रसंगता वृथैव स्यात्—निश्चितमेवानेनपद्येन यथ "सएष भगवान्राजन् वितनोद्विहितंयशः पुरारुद्रस्य देवस्यमयेनानन्तमायिने" इत्युक्तत्वाच्च येन प्रह्लादस्य यशोदत्तं सएष भगवानित्यर्थः इति दशमार्थः ॥ (सामान्येन सदाचारः) सामान्येन साधारण्येन सदाचारः नृणां धर्मो वर्णितः इति एकादशार्थः ॥ (तथात्रिष्वाश्रमेषुच) तथा शब्दात् सदाचार इत्यनुवर्तनीयं त्रिषुआश्रमेषु त्रयो ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थाः तेषु तेषाम्वा साधारण्येन सदाचारो निरूपितः इति द्वादशार्थः ॥ (परिव्राजकधर्माश्च) परिव्राजका यतयस्तेषामपिधर्माः कथिताः इति त्रयोदशार्थः ॥ (मोक्षधर्मो गृहाश्रमे) गृहाश्रमे गृहाश्रमेस्थितानां पुरुषाणामित्यर्थः मोक्षस्य ये धर्मा स्तेप्युक्ताः इतिचतुर्दशार्थः ॥ (श्राद्धादीनिमुमुक्षूणाम्) मुमुक्षूणां मोक्षस्याभिलाषवतां गृहस्थादीनां श्राद्धादीनि आदिपदात् कामक्रोधजयादयः इति पंचदशार्थः ॥ यावदध्याय संग्रयः) यावन्तोऽध्यायास्तावन्तोऽध्ययः इतिभावः ॥ ९० ॥ इति हरिलीलाया सप्तमस्कन्धः ॥ ८ ॥

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्यो द्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेन ह्याकारि टीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
तस्यांवैसप्तमस्तू तिविलसितइतोऽयंसमाप्तिं सुखेन ॥ ७ ॥

अथाष्टमस्कन्ध प्रारम्भः ॥



(मू०) मन्वन्तरार्थमध्यायास्त्रयोविंशतिरष्टमे ॥
मन्वन्तराणि प्रत्येकं ब्रह्माहेषु चतुर्दश ॥ १ ॥
चत्वार्याद्येऽत्र तुर्यस्थं त्रिषु नागेन्द्रमोक्षणम् ॥
द्वे पञ्चमेऽत्र षष्ठस्थं सप्तस्वमृतमन्थनम् ॥ २ ॥
त्रयोदशेऽष्टौ नवसु सप्तमे बलिबन्धनम् ॥
त्रयोविंशे मत्स्यकथा षष्ठसप्तमसंधिगा ॥ ३ ॥
मन्वन्तरं सतां धर्मो मनुभिर्यत्प्रकाश्यते ॥
स्मरणाचरणाख्यानैः स्वे स्वे सर्वैभिरन्तरे ॥ ४ ॥
विपद्यात्मानमीशाने सम्यगर्थिषु चार्पयेत् ॥
उभयत्र प्रतिज्ञातं निर्वहेदिति सत्त्रिधा ॥ ५ ॥
गजेन्द्रमोक्षणांभोधिमन्थने बलिबन्धने ॥
सव्यक्तस्तद्रूपोवेत्ति तत्वतस्तेन ताः कथाः ॥ ६ ॥
ग्रहाद्बन्धो हरेर्मोक्षः प्राग्जन्मेति त्रिको गजे ॥
मन्दरासो विषग्रासो हरे स्त्रीत्वं सुरे सुधा ॥ ७ ॥
रणः सुरे जयःशंभो स्त्रीक्षितर्थं सप्तकोर्णवे ॥
बलेर्जयो व्रतोदित्या हरेजन्मार्थितावलौ ॥ ८ ॥
बलेर्दित्सा हरेर्वृद्धिर्निग्रहानुग्रहोबलेः ॥
प्रह्लादसूक्तय श्चैव मध्यायनवको बलौ ॥ ९ ॥

(भाषार्थ) सप्तम स्कन्धके अर्थ को कहकर अष्टम स्कन्धके अर्थ को अवदि खाते हैं — इसस्कन्ध में तेईस अध्याय हैं। मन्वन्तरकी गिनतीकहे है। ब्रह्मा के एक दिनमें चौदह मन्वन्तरहोते हैं ॥ १ ॥ उन चतुर्दशमन्वन्तरों को दर्शाते हैं। स्वायम्भू १ स्वारोचिष २ उत्तम ३ तामस ४ इन चारमन्वन्तरों का प्रथम अध्याय में निरुपण है इनचारों मन्वन्तरों में से चौथेतामसनाम मन्वन्तर में गजेन्द्र मोक्षका वर्णन है वहगजेन्द्रमोक्ष दूसरे तीसरे चौथे इन तीन अध्यायों में कथन करीहै। रैवत तथा चाक्षुप यह दो मन्वन्तर पञ्चमाध्याय में है इन दो में से चाक्षुपनामक मन्वन्तर में अमृत मन्थन की कथा है यह कथा छटे १ सातवें २ आठमें ३ नोवें ४

दशमें ५ ग्यारहवें ६ वारहवें ७ इनसात अध्यायों में वर्णन हैं ।। २ ।। वैवस्वत १ सावर्णि २ दक्षसावर्णि ३ ब्रह्मसावर्णि ४ धर्मसावर्णि ५ रुद्रसावर्णि ६ देवसावर्णि ७ इन्द्रसावर्णि ८ यह आठमन्वन्तर तेरहवें १३ अध्याय में कहे हैं प्रचलित पुस्तकोंमें तेरहवें अध्यायके दो अध्याय अर्थात् तेरहवाँ और चौदहवाँ किया है यह ठीक नहीं क्योंकि तेरहवें अध्यायमें तो मन्वन्तर का निरूपण है तथा चौदहवें अध्याय में उन मन्वन्तर के कर्मोका प्रतिपादन है कर्म तथा कर्म वाले भिन्ननहीं इस कारण इन दोनो प्रसंग का एक ही प्रसंग होकर एक ही अध्याय होनाउचित है। अथवा "यत्रमन्वन्तराण्याहुः, ,इत्यादि वचनसै भी यही मालूम पडता है कि यहाँ एक प्रसंग के अध्याय की समाप्ति है अतः इनदो प्रवलयुक्तियोंसे सहृदय पुरुषों को यह वात अवश्यस्वीकार करनी योग्य है इसी सै मूलकार वोपदेवजी ने तेईसही अध्याय माने है चौवीस नही यहीदृढसिद्धान्तहै सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें वलि वन्धनका प्रसंग है यह प्रसंग चौदह१ पन्द्रह२ सोलह३ सत्रह४ अठारह ५ उन्नीस६ वीस ७ इक्कीस८ वाईस९ इन नवअध्यायोंमें विस्तृतहै छटे सातमें अर्थात् चाक्षुष तथा वैवस्वत इन दोमन्वन्तरोके वीचमें मत्स्यावतारकी कथाहै यहकथा तेईसवें अध्यायमें वर्णनहै ३ पुरुष के कर्तव्या कर्तव्यके प्रतिपादक मन्वन्तरहैं इसीलिये इस स्कन्धमें मन्वन्तरोंका वर्णन कियाहै। स्मरण, आचरण तथा कथन इत्यादि उपायों सै—ऋषियों के साथ मनुओं ने जो धर्म प्रतिपादन कियाहै उसी को मन्वन्तर कहते हैं ।। ४ ।। कोनसाधर्म मनुओं ने प्रतिपादन किया है उसका वर्णन कर ते हैं--विपत्ति होने पर मनुष्य को उचित है कि अपने आत्मा को ईश्वर के अर्थ समर्पणकरै । सम्पत्ति के होने पर अपने आत्मा को अर्थात सर्वस्वको याचकोंके अर्थ तथा ईश्वरके अर्थ निवेदन करै। सम्पति तथा विपत्ति इन दोनो के होनेपर प्रतिज्ञाका पालन करै। यही तीनप्रकारका है।।५॥ अव इस तीन प्रकारके धर्म को दृष्टान्त द्वारा वर्णनकरते हैं—वह धर्म—गजेन्द्र मोक्ष १ समुद्र मन्थन २ वलिवन्धन ३ इन तीन कथाओं में प्रकट है। जैसेकि—गजेन्द्र ने ग्राहरूप विपत्तिमें अपनाआत्मा ईश्वरके समर्पण किया। और सम्पत्तिमें समुद्रने सव को तथा ईश्वर को उत्तम२ पदार्थ निवेदन किये। सम्पत्ति तथा विपत्ति में राजा वलिने वामनजी महाराज के सन्मुख अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। यह पूर्वोक्त तीन प्रकार का धर्म मत्स्यभगवान् जानते हैं और उन्हों ने मनुओं से कहा है इसी से इस स्कन्ध में मत्स्यावतार की कथा है इन सव वातों को व्यासजी महाराज ने अच्छे प्रकार मन में विचार इस स्कन्ध में चार कथायें वर्णन की हैं इसी से यह सव कथा यथार्थ हैं ।। ६ ।। स्कन्धार्थ को कह कर अव अध्यायों के अर्थका निरूपण करते हैं— प्रथमाध्याय में चार मन्वन्तर का वर्णन है यह पूर्व कह चुके गजेन्द्रका नक्रसे

ग्रसना यही दूसरे अध्याय का अर्थ है ॥ हरिने ग्राह से गजेन्द्र को छुडाया यही तीसरे अध्याय का अर्थ है ॥ पूर्वजन्म में यह इन्द्रद्युम्न थाँ यही चतुर्थ । अध्याय का अर्थ है। यही तीन अध्याय गज विषयक हैं ॥ पञ्चमाध्याय में पञ्चम तथा छटे मनुका वर्णन कर आये हैं इसीसे दुवारा यहाँ नहीं किया ॥ मन्थन करने को मन्दरांचल का समुद्र में फेंकना यही छटा अध्याय है ॥ प्रथम मथने से विप निकला और वह शिवजी ने पिया यही सप्तम का अर्थ है ॥ विष्णुने मोहिनी रुपका धारणकिया यही अष्टम का अर्थ है ॥ देवताओं को अमृत की प्राप्तिहुई यही नवमका अर्थ है ॥७॥सुरासुरसे संग्रामका वर्णन यही द शमका अर्थ है ॥ देवताओं का जय हुआ यही एकादश का अर्थ है ॥ जोकि विष्णुने मोहिनी का रुप धराथा शिवजी ने उस्को देखना चाँहा यही द्वादश का अर्थ है ॥ त्रयोदशमें आठ मनुओंका वर्णन पहिले आया ॥ वलिराजाने स्वर्ग को जीता यही पंचदशका अर्थ है ॥ पुत्र शोकार्ता अदितीको काश्यपजी ने प यो व्रतका उपदेशकिया यही पञ्चदश का अर्थ है ॥ अदिति के मनोरथ पूरणार्थ श्री वामनावतार का होना यही षोडशार्थ है ॥ हरिका वलिके यज्ञ में याचनार्थ जाना यही सप्तदशार्थ है ॥ ८ ॥ वलिके दान देने की इच्छा अष्टादशार्थ है ॥ वामन रुप छोड हरिने त्रिविक्रम रुपधारा ॥ वलिके वृद्धि के अर्थही उस्को वा धा २० हरिनेवलि को वरदान दिया तथा उस्के द्वारापालक हुए २१ स्वर्ग से आये हुए प्रल्हाद ने हरिकी स्तुति की २२ यही नवअध्याय वलि विषयक जानने तेइसवें अध्याय में मत्स्यावतार की कथा है यह पहिलेही कहचुके ॥९॥

दोहा ॥

श्री नारायणदास जी सारस्वत गुण रास ।
तिनकेहिसुतहरिचरणरत वैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
अष्टमस्कंध समाप्तलखि वुधजनपावहिंहर्ष ॥

इति अष्टमस्कन्धः ॥ ८ ॥

(सँस्कृतार्थः) एवं सप्तमार्थमुक्त्वाऽष्टमार्थमाह मन्वन्तरार्थमिति—अष्टमे अष्टमस्कन्धे मन्वन्तरार्थम् मन्वन्तरकथनाय त्रयोविंशतिरध्यायाः कथिताः । मन्वन्तरगणनामाह मन्वन्तराणीति ब्रह्माहेषु ब्रह्मदिनेषु प्रत्येकं चतुर्दश मन्वन्तराणि एकस्मिन् दिने भवन्ति चतुर्दशेतिभावः॥१। चतुर्दशतामाह चत्वार्याद्य इति—आद्य प्रथमाध्याये स्वायंभुवस्वारोचिषोत्तमतामसाख्यानि चत्वारि सख्याकानि सन्ति । अत्र—एषु चतुर्षु मध्ये तुर्यस्थं—चतुर्थं मन्वन्तरम् नागेन्द्रमोक्षकथनपरम् तच्च द्वितीयतृतीयचतुर्थेषु त्रिष्वेवाध्यायेषु निरूपितम् । द्वे रैवतचाक्षुषे मन्वन्तरे पंच में पंचमेऽध्याये प्रोक्तम् । अत्र द्वयोर्मध्ये षष्ठ चाक्षुषाख्ये मन्वन्तरे अमृतमन्थनमुक्तं तच्च षष्ठसप्तमाष्टमनवमदशैकादशद्वादशसु सप्तस्वेवाध्यायेषु वर्णितम् ॥ २ ॥ त्रयोदशे अध्याये वैवस्वतः सावर्णिः दक्षसावर्णिः ब्रह्मसावर्णिः धर्मसावर्णिः रुद्रसावर्णिः देवसावर्णिः इन्द्रसावर्णिः इत्यष्टौ मनवो वर्णिताः प्रचलितपुस्तकेषु त्रयोदशचतुर्दशावध्यायौ पृथक् ताविति न सम्यक् त्रयोदशेमन्वन्तराणि वर्णितानि चतुर्दशेतु तेषां कर्माणि तानि नतैः भिन्नानि किंच "यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः" इत्यन्तिमवचनात् ज्ञायतेऽत्रैव त्रयोदशाध्यायसमाप्तिः सा च युक्त्या स्वीकरणीयासहृदयैरतोद्वावेक एव ततस्त्रयाविंशति रष्टमे इति मूल कारेण, समूलमेवोक्तामिति निर्मलम् । ततः सप्तमे वैवस्वताख्ये मन्वन्तरे कथितं बलिबन्धनंतच्च चतुर्दश । पंचदश षोडश सप्तदशाष्टादशोनविंशतिविंशत्येकविंशति द्वाविंशतिसु नवस्वेवाध्यायेषु विस्तृतम् । षष्ठसप्तमसन्धिगा चाक्षुषवैवस्वतमन्वन्तरसंधौ मत्स्यकथा वभूव सा च त्रयोविंशे अध्याये वर्णिता ॥ ३ ॥ पुरुषस्य किं कर्तव्यं किं चाकर्तव्यमिति मनुभिरेव प्रतिपादितमित्यत आह मन्वन्तरमिति--यतः यस्मात् स्वस्वे अन्तरे अवकाश अधिकारे इत्यर्थः अधिकारे सर्षिभिः ऋषिसहितैः मनुभिः स्मरणाचरणाख्यानैः स्मरणं पूर्वं तत्वस्मरणं पुनः तस्याचरणं तदनु अन्येभ्यः आख्यानं कथनं एतादृशै रुपायैः यः धर्मः प्रकाश्यते स सतांधर्मः सचाऽपि मन्वन्तरं मन्वन्तरपदवाच्यः । मन्वन्तरमित्ययं शब्दो सद्धर्मे रूढिः ४ कोयं धर्मस्तैः प्रकाशितस्तमाह—विपदिति विपदि सत्यां आत्मानं स्वं ईशाने ईश्वरे सम्यक् सुष्ठुअर्पयेत् । सम्पदि सत्यां आत्मानं अर्थिषु याचकेषु सम्यक् अर्पयेत् चकारात् ईश्वरेवा । उभयत्र—सम्पत्तौ विपत्तौच प्रतिज्ञातं निर्वहेत् प्रतिज्ञापालनं कुर्यात् इति कृत्वा सः सद्धर्मः त्रिधा त्रिप्रकारकः ५ तत्र त्रैविध्यमेव प्रकटयति गजेन्द्रेति—सधर्मः गजेन्द्रस्य मोक्षणे अंभोधिः समुद्रस्तस्य मन्थने तथैव बलेर्बन्धनेव्यक्तः एषु त्रिषुस्पष्टः तथाहि विपादि आत्मानं ईशाने अर्पयेत् यथात्मा समर्पितो गजेन्द्रेण । संपदि अर्थिषु आत्मानं अर्पयेत् यथार्पितः समुद्रेण सम्पत्तौ विपत्तौच प्रतिज्ञातं निर्वहेत् यथाकृतं वलिना । तं त्रिप्रकारकं धर्मं मत्स्यो भगवान् जानाति अतएव मनवे स कथितवान् । अतएवेदं विविच्य व्यासेन मुनिनाऽत्र सप्रयोजनिकाः चतस्रः कथाः निरूपिताः नतु स्वतन्त्रेच्छया अन्यथा फलशून्यतया हेयता स्यात् ॥ ६ ॥ एवं स्कन्धार्थं विभाव्याध्यायार्थान् वर्णयति—ग्रहादिति—चत्वार्याद्य इति वाक्येन प्रथमार्थो दर्शित अतोत्र सम्यक् इति वोध्यं इति प्रथमोर्थः ॥ (ग्रहात् बन्धः) ग्रहात्—गजीभिः जले क्रीडतो गजेन्द्रस्य नक्रात् वन्धः ग्रसनम् इति द्वितीयोर्थः ॥ (हरेर्मोक्षः) गजेन्द्रो हरिणाग्रहान्मोचितः इति तृतीयार्थः ३ (प्राग्जन्म)पूर्वस्मिन् जन्मनि तस्य इन्द्रद्युम्नताऽऽसीदिति वर्णितम् ॥ इति त्रिकः अध्यायत्रयं गजे गजविषये इति चतुर्थार्थः॥ पंचमतु पंचमः पष्ठोवामनुवर्णितः पूर्वगतः पुनरुक्तिभयान्नोक्तमत्रेति पंचमार्थः ॥ (मन्दरासः) मन्थनार्थं मन्दरस्य मन्दराचलस्य आसः क्षेपणं समुद्रे इतिशेषः ॥ (विषग्रासः) मथनोद्भूत विषस्य रुद्रेणेतिशेषः ग्रासः पानमित्यर्थः इति सप्तमार्थः ॥ (हरेः स्त्रीत्वम्) विष्णोर्मोहिनी रूप धारणम् इत्यष्टमोर्थः ॥

(सुरे सुधा) सुरे इति जातावेकवचनम् सुराणां सुधाप्राप्तिरिति भावः । इति नवमार्थः ॥ ७ ॥ (रणः) देवासुराणां संग्रामोऽजात इत्यर्थः इति दशमार्थः ॥ (सुरे जयः) सुरे इत्यत्रापि पूर्ववज्जातावेकवचनम् सुराणां जयोऽजात इति भावः । इत्येकादशार्थः ॥ (शंभोः स्त्रीक्षा) शंभोः शिवस्य स्त्रियाः मोहिन्या ईक्षा दर्शनम् हरिमुखान्मोहिनीरूपावलोकनमित्यर्थः । इत्थं अमुना प्रकारेण सप्तकः अध्यायसप्तकः अर्णवे समुद्रमन्थने निरूपित इति भावः । इति द्वादशार्थः ॥ त्रयोदशे तु पूर्वमेवान्वष्टकमुक्तमतः पुनर्न वर्णितम् । इति त्रयोदशार्थः ॥ (बलेर्जयः) बलिः स्वर्गमजयत् इत्यर्थः इति चतुर्दशार्थः ॥ (व्रतोदित्याः) पुत्रशोकसंतप्तामदितिं प्रति काश्यपः पयोव्रतमुवाच । इति पंचदशार्थः ॥ (हरेर्जन्म) अदितिकामपूरणार्थमेव हरेर्वामनावतारः इति षोडशार्थः ॥ (अर्थितावनौ) बलेर्यज्ञे अर्थिता याचकता हरेरित्येतावति पूर्वेण सम्बन्धः । इति सप्तदशार्थः ॥ (बलेर्दित्सा) बलेः दातुमिच्छा इत्यष्टादशार्थः ॥ (हरेर्वृद्धिः) वामनरूपं त्यक्त्वा हरेः त्रिविक्रमरूपधारणम् इति ऊनविंशार्थः ॥ (बलेर्निग्रहः) बलेरुत्कर्षं प्रथयितुमेव तस्य निग्रहः बन्धनं कृतम् । इति विंशार्थः ॥ (बलेरनुग्रहः) हरिर्वरान् दत्वा तद्द्वारपालकोऽभूदित्येषोऽनुग्रहः । इत्येकविंशार्थः ॥ (च) प्रह्लादसूक्तमथ स्वर्गागतस्य प्रह्लादस्य सूक्तम् स्तुतयः चकारात् यज्ञसमाप्तिः प्रदर्शिता (अध्यायनवको बलौ) प्रथमाध्यायनवकः बलिविषये प्रदर्शितः इति द्वाविंशार्थः ॥ त्रयोविंशे तु आदावेव मत्स्यकथा प्रदर्शितातो नोक्तम् इति त्रयोविंशार्थः ॥ ९ ॥

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्यो द्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेन व्याकारि टीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
तस्यां स्कन्धोऽष्टमोवा मनुवचनचितः सुप्रयत्नेन पूर्णः ॥ ८ ॥

इत्यष्टमस्कन्धः ॥



इति श्रीमहामहोपाध्यायवोपदेवकृतायां हरिलीलायां सारस्वतवंशोद्भव श्रीमन्नारायणसूनुवैद्यनाथकृतकृष्णलीलामृताख्यटीकाया
अष्टमः स्कन्धः समाप्तः ॥

अथ नवमस्कन्ध प्रारम्भः ॥



(मू०) नवमे तु चतुर्विंशत्यध्यायीशानुकीर्तने ॥
ईशा भूपतयस्तत्र रामकृष्णादयः स्वयम् ॥ १ ॥
इतरे तन्नियोगेन तत्कथेशानुकीर्तनम् ॥
इलः पृषध्रः शर्यातिरम्बरीषोजविप्रयोः ॥ २ ॥
मान्धाता च हरिश्चन्द्रः सगरोऽथ भगीरथः ॥
रामौ राष्ट्रभ्रंशलंब्ध्योः कुशोऽथ मिथिलेश्वरः ॥ ३ ॥
ऐलो रामोऽर्जुनक्षत्रवधयोः क्षत्रवृद्धकः ॥
ययातेर्भुक्तिमुक्त्योश्च पुरुस्त्रिषु यदुर्द्वयोः ॥ ४ ॥
दौष्यन्तिरान्तिभीष्माणां प्राधान्याद्वृष्णिकृष्णयोः ॥
चतुर्विंशतिरित्येते राजानोऽध्यायनायकाः ॥ ५ ॥
रामौ ययात्यंवरीषौ चत्वारोऽष्टौ हि कर्मभिः ॥
त्रयोदशैकादशभिः क्रमात्तत्रार्कसोमजाः ॥ ६ ॥

(भाषार्थ) इसप्रकार अष्टमस्कन्ध के अर्थ का विभागकर नवमस्कन्ध के अर्थ को कहते हैं नवमस्कन्ध में चौवीस अध्यायहैं इसस्कन्ध में ईशगुण वर्णन है ईशपदसे यहाँ राजाओं का ग्रहणहै इनसवमें राम तथा कृष्णतौ स्वयमेव (स्वतःसिद्धहीईशहैं) ॥१॥ और सव राजातौ इन दोनोंकी आज्ञासे ईशजानने इन ईशोंकी जो कथा है वही ईशानुकथा कहावेहै । कोन २ ईशहैं उनका वर्णन करेहैं इल पहिले अध्याय में है ॥ पृषध्र दूसरे में ॥ शर्य्याति तीसरे में ॥ अंवरीषकी विष्णु भक्ति चौथेमें ॥तथा अम्वरीप की विप्रभक्ति पाँचवें में ॥२॥ मान्धाता छटेमें॥ हरिश्चन्द्र सातवें में ॥ सगर आठवें में ॥ भगीरथ नवममें ॥ रामका स्वदेश त्याग दशम में ॥ उस स्वदेशकी प्राप्ति ग्यारहवें में ॥ रामके पुत्र कुशकी कथा वारहवें में ॥ जनक की तेरहवे में ॥ ३ ॥ पुरुरवा चौदहवे में परशुराम से सहस्रवाहु अर्जुनका वध पन्द्रहवें में ॥ कुत्सित क्षत्रियों का वध सोहलवे में ॥ आयु के पुत्रक्षत्र वृद्धकी कथा सत्रहवे में ॥ ययातिका भोग अठारहवे में ॥ ययाति की मुक्ति उन्नीसवे में ॥ दुष्यन्त के पुत्र भरतका वृत्तान्त वीसवे में ॥ रन्तिदेव का ईकीसवे में ॥ भीष्म

पितामह का, बाईसवे में ॥ वृष्णि तेईसवे में ॥ श्रीकृष्ण चौबीसवे में ॥ यद्यपि गिनती में यह बीस ही राजा होते हैं तथापि रामचन्द्र, परशुराम, ययाति, तथा अम्बरीप यह चार अपने २ कर्मो के भिन्न २ होने से एक २ के दो २ कर्ने है इसी से यह आठ हुए इसी कारण चौबीस राजाओं का वर्णन किया है, यहां मूल कारका आशय है पूर्वके तेरह अध्यायों में सूर्य वंश के राजाओं का वर्णन किया पुनः ग्यारह अध्यायों में चन्द्र का कथन पीछे से किया है चन्द्र वंशके पश्चात् कथनका यही तात्पर्य है कि दशमस्कन्ध में इसी वंशका वर्णन है अतः यही प्रथम बीज रूप है ॥ ५ । ६ ॥

दोहा ॥

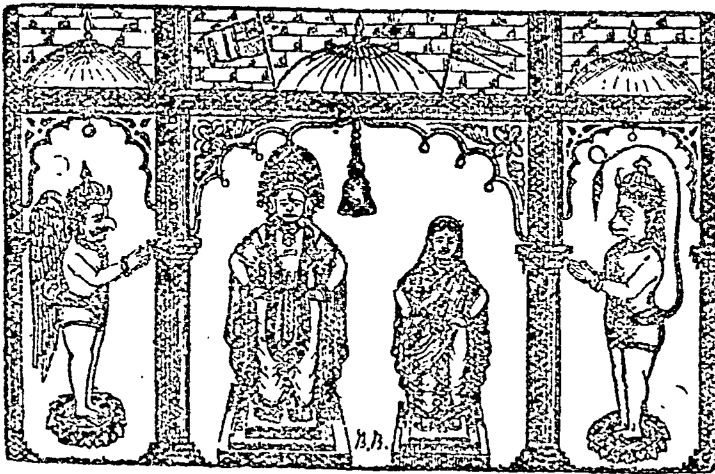
श्री नारायणदास जी सारस्वत गण रास ।
तिनकेहिसुतहरिचरणरत बैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला वृतवर्ष ।
नवमस्कंध समाप्तलखि बुधजनपावहिंहर्ष ॥

इति नवमस्कन्धः ॥ ९ ॥

(संस्कृतार्थः) एवमष्टार्थे विभज्य नवमस्कन्धार्थमनुवदन्ने नवमोऽस्मिन्–नवमे तु नवमस्कन्धे च चतुर्विंशत्यध्यायी चतुर्विंशदध्यायानांसमूहः चतुर्विंशतिसंख्यकाअध्याया इत्यर्थः । ईशानुकीर्तने ईशगुणवर्णने इत्यर्थः । किमीशानुकीर्तनं तदाह ईशा भूपतयो राजानः तत्रापि रामकृष्णादयस्तु स्वयमेव ईशाः ॥१॥ इतरे अन्ये तु तन्नियोगेन तदादेशेन ईशास्तेषां चेशानुवर्तिनां कथा तत्कथा ईशानुकथेतिभावः ॥ ईशानाह इलः प्रथमाध्याये निरूपितः ॥ पृषध्रो द्वितीये ॥ शर्यातिस्तृतीये ॥ अजः कृष्णः विप्रो दुर्वासाः तयोः अजविप्रयोरिति वैषयिकी सप्तमी अंबरीषस्य विष्णुभक्तिश्चतुर्थे तद्वयेन विप्रभक्तिः पञ्चमे ॥२॥ मांधाता षष्ठे ॥ हरिश्चन्द्रः सप्तमे ॥ सगरोऽष्टमे भगीरथो नवमे ॥ राष्ट्रं देशः तस्य भ्रंशः स्वदेशत्यागो रामस्य दशमे ॥ तद्वयेनैकादशेऽश्वमेधः प्राप्तिः ॥ रामपुत्रः कुशो द्वादशे ॥ मिथिलेश्वरो जनकः त्रयोदशे ॥३॥ ऐलः पुरूरवाः चतुर्दशे ॥ रामो जामदग्न्यः परशुरामः अर्जुनः कार्तवीर्यः सहस्रबाहुः क्षत्राणीति बुद्धक्षत्रियमात्रम् अर्जुनवधश्च क्षत्रवधश्च तयो वधपदं प्रत्येकमन्वयि द्वन्द्वान्ते श्रूयमाण पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते इति नियमात् । अर्जुनवधो रामेण पञ्चदशे ॥ क्षत्रवधः षोडशे भार्गोःसुतः क्षत्रवृद्धः क्षत्रवृद्धस्य क्षत्रवृद्धकः स्वार्थेकन् स सप्तदशे ययाते भुक्ति अष्टादशे तद्वयेनमुक्तिरेकोनविंशे पुरुःपुरोर्वंशः यदुःयदोर्वंशः वंशावंशिनो रभेदात् पुरु त्रिषु अध्यायेषु यदुर्द्वयोरध्याययोः कथितइत्यर्थः । तद्वंशेके समुत्पन्नाः तेच के तस्मिन्

मुख्या अपि केतानेकैकशः प्रत्यध्यायं निरूपयति ॥४॥ दौष्यन्ति र्भरतो विंशे ॥ रन्तिः रन्तिदेवः एकविंशे ॥ अधिमां भक्तिपितामहो द्वाविंशे ॥ एते पुरुवंशे मुख्यत्वात्त्रिषु । वृष्णिकृष्णयोर्यदुवंशमुख्यत्वात् द्वयोः यथा वृष्णिःत्रयोविंशे ॥ कृष्णः चतुर्विंशे ॥ एते. चतुर्विंशति संख्याकाः राजानः अध्याय नायकास्सन्ति । सत्स्वप्यन्येषु तेषां मुख्यतया चतुर्विंशति कथनम् ॥५॥ नन्वेवमेषां विंशतिरेवस्यान्न चतुर्विंशति रित्यतआह– रामौ रामश्च रामश्च रामौ रामचन्द्रपरशुरामौ ययातिश्चाम्बरीषश्चतौ एते यद्यपि चत्वारस्तथापि अष्टौ ज्ञातव्याः हि यस्मात् कर्मभिश्चरित्रैः भिन्नाः इति शेषः। यथा एक एव देवदत्तो बालयुवकवृद्धास्वेतासु तिसृस्ववस्थासु बालोदेवदत्तो युवादेवदत्तो वृद्धोदेवदत्त इति भिन्नः तथा तत्तत्कर्मभिन्नतया कर्तृभेदो ज्ञेयः एवं रामादिष्वपि । एषांद्वेद्वेकर्मणी अतश्चतुर्णामष्टत्वमितियुक्तमेव । त्रयोदशभिः सूर्यवंश्या. राजानो निरूपिताः एकादशभिश्च चन्द्रवंश्याः सोमवंशस्य पश्चात्कथनन्तु दशमस्कन्धस्थं बीजार्थमेव ॥ ६ ॥

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्यो द्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेन ह्याकारि टीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
युक्तः स्वीशस्य वाक्यैर्नवमपरिमितो गच्छतिस्कन्ध आप्तिम् ॥९॥



इति श्रीमहामहोपाध्यायवोपदेवकृतायां हरिलीलायां सारस्वतवंशोद्भव श्रीमन्नारायणसूनुवैद्यनाथकृतकृष्णलीलामृताख्यटीकायां
नवमः स्कन्धः समाप्तः ॥ ९ ॥

अथ दशमस्कन्ध प्रारम्भः ॥



(मू०) निरोधो दशमस्कन्धे नवत्यध्याय ईरितः ॥
निरोधो नाम सृष्टानां संहारः स चतुर्विधः ॥ १ ॥
नैमित्तिकः प्राकृतिको ब्रह्मणोन्ते दिनायुषोः ॥
नित्यः प्रतिक्षणं मुक्तिरात्यन्तिक इतिस्मृतः ॥ २ ॥
नैमित्तिको निरोधोऽन्यो धर्मग्लानिर्निमित्तकः ॥
भूमिभारावताराख्यो यदर्थं जन्म मापतेः ॥ ३ ॥
स एष दशमे प्रोक्तो मुक्तिरेकादशे ततः ॥
त्रयोन्ये द्वादशे शुद्धं निरूपयंतुमाश्रयम् ॥ ४ ॥
तस्यावताराः कर्तारो हरेस्तेषु महत्तमः ॥
कृष्णावतारस्तस्यातश्चरितं दशमे ततम् ॥ ५ ॥

(भापार्थः)—पूर्वोक्त रीत्यनुसार नवमस्कंन्ध के अर्थ को प्रकाश कर अब क्रमशः दशम स्कन्ध का अर्थ निरूपण किया जाता है—इस स्कन्ध में ९० नब्वे अध्याय हैं और निरोध का वर्णन है। दुष्ट राजा तथा असरों को नाश करने का नाम निरोध है। इस निरोध के चार भेद हैं यह अगाडी के श्लोक में दिखामें गे॥ १ नैमित्तिक प्राकृतिक २ नित्य ३ आत्यान्तिक ४ यही चार भेद हैं—जो ब्रह्मा के एक दिनके वीतने पर संहार होता है उसे नैमित्तिक निरोध (लय) कहे हैं यही पहिला निरोधहै ॥ ब्रह्मा के सौ वर्ष अर्थात् पूरी आयु बीतने पर प्राकृतिक निरोध (लय) होता है यह दूसरा निरोध है। इसी निरोध में महदादि सात प्रकृतियें प्रधान में लीन होती हैं। जोकि प्रति क्षण काल के वीतने पर प्राणिमात्रका क्षय होता है यह नित्य नामक तीसरा निरोधहै। और जोकि ब्रह्माके साथ सम्पूर्ण प्राणियोंकी ऐक्यता होने से उन २ उपाधियों का नाश होता है वह आत्यान्तिक अर्थात् मुक्ति रूप चौथा निरोध है॥ २ ॥ अब नैमित्तिक प्रलय के दूसरे भेद को दिखाते हैं—भूभारावतार नामक नैमित्तिक ही निरोध होता है और इस में धर्म की ग्लानि ही कारण है इस ही के अर्थ श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है यह बात स्पष्ट कर गीता में लिखते हैं यथा—हे अर्जुन जब२ धर्मकी ग्लानि (हानि) होती है और अधर्म बढताहै तभी २ में अवतार ले कर भूभार को उतार निज भक्तों का उद्धार करूँ हूँ। यदि कोई

कहैं कि निरोध चारही हैं अधिक पाँचवाँ नहीं होसक्ता यह उनका कथन ठीक नहीं क्यों कि अनेक शास्त्रों में इस्का वर्णन किया है अतः किसी निरोधमें इसका अन्तर्भाव न मान पृथक् पञ्चम निरोध स्वीकार करनाही युक्ति युक्त है ॥ ३ ॥ इन निरोधों का दशमस्कन्ध में क्या प्रयोजनहै इस्को प्रकाश करते हैं—अपने भक्तों के उद्धार के लिये जन्म ग्रहण कर अनेक लीला दिखाय वक पूतना कंस आदि दुष्टों का इस ही स्कन्ध में दमन किया है । जन्म लेना तथा दुष्ट दमन करना—इनहीं कारण से इस स्कन्ध में निरोध का होना उचित ही है । यद्यपि अन्य स्कन्धो में भी कई स्कलों में निरोध पाये जाते हैं परन्तु यहाँ ऐसा समुझना चाँहियें कि गौण रीतिसे इन का अन्यस्कन्धों में कथन है किन्तु दशम स्कन्ध में तौमुख्यता सै प्रतिपादन किया है । भावार्थ यह कि दशमस्कन्ध में भूभार नामक निरोध है। और एकादश स्कन्ध में मुक्तिरूप आत्यन्तिक संज्ञक निरोधहै । तथा द्वादश स्कन्ध में यथा क्रम शुद्ध पर ब्रह्म श्री कृष्ण चन्द्र के निरूपणार्थ प्राकृतिक नित्य नैमित्तिक यह तीन निरोध यथा योग्य वर्णन किये हैं। यदि कोई कहै. कि अन्यस्कन्धों को छोड इनहीं तीन स्कन्धों में निरोधोंका क्यों वर्नन किया इसका यही उत्तर है कि श्री कृष्णका जन्म भूभार उतार ने के लिये हैं इसी से इस में भूभारावतार निरोध होसकता है । अन्य मुनियोंके दिये हुए शाप के कारण अप ने यदु कुल मे जन्म लेकर वढे हुए दैत्यों का तथा भक्तों के कार्य की सिद्धि के लिये आये हुए यादवरूप देवताओं का संहार कर मुक्ति करना भी तदनन्तर उचित है पुनः पुराणकी समाप्त में ब्रह्मा के एक दिन के अन्त में तथा पूर्ण शतवर्ष की अवस्था होने पर प्रलय का वर्णन उचितही है इस्से कुछ दोषनहीं॥४॥और अवतारों ने भी रावणादिमार भूभार निरोध कियाथा उन सबकी कथा को छोड इस भागवत में कृष्ण कथा ही क्यों कही इस को दिखाते हैं—रामादि अवतार महान (वडे)हैं तथापि श्रीकृष्णावतार उनसब से महत्तम (बहुत वड़ा) है क्योंकि लिखाभी है कि--और अवतार, विष्णुभगवानकी दो चार कलाओं से प्रकटहुए हैं परन्तु श्रीकृष्णचन्द्र का अवतार तौ साक्षात् षोडश कला पूर्ण है इस्से व्यास जी नें सव से वडे कृष्णकी ही कथा इस भागवत में कही —यद्यपि वलदेवजी आदि शूरों ने भी दैत्यों का दमन किया वह गौणता से जानना मुख्यता तौ इस्में श्री कृष्णकी ही हैं इसी से अधिक इन्ही का वर्णन भी दशमस्कन्ध में किया है ॥ ५ ॥

(संस्कृतार्थः) एवं नवमार्थ प्रकाश्य क्रमागतं दशमार्थमुच्यते निरोधनामेति नवत्यध्याये नवतिसंख्यकाःअध्याया यस्मिन् दशमस्कन्धे निरोध ईरितः कथितः कोयं निरोधस्तमाह सष्टानां

दुष्टनृपादिपदार्थानां संहारः नाशः तेषां निरोधानाम तद्भेदमाह स निरोधः चतुर्विधः ॥ १ ॥ चातु र्विध्यमाह नैमित्तक इति दिनस्यान्ते आयुषोऽन्तेऽइत्यन्वयः योगं ब्रह्मणो दिनक्षयान्ते देवयुगसहस्र-समाप्तावित्यर्थः संहारो भवति स नैमित्तिकः प्रथमः । अथ ब्रह्मण आयुषः समाप्तौ संहारो भवति स च प्राकृतिको द्वितीयः तत्र हि महदादिसप्तप्रकृतया प्रधाने लीयन्ते यो वै प्रतिक्षणं क्षणे क्षणे कालेन पच्यमानेषु प्राणिषु ह्रासो दृश्यते स संहारो नित्यस्तृतीयः सजातीयेऽपि प्रत्यभिज्ञानन्तु तद्वैवोपधानिति यत् स च "नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परन्तप उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते" इत्यनेन स्फुटीभवति । यस्तु जीवानां तत्त्वज्ञानेनाशात् अज्ञाना संहारस्तैक्यना स-मुद्य भिधः संहार आत्यन्तिकोनाम चतुर्थः । इत्येवं चातुर्विध्यं मुनिभिः नतु स्वकपोलकल्पना या । तद्दर्शयति कूर्मस्मृत्या " नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिकोऽपरः । आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशीति" ॥ २ ॥ नैमित्तिकस्य भेदान्तरमुच्यते अन्योऽप्यवतारोऽपि भूभारावतार संज्ञको नैमित्तिको निरोधः तत्र हि धर्मस्य ग्लानिः कारणं भवति तद्योग च भगवतः श्रीकृष्णस्य जन्म प्रकटितम् तदुक्तं गीतायां "यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्म स्य तदात्मानं सृजाम्यहं" इत्यतश्चयं तन्त्रं निरोधे तस्मिन्नपञ्चमलक्षणं कारणत्वात् । नच चतुष्टये ऽस्यान्तर्भावस्तद्धेतुतो वैलक्षण्यात नच नाशोऽपि पञ्चमं वक्तुं शक्यं ज्ञानाशाश्च विज्ञानस्यति प्रमाणाभाव त्वात् तस्मादुच्यते पंचमोनिरोध इति ॥३॥ किं पुनरेभि र्दशमे प्रयोजनं तत्राह स एव इति स- भूभारावतार संज्ञकः दशमे दशमस्कन्धे प्रोक्तः गौणतया तस्य तृतीयादौ सत्यपि मुख्यत्वात्तु दशमे एवहिर्वैसिरिति प्रेरयन्नेतोपसर्गेण स्वन्यते । अथच एकादशे एकादशस्कन्धे प्रोक्तः आत्यन्ति-कलयः ततः विस्तृतः नतु सूक्ष्मतया निरिष्टः । अन्येऽवशिष्टास्त्रयः प्राकृतिकनित्यनैमित्तिकाः द्वादशे द्वादशस्कन्धे निरूपिता इति शेषः तस्यैव चतुर्थेऽध्याये इत्यर्थः । किमर्थं मुद्दं आश्रयं श्री-कृष्णाख्यं परब्रह्म निरूपयितुं नच वैपरीत्येऽपि विनिगमक मितिवाच्ये मुख्यगौणभावस्तोता तत्र तत्र-निर्देशादितिदिक् ॥ ४ ॥ नन्वन्यैरपि रामाद्यवतारैः भूभारनिरोधः कृत सर्वेषां तेषां माथा परित्यज्य कथं कृष्णकथैव कथ्यते तत्राह तस्यावतारा इति तस्य हरेः यद्यपि ते रामाद्यवताराः निरोधस्यैवनि-शेषः कर्तारः सन्ति तथापि तेषु अवतारेषु कृष्णावतार एव मुख्यो नान्य इत्यर्थः महत्तमः सर्वोत्कृष्ट इत्यर्थः ते अवताराः महान्तःकृष्णस्तुअतिशयेन महान् इति महत्तमः अतःसर्वतस्तस्य उपेक्षत्वात् इतिभावः श्रेष्ठतात् " कृष्णस्तु भगवान्स्वयमित्यनेनोक्ता । अयमभिप्रायः बलरामादिभिः केचित् दुष्टा विनष्टास्तेषांस्मने बलरामादिनां गौणतैव अथच बहूनां मुख्यानां हननादेव मुख्यत्वात्तु कृष्णस्यै वात्रेतिध्येयम् । अतएव तस्य श्रीकृष्णस्यैव चारितम् कथा दशमे दशमस्कन्धे ततम् विस्तृतमास्ति ५

(मू०) गोकुले मथुरायांतद्वारिकायां कृतं त्रिधा ॥
चतुश्चत्वारिंशतोक्तं सप्तभिस्तत्परैः क्रमात् ॥ ६ ॥
प्राकट्यबाल्यपौगंडकैशोरप्रौढिभेदतः ॥
पञ्चधा गोकुलकृतं तच्च कंसवधाभिधम् ॥
चतुभिर्दशभिः शक्रैस्सप्तभिर्नवभिः क्रमात् ॥ ७ ॥

(भापार्थः)—इसप्रकार दशमस्कन्धके अर्थको कहकर अब उसके प्रकरणोंको कहते हैं—गोकुल, मथुरा, तथा द्वारका इन तीनों स्थानों में श्रीकृष्णचन्द्र ने लीला

करीं हैं इस कारण इन के चरित्रके भी तीन प्रकार हैं इसीसे इस दशमस्कन्ध के प्रकरण भी तीन ही हैं। अव इन प्रत्येक प्रकरण में कितने २ अध्याय हैं उन का वर्णन करते हैं—जोलिला श्री कृष्ण ने गोकुल में की है उसका ४४ चौवालीस अध्याय में निरूपण हैं। और मथुरा की लीला का सात ७ अध्यायों में तथा द्वारका के चरित्रों का तौ ३९ उन्तालीस अध्यायों से कथन है। यह सव मिल कर इस दशमस्कन्ध के ९० नव्वे अध्यायपूरे होते हैं॥ ६॥ अवपूर्वोक्त तीनौ प्रकरणों में से पहिले गोकुल प्रकरण के अवान्तर (भीतरी) और पाँच प्रकरण है उनकोदिखाते हैं — दुष्टों के नाशार्थ इन्ही श्रीकृष्णपरमात्माका अवतार हुआ है इस प्रकार प्रकटहोना — यही पहिला अवान्तर प्रकरण है १। वाल्यावस्था (पाँचवर्ष तक) की लीला का कथन यह दूसरा जानना २। पौगंडा वस्था (९ नौवर्षतक) के चरित्र का निरूपण यह तीसरा कहाहै ३। किशोर अवस्था (१६ सोलहवर्षलो) की कथाका चौथा प्रकरणहै ४। पुनः—प्रौढि (यौवन) अवस्था के वर्णन का पाँचमाँ अवान्तर प्रकरण जानो ५। यही इस प्रथम प्रकरण के पाँच भेदहैं। इसही महाप्रकरण तथा इनके पाँचो अवान्तर प्रकरणों को मिलाकर अर्थात् ४४ चौवालीस अध्यायों को—"कंसवध,, इस नामसे भी कहते हैं। किस२ श्लोकसे कोन २ अवस्था प्रकट होतीहैं यह संस्कृत टीके में देखलेना। प्रकटतादिके पाँच प्रकरण, कितने२ अध्यायों में हैं उनको प्रकाश करते हैं—चार अध्यायों में श्री कृष्णचन्दका प्रकट होना। दश अध्यायों में वालचरित्र। चौदह अध्यायों में पौगंड कथा।सातअध्यायोंमें किशोरअवस्था का वृत्तान्त। नौअध्यायों में प्रौढ (यौवन) चरित्र का निरूपण है। यह सब मिलकर चौवालीस ४४ अध्याय होते हैं॥ ७॥

(संस्कृतार्थः) एवं स्कन्धार्थमुक्त्वा प्रकरणान्याह। गोकुल इति तत्—श्रीकृष्णचरितम्। त्रिधाकृतम्—त्रिप्रकारकमस्ति यथा—गोकुले एकं, मथुरायां, द्वितीयं द्वारिकायां तृतीय मित्यतः प्रकरणत्रयमितिभावः। तत्राध्यायान् विभजते—गोकुले कृष्णलीला चतुश्चत्वारिंशद्भिरध्यायैः ४४ प्रोक्ता मथुरायान्तु सप्तभिरध्यायैः ७ द्वारकायाञ्च तदपरैः ऊनचत्वारिंशद्भिरध्यायैः ३९ इत्यर्थः क्रमात्—प्रकरणत्रये संख्याकरणात् अध्यायानां नवतिः ९० संख्याजातेत्यर्थः॥ ६॥ इदानीं गोकुलप्रकरणे पञ्चसंख्यान्यवान्तरप्रकरणान्याह—प्राकट्येत्यादिना—प्राकट्यं प्रकटता—दुष्टदलनाय जातोयं कृष्णावतार इति प्रसिद्धिः। बाल्यम्—आपञ्चवर्षम्। पौगंडम्—नववर्षपर्यन्तम्। कैशोरम्—षोडशान्तम्। प्रौढिः—यौवनम्—षोडशवर्षाणामुपरान्तमिति अत्रस्मृतिः प्रमाणम् यथा—"आपञ्चवर्षाद्बाल्यं स्यात् पौगंडं नववर्षतः॥ आषोडशाच्च कैशोरं यौवनन्तु ततः परम् इति" यत्तु तृतीयस्कन्धे "एकादश समास्तत्र गूढार्चिःसवलो वसत्,, प्रोक्तंतत्तुतत्तद्रूपायोग्यकार्यकारणादिदमुक्तम् अन्यथा गोकुले तावद्वर्षनिवासविरोधस्स्यात्। अथवा "एकादश समास्तत्र गूढार्चिः तदनन्तरं प्रकटार्चिरितिव्याख्यानं विधेयम्। मानमत्रास्थान्यथानुपपत्तिरेव। तस्य पञ्चप्रकारस्य गोकुलप्रकरणस्यात्र कंसवधाभिधम् कंसवध

इति संज्ञा वर्तते यदुपयोगश्च " चतुर्भिरथ्यायैर्दशभिरध्यायाः कंसवधेऽष्टाभिः ,, इत्यस्मिन्कं-नास्ति । वल्यादिप्रकारचतुष्टये मूलश्लोकप्रमाणम् यथा बाल्ये " एवं विहारैः कौमारैः , कौमारं जहतुर्व्रजे ,, पौगंडे " ततश्च पौगंडवयः श्रितौ व्रज ,, कैशोरे " कैशोरो इत्यादिवर्तनौ ,, । यौवने प्रागल्भ्यलीलाहर्षितामलोकनैरिति । चतुर्भिरित्यादिना भूमाकृष्णाद्ध्यायान् प्राकट्यादिचतु-सुविभजत—चतुर्भिरध्यायैः प्राकट्यम् " किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् इति मूलं मृग्यम् । दशभिर्बाल्यचरितम् । शाकैस्तु दशभिरध्यायैः । पौगंडकथा सप्तभिरध्यायैः कैशोरवृ-त्तम् नवभिरध्यायैः प्रौढचरितं वर्णितमितिभावः क्रमात् यथा योग्यगणनायां चतुर्भिरध्यायैर्दशध्या या जाता इत्यर्थः ॥ ७ ॥

इदानीं चतुर्भिरध्यायैः कृष्णस्य प्रकटतामाह-

(मू०) कंसभीर्भाविनः कृष्णाद्देवक्यां तस्य संभवः ॥
जातस्य गोकुलप्राप्तिर्निद्रोक्तात्कंसभीः पुनः ॥ ८ ॥

(भापार्थ)—इसप्रकार प्रकरणार्थ का समाधानकर अब गोकुलीय महाप्रकरण के क्रम से अध्यार्थ निरूपण किया जाता है—आगे उत्पन्नहोने वाले श्री कृष्ण से कंसको भय । यह दशमस्कन्ध के पहिले अध्याय का अर्थ है ॥ वसुदेवजी की पत्नी श्रीदेवकीजी में श्री कृष्णका उत्पन्नहोना—यही दूसरे अध्याय का प्रयोजन है । उत्पन्न होते ही श्रीकृष्णका निज पिता वसुदेव के द्वारा गोकुल में पहुँ-चना—यही तीसरे अध्याय का अर्थ है । जभी उत्पन्नहुई कन्या को कंसमारना चाँहता था उसी समय कन्या कंसके हाथ से छुटकर आकाश में गई और खड़ेहो कर कहाकि रे मूढ ? तेरा मारने वाला उत्पन्न होगया इस वाक्य को सुन कंसको प्रत्यक्ष ही भय उत्पन्न हुआ—यही चौथे अध्याय का प्रयोजन है ॥ ८ ॥

(संस्कृतार्थः) एवं प्रकरणार्थं समाधाय गोकुलस्य प्रकरणार्थं क्रमशश्चरणैरध्यायार्थानाह भाविनो अग्रे भविष्यतः कृष्णात् निजभगिनी देवकीसुतसकाशात् कंसस्य तद्भ्रातुर्नृपस्य भी भयम् "अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता" इति मूलोक्तत्वात् भावित्वम् इति दशमे प्रथमाध्यायार्थः॥ देवक्यां वसुदेवपत्न्यां तस्य श्रीकृष्णस्य संभवः उत्पत्तिः इति द्वितीयाध्यायार्थः ॥ जातस्य जातमात्रस्य श्रीकृष्णस्य गोकुलप्राप्तिः स्वपितृद्वारा गोकुलगमनम् इति तृतीयाध्यायार्थः ॥ निद्रया तत्रोत्पन्नकन्यया उक्तात् आनुनाकगात् आत्मभावेक्तः प्रश्रयः, पुनः पुनरपि कंसभीः कंसस्य भयं जातम् पूर्वं कृष्णजन्माऽनिश्चिततया भीरुक्ताऽधुना तु निश्चिततयैव द्विवारं भयमभू-दित्यर्थः इति चतुर्थाध्यायार्थः ॥ ८ ॥

प्रकटतामुक्त्वादशभिरध्यायैःकृष्णस्यबाल्यमाह

(मू०) व्रजे जन्मोत्सवस्तस्य तेनाथो पूतनावधः ॥
अनस्तृणावर्तभंगस्तस्य नामानि चापलम् ॥ ९ ॥

दामोदरत्वनटनं यमलार्जुनभञ्जनम् ॥
वधश्च वत्सवकयोस्तथाघासुरभोगिनः ॥ १०)
वत्सचोरब्रह्ममोहो ब्रह्मणा स्तवनं हरेः ॥

(भाषार्थः) नन्द जी ने श्रीकृष्ण का गोकुल में जन्मोत्सव किया यही पाँचवें अध्यायका अर्थ है ॥ तदनन्तर कंस से भेजी हुई राक्षसी पूतनाका वध श्रीकृष्णने किया । यही छठे अध्याय का प्रयोजन है ॥ चरणों से उछालकर कृष्ण ने शकट (गाढा) को तोडा तथा उस शकट के गिराने से तृणावर्त का चूर्ण किया अथवा शकटासुर को नीचे पृथ्वी में मारा और तृणावर्त को आकाश में जाकर नाश किया यही तीसरा अर्थ ठीक मालूम होताहै । यही सातवें अध्याय का आशय है ॥ पुरोहित के द्वारा श्रीकृष्णका नामकरण सँस्कार कराया तथा गुण कर्म के अनुसार पुरोहित ने श्रीकृष्णके अनेक नाम धरे और व्रज में कृष्ण ने अनेक क्रीडाकरीं=यही आठवें अध्याय का भाव है ॥ ९ ॥ गोरस के पात्र फोडने से माता ने क्रोधकर श्रीकृष्णको रस्सी से बाँधा पहिली पहल जितनी रस्सी बांधी वेहसव दो अंगुल कम हुई फिर एकही रस्सी में आपही श्रीहरि बंध गये । यही नवे अध्यायका तात्पर्य है ॥ मुनि के शाप से दो देवता यमलार्जुन नामक—वृक्ष हुए उन दोनों का रस्सी में बंधे सरकते २ श्रीकृष्णने तोडकर उद्धार किया । यही दशमाध्यायका भाव है ॥ वत्सरूपधारी तथा वकरूपधारी दो दैत्यों का भी वध किया । यही ग्यारहवें अध्याय का अभिप्राय है ॥ महासर्प के रूप धारणकरने वाले अघासुर को भी मारा यही वारहवें अध्याय का स्पष्टार्थ है ॥ १० ॥ गोपालवाल तथा वछडों को चुराने वाले ब्रह्मा जी को तत्सदृश वालक और वछडे रचकर कृष्णने मोह कराया । यही तेरहवें अध्याय का तत्व है ॥ मेरे वछडे सच्चे हैं अथवा श्रीकृष्णके रचे हुए इस प्रकार मोह को प्राप्तहुए ब्रह्माजी ने कृष्णजी की स्तुति की यही चौदहवें अध्याय का सार है ॥

(संस्कृतार्थः) व्रज इति तस्य श्रीकृष्णस्य, व्रजे गोकुले जन्मोत्सवः नन्दः जातकं कर्म कृतवानित्यर्थः इति पञ्चमाध्यायार्थः ॥ अथ तदनन्तरम् तेन श्रीकृष्णेन पूतनावधः कंसप्रेषितायाः राक्षस्याः पूतनायाः वधः हननम् कृतमितिशेषः इति षष्ठाध्यायार्थः अनस्तृणावर्तयोः शकटस्य तृणावर्तदैत्यस्य च भंगः नाशः कृतः चरणाभ्यामुत्क्षिप्य शकटभंगः कृतः अथ च पततः शकटात् अधस्तृणावर्तश्चूर्णित इतिभावः केचित् शकटासुरवधमाहुः अपरे पृथिव्यां शकटासुरमाकाशे तृणावर्तं अघानेत्याहुः इति सप्तमाध्यायार्थः ॥ तस्य श्रीकृष्णस्य, नामानि नामकरणसँस्कारः पित्रा पुरा-

हितद्वाराकारितः यद्वा वनन्तु कौलादिकर्मणामनेकत्वात् नानात्वापि बहूनीत्यर्थः नाट्यकम् नाट्यक्रीडा-दिकम् तेन कृतमितिशेषः इत्यष्टमाध्यायार्थः॥९॥दाम्ना रज्ज्वा उदरं बद्धः यः स दामोदरस्तस्य भावो दामोदरत्वम् दामोदरत्वेन नटनम् मातुर्नटनात् कलाकौशलादिप्रदर्शनम् पूर्वं बहूनामपि दाम्नां द्व्यंगुलन्यूनताऽभूत् पुनरेकेनैवरज्ज्वाबन्धनं माया कारितमिति नटनाभिप्रायः इति नवमाध्यायार्थः यमलार्जुनौ द्वौ वृक्षौ तयोः भञ्जनम् त्रोटनम् पूर्वं मुनिना शप्तौ देवौ द्वौ तद्रूपिणौ जातावभूतां कृष्णेन मुक्ताविति भावः इति दशमाध्यायार्थः । वत्सश्च नामक्काधारी आसुरविशेषः बकश्च बकाकारो दैत्यः तयोर्वधः हननं कृतम् । इत्येकादशाध्यायार्थः अघासुरभोगिनः भोगी सर्पः सर्पाकृतिर्दैत्यः मुक्तः, तथा वत्सवकवत् वधो हरिणाकृत इत्यर्थः इति द्वादशाध्यायार्थः॥ १० ॥ वत्सान् चोरयतीति वत्स चोरः वत्सचोरश्चासौ ब्रह्मा वत्सचोरब्रह्मा तस्य वत्सचोरब्रह्मणः मोह इति त्रयोदशाध्यायार्थः विमो-हितेन ब्रह्मणा हरेः कृष्णस्य स्तवनम् स्तुति रित्यर्थः इति चतुर्दशाध्यायार्थः ॥

चतुर्दशभिरध्यायैरथपौगंडमाह-

(मू०) रामेण धेनुकवधः कालीयस्य स्वयंदमः ॥ ११ ॥
व्रजस्य रक्षणं दावात् प्रलम्बो हलिना वधः ॥
दावात् गोत्राणमैपीके प्रावृट्शरदृतुश्रियौ ॥ १२ ॥
गोप्यानन्दो वेणुरवात् गोपीनर्मांम्बिकार्चने ॥
यज्ञपत्नीप्रसादश्च भंग इन्द्रमखस्य च ॥ १३ ॥
गोवर्द्धनस्योद्धरणं गोपानां देवतामतिः ॥
कृष्णाभिषेको गोदेवैर्वरुणान्नन्दमोक्षणम् ॥ १४ ॥

(भाषार्थः)—बलदेवजी के द्वारा ही श्रीकृष्ण जी ने धेनुक नामक राक्षस को मरवाया । यहीपन्द्रहवें अध्यायका अर्थ है । गेंदगिरने के बहाने से श्रीकृष्ण ने कालीयनाम वाले सर्पका दमन अपने आपही किया यह सोलह वें अध्याय का तत्वहै ॥ ११ ॥ वनकी अग्निसे गा तथा गोपाल बालकों की रक्षाकरी यह सत्रहमें अध्याय का भाव है ॥ प्रलम्बनाम असुर का श्रीबल देवजी से विनाश कराया यह अठारहवें अध्याय का तात्पर्य है मूजके वनमें लगी हुई अग्निको पीकर गौतथा गोपों की रक्षाकरी यह उन्नीस वें अध्याय का आशय है गोप और श्रीबलदेवजी को संगमें लेकर श्रीकृष्णने वर्षातथा शरद ऋतुमें क्रीडाकरी और उनकी शोभा देखी यही बीसवें अध्याय का प्रयोजनहै ॥ १२ ॥ कृष्णसे बजाई हुईवंसी कीधुन को सुनकर गोपियों को बड़ा आनन्दप्राप्त हुआ । यह इकीसवें अध्याय का विशदार्थ है ॥ अम्बिका के पूजन करने को गई हुई गोपियों से हास्यकरना यह बाईस

वेंअध्याय का सारहै ।। मथुरा में यज्ञकर ने वालें पुरुषों की पत्नियों के ऊपर श्री कृष्णने अनुग्रह किया यही तेईसवें अध्यायका निष्कृष्टार्थहै।।इन्द्रके गर्व नाश करने के लिये इन्द्र यज्ञ को दूरकर कृष्णने गोवर्द्धन पर्वत के यज्ञोत्सव का प्रवर्तन किया यह चौवीसवें अध्यायका स्पष्टार्थ है।।१३।।व्रजके नाशार्थ इन्द्रके वर्षा करनेपर एक हाथकी कन अंगुली से गोवर्द्धन पर्वत को उठाय व्रजकी रक्षाकी यह पचीस वें अध्याय का स्वच्छार्थ है।।अवश्य कृष्ण देवता है ऐसी गोकुल वासियों की बुद्धि हुई यह छव्वीसवें अध्याय का सरलार्थ है।। कृष्णके प्रभावको देख कामधेनु तथा इन्द्रादिदेवोंने श्रीकृष्णका अभिषेक महोत्सव किया यह सत्ताईसवें अध्याय का प्रकाशार्थ है।। जलमें स्नान करतेहुए नन्दजी को वरुण के दूत वरुण लोक में लेगये श्री कृष्णने वहाँसे नन्दजी को छुड़ाया यही अठाइसवें अध्याय का मुख्यार्थ है।।१४।।

(सँस्कृतार्थः)—रामेण बलरामेण, धेनुकस्य तद्रूपधारिणो दानवस्य वधः कृत अत्र रामेण इति करणे तृतीया ज्ञेया न तु कर्तरि अन्यथेह स्कन्धे कृष्णस्य नायकत्वहानिः स्यादतो बलरामद्वारा कृष्णेन धेनुकवधः कृतः इत्यर्थः समीचीनः अतएव षोडशे स्वयं पद्ं कथितम् । एवमेवाग्रे प्रद्युम्नार्जुन भीमेष्वपि समाधेयम् । पुष्टयति वक्ष्यमाणपद्येन "याद्वयन्त्यदर्शनमलं बलपार्थभीमव्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयमिति अयमेव पंचदशाध्यायार्थः ।। कालियस्य तन्नाम्नः सर्पस्य स्वयं दमः स्वयमेव हननम् न तु रामादिद्वारा कन्दुकपतनमिषादिति शेषः इति षोडशाध्यायार्थः ।। ११ ।। दावात् वनवन्हेः सकाशात् व्रजस्य लक्षणया गोगोपालबालानामित्यर्थः रक्षणम उद्धारः इति सप्तदशाध्यायार्थः ।। प्रालम्बः प्रलम्बसम्बन्धी, हलिना बलरामद्वारा, वधः हरिणा कृतः । अत्रापि हलिनेति करणे तृतीया इत्यष्टादशाध्यायार्थः ।। ऐषीके इषीकायाःवने मुंजारण्ये इतिभावः, दावात् वनवन्हे, गोत्राणम् गोपदात् गोपानामपिग्रहणं त्राणं रक्षणम् तमग्निं हरिः पपावित्यभिप्रायः इत्यूनविंशाध्यायार्थः ।। प्रावृट् च शरच्चेति एव ऋतू तयोः श्रियौ शोभे गोपरामयुक्तेन कृष्णेन प्रावृट्शरदक्रीडा कृता तच्छोभा च दृष्टेतिभावः इति विंशाध्यायार्थः ।। १२ ।। वेणुरवात् कृष्णवादितवंशीनादात् गोपीनामानन्दोऽभून । तद्वेणुस्वरमाकर्ण्य गोप्यः आनन्दाः जाता इत्येक विंशाध्यायार्थः ।। अम्बिकार्चने क्रियमाणे सति, गोपीनां नग्नपरिहासः इति द्वाविंशाध्यायार्थः ।। यज्वानो याज्ञिकाः तत्पत्नीनां प्रसादः प्रसन्नता प्रकाशिता अन्नयाचोपदेशतः माथुरयाज्ञिकपत्नीनामुपरिकृष्णेनानुग्रहः कृतः इतिभावः इति त्रयो विंशाध्यायार्थः ।। इन्द्रस्य मखो यज्ञस्तस्य भंगो निरसनम् । कृष्ण इन्द्रमखं व्यावर्त्य पुरन्दर दर्पदलनाय गोवर्द्धनमखोत्सवं प्रावर्तयामासेतिभावः । इति चतुर्विंशाध्यायार्थः ।। १३ ।। गोवर्द्धनस्य तन्नामकस्य पर्वतस्य, उद्धरणम् धारणम् व्रजनाशायेंद्रे वर्षति अंगुल्या गिरिमुद्धृत्य कृष्णो गोकुलमरक्षत् इति विशदार्थः इति पंचविंशाध्यायार्थः ।। गोपानाम् गोकुलवासिनाम् देवतामतिः कृष्णो देवायमितिबुद्धिः कृष्णे इतिशेषः । इति षड्विंशाध्यायार्थः ।। गोदेवैः गावश्च देवाश्च तैः, कृष्णस्याभिषेकः कृतः । कृष्णप्रभावमालोक्य सुरभीन्द्रादिभिरभिषेकमहोत्सवः कृत इत्यभिप्रायः । इति सप्त विंशाध्यायार्थः ।। वरुणात् वरुणालयात, नन्दमोक्षणम् नन्दानयनम् कृतम् गोपीनां वैकुण्ठदर्शनमित्युपरितो ज्ञेयम् । इत्यष्टविंशाध्यायार्थः ।। १४ ।।

इदानीं सप्तभिरध्यायैः कैशोरमाह--

(मू०) संभोगो निशि गोपीभिर्विप्रलम्भो लसद्वने ।
गोपीविरहगीतानि ताभिः संजल्पनं हरेः ॥ १५ ॥
रासक्रीडा च ललिता मोक्षो विद्याध्रयक्षयोः ।
व्रजस्य गोपिकागीतम्—

(भावार्थ) अब सात अध्यायोंसे किशोर लीला का वर्णन करते हैं— शरद ऋतु की रात्रि में गोपियों के साथ सुरत प्रसंग करना यह उन्तीसवें अध्याय का अर्थ है । उसी सुन्दर वन में गोपियों से श्रीकृष्ण का वियोग होना यह तीसवें अध्याय का तत्व है । कृष्ण के विरह से उनके मिलने में निराशहुई गोपियें श्रीकृष्ण की लीला गानेलगीं । यह इकतीसवें अध्याय का तात्पर्य है । विरह वचनों से क्लेशित चित्त होकर श्रीकृष्ण जी वहां प्रकटहुए और गोपियों को समुझाया यह वत्तीसवें अध्याय का आशय है ॥ १५ ॥ गोपियों के साथ कृष्णका सुन्दर रास महोत्सव हुआ यह तेंतीसवें अध्याय का प्रयोजन है । श्रीकृष्ण जी ने अंगिरा ऋषि के शाप से सुदर्शन विद्याधर को छुडाया तथा शंखचूड का वध किया । यह चौंतीसवें अध्याय का मुख्यार्थ है । कृष्ण के वन में जाने पर उन के विरह से आतुर हुई गोकुल की स्त्रियें कृष्णलीला गाय २ वडे कष्ट से उन दिनों को वितातीं थीं । यह पैंतीसवें अध्याय का सरलार्थ है ।

(संस्कृतार्थः) निशि शारदरात्रौ, गोपीभिः सह, संभोगः सुरतप्रसंगः इत्येकोनत्रिंशाध्यायार्थः ॥ लसद्वने शोभमाने वने विप्रलम्भः वियोगः गोपीभिरित्येव इति त्रिंशाध्यायार्थः ॥ कृष्णागमनेन निराशा हता गोप्यः तद्विरहात् कृष्णलीलागीतानि जगुः इत्येकत्रिंशाध्यायार्थः ॥ ताभिः गोपीभिः सह हरेः कृष्णस्य, संजल्पनम् सुखगोष्ठी । विरहवचनक्लेशितचित्तो हरिः तत्राविर्भूय ता गोपीः सान्त्वयामासेतिभावः । इति द्वात्रिंशाध्यायार्थः ॥ १५ ॥ ललिता रम्या, रासक्रीडा रासमहोत्सवः चकारात् गोपीभिः सह कृष्णस्येति बोध्यम् । इति त्रयस्त्रिंशाध्यायार्थः ॥ विद्याध्रो विद्याधरः सुदर्शनः मूल-विभुजादित्वात्कः प्रत्ययः यक्षः शंखचूडः तयोः मोक्षः कृष्णः अंगिरःशापात् सुदर्शनं विद्याधरममूमुचत् शंखचूडं यक्षं चावधीत् अहिना ग्रस्तं नन्दमपि मुक्तवानित्यपरितोऽन्वयम् । इति चतुस्त्रिंशाध्यायार्थः ॥ व्रजे तिष्ठन्तीति व्रजस्थाः ताश्च गोपिकास्तासां गीतम् वने गते कृष्णे तद्विरहातुराः गोकुलस्त्रियः कृष्णलीलागीतैर्दुःखेन दिनानि निन्युरित्याशयः इति पञ्चत्रिंशाध्यायार्थः ॥

अधुना नवभिरध्यायैः यौवनमाह--

(मू०)　　हतेऽरिष्टे च कंसभीः ॥ १६ ॥
केशिव्योमवधश्चाक्रूरयानं व्रजं प्रति ॥
मथुराकृष्णयानञ्चाक्रूरेणाप्सु हरेः स्तुतिः ॥ १७ ॥
कृष्णस्य मथुरालोकः कंसमल्लरणोद्यमः ।
कृष्णेन मल्लहननं हते कंसे सुरोत्सवः॥ १८ ॥
चतुश्चत्वारिंशदिमेऽध्यायाः कंसवधेप्रिभिः

(भाषार्थः) अरिष्टासुर के मारने से कंस को भय उत्पन्नहुआ । यह छत्तीसवें अध्याय का अर्थ है ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णने केशी दैत्य तथा व्योमासुर इन दोनों को मारा यह सैंतीसवें अध्याय का प्रयोजन है ॥ कंस के भेजे हुए अक्रूर जी महाराज रामकृष्ण के बुलाने को मथुरासे गोकुलको गये । यह अड़तीसवें अध्याय का आशय है । अक्रूरजीसे बुलाये हुए बलदेवजी के साथ श्रीकृष्णचन्द्र रथपर चढ मथुराको गये । यह उन्तालीसवें अध्याय का भाव है ॥ अक्रूर जीने मार्ग में ठहर यमुना में स्नान किया तथा वहाँ यह आश्चर्य देखा कि श्रीकृष्णजी जल में और स्थल में सब जगह विद्यमान है यह देख उन को परमात्माजान भक्तिसे स्तुति करने लगे । यह चालीसवें अध्याय का आशय है ॥ १७ ॥ मथुरा में जाय श्रीकृष्ण ने उस नगरी की शोभा देखी । यह इकतालीशवें अध्याय का सरलार्थ है ॥ कंस के मल्लोंके साथ संग्राम की तैय्यारीहुई । यह बयालीसवें अध्याय का विशदार्थ है ॥ श्रीकृष्ण ने चाणूर मुष्टिक आदिका हनन किया ॥ यह तैंतालीसवें अध्याय का मुख्यार्थ है ॥ पुनः श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने दुष्ट कंस का वध किया । यह चौवालीसवाँ अध्याय है ॥ १९ ॥ यह पांच छोटे २ भेद वाला कंस वधोपाख्यान समाप्त हुआ ॥ शुभमस्तु ॥

(संस्कृतार्थः) हतेऽरिष्टे इति सप्तम्यन्तं पदं गौणम्प्रथमान्तन्तु प्रधानम् । अरिष्टासुरे हते सति अर्थात् यदा अरिष्टासुरो हतः कृष्णेन तदा कंसस्य भीः भयमुत्पन्नम् । इति षट्त्रिंशाध्यायार्थः ॥ १६ ॥ केशी च व्योमश्च तयोर्वधः चकारान्नारदस्तुतिरपि । इति सप्तत्रिंशाध्यायार्थः । व्रजं प्रति अक्रूरस्य यानं गमनम् । रामकृष्णानयनाय कंसप्रेषितोऽक्रूरो मथुरातो गोकुलं गतवानितिभावः । इत्यष्टत्रिंशाध्यायार्थः ॥ मथुरायां कृष्णस्य यानं गमनम् चकारात् गोपीविरहदुःखं चेति " अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य " इत्यादितुत्तराध्यायबीजम् सबलः कृष्णो·

रथमारुह्याक्रूरेण सह मथुरां जगामेति भावः इत्यूनचत्वारिंशाध्यायार्थः ॥ मार्गे तु जले अक्रूरेण हरेः कृष्णस्य स्तुतिः कृता जले स्थले चाक्रूरः कृष्णरूपाभेददर्शनात् भक्त्या सगुणागुणभेदतः तमीश्वरं मत्वा स्तुतिं चक्रे इत्यभिप्रायः इति चत्वारिंशाध्यायार्थः ॥ १८ ॥ कृष्णस्य मथुरायाः इतस्ततः आलोकः दर्शनम् इत्येक चत्वारिंशाध्यायार्थः ॥ कंसस्य ये मल्लास्ते षां रणोद्यमः कुवलयापीडादि वधस्तु मल्लवधप्रसङ्गात् ज्ञेयः इति द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ कृष्णेन मल्लानां चाणूरमुष्टिकादीनां हननम् अत्र चतुश्चत्वारिंशाध्यायस्य त्रिचत्वारिंशान्तं त्रयश्च- त्वारिंशदध्यायं मत्वेदमुक्तमितिभावः । इति त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ कंसे हते सति सुहृद्भिः उत्सवः कृतः इति चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ अंघ्रिभिः एकैकशश्चरणैः कंसवधे कंसवधोपा ख्याने इमे चतुश्चत्वारिंशदध्यायाः सन्ति । पंचविधस्यापि गोकुलकृते तस्य कंसवधोपाख्यानमिति प्रागुक्तम् ॥ १९ ॥

समाप्तं प्रथमं प्रकरणम् ॥

[मू०] कृष्णस्य विद्योपादानमुद्धवस्य व्रजागमः ॥
आश्वासनञ्च गोपीनां कुब्जाक्रूरप्रियं हरेः ॥ १९ ॥
संगोऽक्रूरस्य कुरुभिर्जरासंधपराजयः ॥
यवनस्य वधोऽध्यायैः सप्तभिर्माथुरं यशः ॥ २० ॥

अथ सप्तभिरध्यायैर्माथुरं यशो निरूप्यते-

(भाषार्थः) अब क्रम से मथुरा सम्बन्धि सात अध्यायों को एक २ चरण से वर्णन करते हैं। वलदेव सहित श्रीकृष्ण जी ने काशी के सांदीपन नामक गुरु के पास जाय सम्पूर्ण वेद वेदाङ्गादि को पढा। यह पैंतालीसवें अध्याय का अर्थ है॥ यशोदा और नन्द जी के शोक दूर करने को उद्धव जी का व्रज में आना वही छयालीसवें अध्याय का तत्व है॥ उद्धव जी का गोपियों को समुझाना। यह सैंतालीसवें अध्याय का प्रयोजन हैं श्रीकृष्ण ने कुब्जा तथा अक्रूर जी के घर जाय प्रेम दर्शाया। यह अडतालीसवें अध्यायका आशय है॥१९॥ अक्रूरजी हस्तिनापुर को गये वहांजाय अपने भाई दुर्योधनादिकों से मिले तथा सव वृत्तान्त कहा व सुना। यह उनचासवें अध्याय का सार है॥

यही दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्ध की समाप्ति जाननी ॥

युद्ध में जरासिन्ध को परास्त करना यही पचासवें अध्याय का विशदार्थ है॥ गुफा में सोयेहुए मुचुकुन्द से यवनका संहार कराना। यही इक्कयावन अध्याय का स्वच्छार्थ है॥ इन सात अध्यायों से मथुरा के यश को वर्णन किया है॥ २० ॥

(संस्कृतार्थः) अथ माथुरकृते क्रमशश्चरणैरध्यायार्थानाह कृष्णस्येति कृष्णस्य विद्याया उपादानं ग्रहणम् सबलः कृष्णः काशिस्थं सांदीपानिं गुरुमुपागम्याखिलवेदवेदांगादीनिपपाठेतिभावः। इति पञ्चचत्वारिंशार्थः ॥ यशोदानन्दयोः शोकापनोदाय कृष्णप्रेषितस्योद्धवस्य व्रजे घोषे आगमः आगमनम्॥इति षट्चत्वारिंशोऽर्थः॥गोपीनामाश्वासनमुद्धवेनेति विपरिणमनीयम् । इति सप्तचत्वारिंशोऽर्थः॥१९॥कुब्जाचाक्रूरश्च तयाः प्रियं तदगृहगमनात् हरेः सम्बन्धेनेति याचत् इत्यष्टचत्वारिंशोऽर्थः । अक्रूरस्य कुशभिः सह संगोमिलनम् अक्रूरो हास्तिनपुरं ययौ तत्रत्यैः स्वभ्रातृपुत्रैर्दुर्योधनादिभिःसह संगमःसंलापश्च तस्य जातइत्यर्थःइत्यूनपञ्चाशत्तमाऽर्थः सगाप्तोयं दशमस्य पूर्वार्द्धः ॥

जरासिन्धस्य पराजयः युद्धे पराभूतिरित्यर्थः । इति पञ्चाशत्तमोऽर्थः ॥ यवनस्य वधः मुचुकुन्दद्वारा यवनं नाशेत्यर्थः । इत्येकपञ्चाशत्तमाऽर्थः ॥ सप्तभिरध्यायैर्माथुरं मथुरासम्बन्धि यशः कीर्तिः वर्णितमितिशेषः ॥ २० ॥

(मू०) कृष्णाभिलाषो रुक्मिण्या रुक्मिणीहरणं रहः ॥
रुक्मिणश्च पराभूतिः प्रद्युम्नाच्छंबरक्षयः ॥ २१ ॥
स्यमन्तकस्याहरणं सत्यभामासमुद्वह : ॥
कालिंद्यादिविवाहश्च भौमं हत्वा द्रुमाहृति : ॥ २२ ॥
रुक्मिण्या नर्म रहसि रुक्मिन्तो नप्तुरुद्वहे ॥
बाणेन बन्धनं नप्तुर्बाणस्य हरिणा जय : ॥ २३ ॥
नृगस्य सरटत्वान्तो हलिना यमुना भिदा ॥
काशीशपौंडकवधो रामेण द्विविदक्षय : ॥ २४ ॥
पराभवः कुरूणाञ्च हरेर्गार्हस्थमद्भुतम् ॥
जरासिन्धवधे मन्त्रो युधिष्ठिरसमागम : ॥ २५ ॥

(भाषार्थ) अत्रक्रम से द्वारका के अर्थ एक २ चरण से एक २ अध्याय का वर्णन करते हैं । विदर्भ देशके अधिपति भीष्मक राजाकी कन्या में श्रीकृष्ण की अभिलाषा होनी । यही बावन अध्याय का अर्थ है॥ श्रीकृष्णने शत्रुओंके बीच में से रुक्मिणी का हरण किया । यही तरेपन वें अध्याय का प्रयोजनहै॥ रुक्मिणीका भाई रुक्मी तथा अन्य राजोंका अंगभंग कर श्रीकृष्णने पराजय किया । यह चौवन वें अध्याय का आशयहै॥ हरणाकिये हुए श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नने शंबर नामक दैत्य का नाशकिया । यही पचपनका तत्व है ॥ २१॥ जाम्ववान नामक ऋक्ष (रीछ) के पाससे स्यमन्तक नाम वालीमणि लाना । यही छप्पन का सार है सत्यजित्की पुत्री सत्य भामा के विवाहका उत्सव । यही सत्तावन का विशदार्थ है ॥ श्रीकृष्ण जीने कालिन्दी, मित्रविन्दा नाग्निजिती, भद्रा तथा लक्ष्मणा का विवाह किया । यही अट्ठावन का स्वच्छार्थ है॥भौमासुर को मार स्वर्गसे पारिजात नामक वृक्षका

लाना । यही उन्सठका सारांश है ॥ २२ ॥ एकान्त में रुक्मिणी के साथ परिहास का करना । यही सांठका लक्ष्यहै॥श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धजी के विवाह में बलदेवजीने रुक्मी को नष्ट किया । यही इकसठका मुख्यार्थहै॥अपनी कन्या ऊषाके साथ रमणकरते हुए अनिरुद्धजी को वाणासुरने बाँधा । यही बासंठका सारार्थहै॥ यादव और वाणासुर के संग्राम में कृष्णने वाणासुर को जीता यही तरेसठका मर्म है ॥ २३ ॥ सरट (करकैंटा) रूपधारी नृग राजाका अन्धकूपसे उद्धार करना । यही चोंसठका आशय है बलदेवजीने यमुनाजीका आकर्षण किया । यही पैंसठका स्फुटार्थहै॥श्रीकृष्णने काशीके राजा तथा पौंड्रकावध किया । यही छासठ का तत्वहै॥ श्रीबलदेवजी ने द्विविद नामक वानर को मारा । यही सड़सट का सार है ॥ २४ ॥ साम्ब के पकड़े जानेके समय कौरवोंके संग्राम होनेपर बलदेवजी ने हस्तिनापुरका अकर्षणकिया । यही अड़सटका अर्थ है॥ प्रतिमन्दिर श्रीकृष्णके गृहस्थ को देखकर नारदजी को बड़ा आश्चर्य हुआ । यही उनत्तर का प्रयोजनहै ॥ श्रीकृष्णजी जरासन्धके वधको विचाररहेथे उसी समय युधिष्ठिर के यज्ञ का नारद जीने निमन्त्रण दिया । यही सत्तरका प्रयोजनहै ॥ उद्धवजी के मन्त्र (सलाह) से इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को गमन करते हुए श्रीकृष्णजी युधिष्ठिर से मिले । यही इकत्तर का सार है ॥ ॥ २५ ॥

(सँस्कृतार्थः) अधुना द्वारकायां कृष्णस्य रुक्मिण्यां [illegible] सुता रुक्मिणी तस्याः ग्रहणं कृष्णस्याभिलाषा जाता । इति द्विपञ्चाशत्तमार्थः ॥ हरेः कृष्णस्य रुक्मिणीहरणं कृष्णो द्विषतां बलात् रुक्मिणीमहरदित्यर्थः इति त्रिपञ्चाशत्तमार्थः ॥ रुक्मिणश्च रुक्मिण्या भ्रातुः पराभूति पराभवः वैरूप्यकरणेनेतियावत् चकारात् अन्येषां च राज्ञां पराभव इत्यर्थः इति चतुःपंचाशत्तमार्थः ॥ प्रद्युम्नात् कृष्णतः प्रद्युम्नाऽजनि स च शंबरदैत्येन हृतः तस्मादेव शंबरस्य क्षयो नाशः । इति पञ्चपञ्चाशत्तमार्थः ॥ २१ ॥ स्यमन्तकस्य तन्नामकमणेः, आहरणम् आनयनम्, जाम्बवतः ऋक्षस्य सकाशादितिशेषः । इति षट्पंचाशत्तमार्थः सत्यभामायाः सत्राजित्सुतायाः समुद्वहो विवाहः स च पूर्वोपयामान्तरेणोप्युत्तराध्यायार्थं इति मन्तव्यम् । इति सप्तपंचाशत्तमार्थः । कालिन्द्यादीनां विवाहश्च कृष्णेन कृत इत्यर्थः आदिपदात् मित्रविन्दानाग्नजितीभद्रालक्ष्मणा बोध्याः इत्यष्टपंचाशत्तमार्थः भौमं भौमासुरं हत्वा पुनः द्रुमस्य पारिजातस्य आहृतिः आनयनम् स्वर्गादित्यर्थः । इत्यूनषष्टितमार्थः ॥ २२ ॥ रहसि एकान्ते रुक्मिण्या नर्म परिहासः । इति षष्टितमोऽर्थः ।नप्तुरनिरुद्धस्य उद्वहे विवाहे रुक्मिणो रामतो बलात् वधः इत्येकषष्टितमोऽर्थः । नप्तुः बाणकन्ययोषया सह रममाणस्यानिरुद्धस्य बाणेन बन्धनम् कृतमित्यर्थः॥ इति द्विषष्टितमार्थः हरिणा कृष्णेन बाणस्य जयः बाणयादवसंग्रामे इतिशेषः इति त्रिषष्टितमार्थः ॥ २३ ॥ नृगस्य तन्नाम्नो नृपस्य सरटत्वं कृकलासत्वं तस्य भ्रान्तः मोक्ष इत्यर्थः इति चतुःषष्टितमार्थः । हलमस्यास्तीति हली तेन हलिना बलदेवेन यमुनाया भिदा आकर्षण इति पंचषष्टितमार्थः । काशिपश्च पौंड्रकश्च तयोर्वधः कृष्णेनेति ज्ञेयं न तु बलदेवेनेति उत्तरत्र रामपदप्रतिपादनात् । इति षट्षष्टितमार्थः

रामेण बलदेवेन द्विविदस्य तन्नामकवानरस्य क्षपो नाशः कृत इत्यर्थः इति सप्तषष्टितमार्थः ॥२४॥ कुरुणां दुर्योधनादीनांच पराभवः पराजयः साम्बे निरुद्धे कौरवैः संग्रामः तद्विमोक्षाय बलदेवेन हस्तिनापुरकर्षणं कृतमितिभावः इत्यष्टषष्टितमार्थः हरेः कृष्णस्य अद्भुतं अश्चर्यजनकम् गार्हस्थम कुटुम्बम् कृष्णस्य प्रतिमन्दिरं गार्हस्थमवलोक्य नारदो विस्मित इतिभावः इत्यून सप्ततितमार्थः॥जरासन्ध वधः कथं जरासन्धनाशो भवेत् इति तस्मिन् कर्माणि मन्त्रः विचारः सुखेय जरासन्धवधविचारे प्रस्तुते तदैव नारदकृत युधिष्ठिरयज्ञे कृष्णस्य निमन्त्रणमितिगर्भार्थः इति सप्ततितमार्थः ॥ उद्धव मन्त्रतः इन्द्रप्रस्थं गतस्य कृष्णस्य युधिष्ठिरेण सह समागमः मलनमित्यर्थः इत्येक सप्ततितमार्थः ॥ २५ ॥

(मू०) जरासन्धवधो भीमाद्विजयश्चार्जुनादिभिः ॥
शिशुपालवधो यज्ञे दुर्योधनपराभवः ॥ २६ ॥
शाल्वस्य युद्धं यदुभिः शाल्वस्य हरिणा वधः ॥
दन्तवक्रस्य सूतान्तो वल्वलान्तश्च सीरिणा ॥ २७ ॥
श्रीदाम्नः कृष्णसंजल्पः श्रीदाम्नः सम्पदद्भुता ॥
सुहृत्संगः कुरुक्षेत्रे कृष्णोद्वाहाभिवर्णनम् ॥ २८ ॥
वसुदेवस्य यज्ञाश्च मृतपुत्रप्रदर्शनम् ॥
श्रुतदेवस्य चातिथ्यं वेदस्तुतिनिरूपणम् ॥ २९ ॥
देवत्रयविभागश्च द्विजपुत्राहृतिस्तथा ॥
कृष्णकीर्त्युपसंहार इतीदं द्वारकाकृतम् ॥
ऊनचत्वारिंशतोक्तमध्यायैः पादवर्णितैः ॥ ३० ॥

(भाषार्थः) भीमसेन के द्वारा जरा संघका वध अर्थात् हरिने भीमसेन से जरासंधका हनन कराया यही बहत्तरवें अध्याय का अर्थ है ॥ अर्जुन आदि का दिग्विजय यही तिहत्तर का प्रयोजन है ॥ श्रीकृष्णने राजसूय यज्ञमें अग्रपूजा अर्थात् पहिले किसकी पूजा होनी चांहिये इस प्रसंग से शिशुपाल का वधकिया यही चौहत्तरका अर्थ है ॥ जलमें स्थल और स्थलमें जलका भ्रमहोने से दुर्योधनका मान भंग यही पिछत्तरवें का तात्पर्य है ॥ २६ ॥ शाल्व का यदुवंशियों के साथ युद्ध यही छहत्तरवें का सार है ॥ श्रीकृष्णने शाल्वको मारा यही सतत्तरवें का तत्व है ॥ श्रीहरि ने दन्तवक्रको मारा और बलदेवजी के द्वारा सूतका वध कराया—यही अठत्तरवें का आशय है ॥ श्रीबलदेव जी के ही द्वारा वल्वल दैत्य का वध कराया यही उनासीवें का तत्व है । २७ । घरआयेहुए सुदामा जी की कृष्ण ने पूजा की यद्यपि मूल श्रीमद्भागवत में श्रीदामा और सुदामा यह पद कहीं भी नहीं लिखा है तथापि पद्मपुराणके सहस्र नाम में यह शब्द आता है इसीसे यहां

वोपदेवजी महाराजने प्रकट करदिखाया है—यही अस्सी का प्रयोजन है ॥ एक मुट्ठी चौले चाबकर—इन्द्रको भी दुष्प्राप्य जो सम्पत्ति है वह सुदामा जी को दी—यही इक्यासी का विशदार्थ है ॥ सूर्यग्रहण होनेपर कुरुक्षेत्र के मेले में नन्दादिकों का कृष्ण से मिलाप यही बयासी का स्वच्छार्थ है ॥ द्रौपदीजी को रुक्मिणी आदि ने अपने २ विवाह की कथा सुनाई—यही तिरासी का अर्थ है ॥ २८ ॥ वसुदेव जी का यज्ञ और नन्दादिकों का प्रस्थान—यही चौरासी का प्रयोजन है। मरेहुए देवकी के पुत्रों का श्रीहरिसे लाना—यही पिचासी का सार है। श्रुतदेव वा जनक का सत्कार और सुभद्रा का हरण—यही छयासी का तत्त्व है ॥ नारद नारायण के सम्वाद प्रसंग से निर्गुण में सगुणता द्वारा वेदोंसे स्तुतिकरना—यही सत्तासी में का आशय है ॥ २९ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश का रज सत्त्व तम इन गुणों से पार्थक्यभाव दिखाना यही अट्ठासी में का प्रयोजन है। शेषशायी भगवान के सकाश से मरेहुए ब्राह्मण के पुत्र का लाना—यही नवासीमेंका तत्त्व है उपसंहार अर्थात् दशमस्कन्ध की समाप्ति के होनेपर फिर कृष्ण लीला वर्णन है—यही नव्वे का तात्पर्य है। यही उन्तालीस अध्यायों में उत्तरार्द्ध की समाप्तिहुई अर्थात् एक २ चरण से एक २ अध्याय का निर्णय वोपदेव जी महाराज ने किया है ॥

दोहा ॥

श्री नारायणदास जी सारस्वत गण रास ।
तिनकेहिसुतहरिचरणरत वैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
दशमस्कन्धसमाप्तलखि बुधजनपावहिंहर्ष ॥

(संस्कृतार्थः) भीमात् भीमसेनात् जरासन्धस्य मागधस्य वधः—हरिः जरासन्धं भीमेन अघातयदित्यर्थः। इति द्विसप्ततितमार्थः ॥ अर्जुनादिभिः तद्द्वारेत्यर्थः विजयः दिग्दिगन्तस्य जयो वर्णित इतिभावः। इति त्रिसप्ततितमार्थः। यज्ञे राजसूयाख्ये शिशुपालस्य चैद्यस्य वधः अग्रपूजा प्रसंगेन कृष्णादित्यर्थः ॥ इति चतुः सप्ततितमार्थः। दुर्योधनस्य पराभवः तिरस्कारः यज्ञे इति शपः—शालायांमले स्थलभ्रमात् स्थलेचजलभ्रमात् मानभंग इत्यर्थः इति पञ्चसप्ततितमार्थः ॥ ॥ २६ ॥ यदुभिः सह शाल्वस्य युद्धम्— । इति षट्सप्ततितमार्थः ॥ हरिणा कृष्णेन शाल्वस्य वधः कृतः इति सप्तसप्ततितमार्थः ॥ दन्तवक्त्रस्य हरिणा वधः सूतान्तः सूतस्य वधस्तु बलदेवेन

एकस्मिन्नेवाध्याये इत्यर्थः इत्यष्टसप्ततितमार्थः ॥ बल्वलो दैत्यविशेषः तस्य अन्तो वधः सीरम् हलः अस्यास्तीति सीरी तेन सीरिणा बलदेवेनेत्यर्थः—इत्यष्टसप्ततितमार्थः ॥ २७ ॥ श्रीदामा सुदामा तस्मात् कृष्णस्य संजल्पः—कृष्णः गृहागतं श्रीदामानं संपूज्य मुदा गुरुवास कथां समपृच्छत् इति भावः श्रीदामेति नाममूलेऽप्रयुक्तमपि " श्रीदामरङ्कभक्तार्थभूम्यानीतेन्द्रवैभवः ,, इति पद्मपुराणसहस्रनाम्नि दृष्टेह प्रयुक्तम् इत्यशीतितमार्थः॥श्रीदाम्नः—सम्पत् सम्पत्तिः अद्भुता आश्चर्यकारिणी कृष्णेनदत्तत्यर्थः—कृष्णः सख्युः पृथुकतण्डुलान् अगृह्णा तदाश्रमे इन्द्रदुर्लभां श्रियं विराचितवान् इति भावः इत्येकाशीतितमार्थः सुहृदो यदुकुरुनन्दादयः तैः सह संगः कुरुक्षेत्रे सूर्यग्रहण इति शेषः इति द्व्यशीतितमार्थः कृष्णा द्रौपदी तस्यै रुक्मिण्यादिभिः उद्वाहाभिवर्णनम्—स्वस्वविवाहरीतिकथनमित्यर्थः। इति त्र्यशीतितमार्थः ॥ २८ ॥ वसुदेवस्य यज्ञःध्वःति चकारान्नन्दादिप्रस्थापनम् इति चतुरधिकाशीतितमार्थः। मृतपुत्राणां देवक्याः प्रदर्शनमितिणिजन्तम् इति पञ्चाशीतितमार्थः श्रुतदेवस्य च आतिथ्यं सत्कारः चकारात् जनकस्य चातिथ्यमर्जुनेन सुभद्राहरण मिति ज्ञेयम् इति षडशीतितमार्थः।नारायण नारद वादतः वेदैः स्तुतिः निरूपणम् निर्गुण सगुणतयेत्यर्थः इति सप्ताशीतितमार्थः ॥ २९ ॥ देवत्रयस्य विष्णुब्रह्मरुद्र रूपस्य॥ त्रिभागः सत्वादिगुणैरित्यर्थः इत्यष्टाशीतितमार्थः। द्विजपुत्रस्य मृतस्येतिशेषः हृतिरानयनम् शेषशायिभगवच्छकासात् इत्यर्थः इति नवाशीतितमार्थः कृष्णकीर्त्याः उपसंहारः स्कन्धसमाप्त्यवसरे पुनः समासतः कृष्णलीलाप्रोक्तत्यर्थः इति नवतितमार्थः समासमुत्तरार्द्धस्य इदं द्वारकाकृतं ऊनचत्वारिंशता तत्संख्यकैरध्यायैरित्यर्थः प्रोक्तं वर्णितम् कथंभूतैरध्यायैः पादवर्णितैः प्रत्येकमध्यायम् प्रत्येकचरणेन निबद्धमित्यर्थः ॥ ३० ॥

इति दशमस्कन्धः ॥

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्यो द्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेन व्याकारि टीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
तस्यां स्कन्धो निरोधेन च सह दशमः स्कन्धमुख्यो व्यतीतः ।१०।



इति श्रीमहामहोपाध्यायवोपदेवकृतायां हरिलीलायां सारस्वतवंशोद्भव श्रीमन्नारायणसूनुवैद्यनाथकृतकृष्णलीलामृताख्यटीकायां दशमः स्कन्धः समाप्तः ॥ १० ॥

अथ एकादशस्कन्ध प्रारम्भः

(मू०) मुक्तिरेकादशस्कन्धेऽध्यायैस्त्रिंशतोदिता ॥
तत्र कर्मज्ञाननिष्ठाभेदात्प्रकरणद्वयम् ॥ १ ॥
पञ्चाध्यायास्तयोराद्ये तत्राद्ये युगपत्क्षय: ॥
विष्णुगुप्ते यदुकुले विप्रशापाद्विरक्तये ॥ २ ॥
द्वौ चतुष्टयमेकौ द्वौ प्रश्नाः शेषेषु सोत्तराः ॥
ज्ञातुं भागवतान् धर्मान् पुंसां मायां तदत्ययम् ॥ ३ ॥
ब्रह्म कर्मावतारांलिमभक्ताशिं युगास्थितिम् ॥
नव प्रश्नान्निमिश्चक्रे तानाचख्युर्नवर्षभा: ॥ ४ ॥

(भावार्थ) इसप्रकार दशमस्कन्धके अर्थको दिखाकर अब एकादशस्कन्ध का प्रयोजन कहते हैं। इस एकादश स्कन्ध में तीस ३० अध्यायों से मुक्तिका निरूपण कियाहै। मुक्तिका लक्षण-दशमस्कन्ध में कहचुके हैं। इसकारण इस एकादशस्कन्ध में पुनरुक्ति दोषके भय से फिर मुक्तिका लक्षण नहीं कहा। अब प्रकरणोंके भेदका निरूपण करते हैं—कर्म निष्ठारूप मुक्तिका पहिला भेदहै और ज्ञान निष्ठारूप भेद दूसरा जानना। इस मुक्तिमें अन्तःकरण शुद्धिद्वारा कर्म को उपकारकताहै और ज्ञानको तौ साक्षातही उपकारकता जाननी। इसमें दो श्रुतियोंका दृष्टांत देते हैं जैसे "काशीमरणान्मुक्तिः" और "ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः" पहिली श्रुतिसे यही सिद्धहोताहै कि जब पुरुष वा स्त्री काशीजीमें मरणको प्राप्त होगा फिर उस शुभस्थान के मरने के पुण्य से श्रेष्ठकुल में जन्मकर कल्याणकारक कर्म करेगा तौ दूसरे जन्म में मुक्तिहोगी यही परम्परासे मुक्ति होना है। और दूसरी श्रुति के अनुसार ज्ञान होनेसेही इसही जन्म में साक्षात् मुक्ति होसक्ती है इसमें दूसरे जन्म लेनेका कुछभी प्रयोजन नहीं इसीप्रकार यहांभी कर्म और ज्ञानद्वारा परम्परा और साक्षात् मुक्ति जान लेना ॥ इसप्रकार मोक्षका साधन दोप्रकार से होनेपर इस स्कन्ध में दोही प्रकरण जान लेने ॥ १ ॥ अब कर्म निष्ठा प्रकरणकी विवेचना करतेहैं—कर्म और ज्ञान निष्ठा प्रकरण में पहिला कर्म निष्ठा प्रकरणहै इस के पांच अध्यायहैं। उन पांच अध्यायों में पहिलेअध्याय का अर्थ कहते हैं—गोवर्द्धन पर्वत आदिके उठानेसे श्रीकृष्णजीने यदुकुलकी अने

क विपत्तियोंसे रक्षाकी परन्तु तीर्थयात्रा के मिषसे आयेहुए विश्वामित्रआदि मुनियों के आगे जाम्ववती के पुत्र साम्व के पेट पर रुई आदि लपेट स्त्री कासा भेषधार सब यादवों नें पूँछा कि इस गर्भवती स्त्री के क्या सन्तान होगी । सर्वज्ञ होने से उस कपट से क्रोधित हुए मुनियों नें शाप दिया कि तुम्हारे कुलका नाश करने वाला इसके पेट में से एक मूसल उत्पन्न होगा इसी बहाने से यदु कुल नष्ट हुआ कौन ऐसा इस पृथ्वी पर मनुष्य होगा जो यदु कुल का क्षय सुन और संसार को असार जान विरक्त नहोगा । इसही को यौगपद्य (एक साथ) क्षय कहतेहैं और क्रम से क्षय तौ तीसवें अध्याय में वर्णन किया है यही प्रथम अध्याय का अर्थ हुआ ॥ २ ॥ इस प्रकार प्रथम अध्याय के अर्थ का निरूपण कर बाकी के चारों अध्यायों का वर्णन करते हैं । दो प्रश्न और दो उनके उत्तर यह द्वितीय अध्याय में निरूपण किये हैं ॥ चार प्रश्न और उनके चार उत्तर यही तृतीय अ. ध्यायका अर्थ है ॥ एक प्रश्न और एक उसका उत्तर यही चतुर्थ अध्यायका अर्थ है । दोप्रश्न और दो उत्तर यही पञ्चम अध्यायका अर्थ है । अतएव..द्वितीय तृतीय चतुर्थ और पंचम इन चार अध्यायोंमें सबमिलकर नव प्रश्न और नव (नौ) उत्तर होतेहैं । "ज्ञातुं"इसपदका सम्पूर्ण द्वितीयान्त पदोंके साथ सम्बन्ध है और"निमिश्चक्रे,, इस वाक्य के साथ सब द्वितीयान्त पदोंका अन्वय होताहै । दूसरा जिसका विदेह नाम है ऐसे निमि राजा के यज्ञ में यदृच्छा से आये हुए नव मुनियों से राजाने नव (नौ) प्रश्न किये । वह कौन से नव मुनि हैं उनको दिखाते हैं--यथा—कवि १ हरि २ अन्तरिक्ष ३ प्रबुद्ध ४ पिप्पलायन ५ आविर्होत्र६ द्रुमिल ७ चमस ८ करभाजन कौन २ से नौ प्रश्न राजा निमि ने उन मुनियों से किये हैं उनका निरूपण करते हैं" कौन२ भागवत धर्महैं ? उनको कहो " यह राजा निमिका कवि नामक मुनि से प्रथम प्रश्नहै । " कौन२ भगवत भक्त पुरुष हैं उनका वर्णन करो " यह राजा निमिका हरि संज्ञक मुनि से द्वितीय प्रश्न है। " माया क्या वस्तुहै मैं उस माया के जानने की इच्छा करता हूं यह राजा निमि का अन्तरिक्ष मुनि से तृतीय प्रश्न है । "·स्थूल बुद्धि पुरुष इस दुस्तर मायाको किसप्रकार सुख से तर सकते हैं यह राजा निमि का प्रबुद्ध मुनि से चतुर्थ प्रश्न है । हे भगवन् ? ब्रह्म कौन है और उस ब्रह्म का क्या स्वरूप है यह आप कहो ,, यह राजा निमि का पिप्पलायन मुनि से पञ्चम प्रश्न है । " कर्म क्या वस्तु है इस मेरे संशय को दूर करो ,, यह राजा निमि का आविर्होत्र मुनि से षष्ठ प्रश्न है । " किस को अवतार कहते हैं और वेह क्यों अवतार लेते हैं ,, यह राजा निमि का द्रुमिल

मुनि से सप्तम प्रश्न है । "भक्ति हीन पुरुषों की कैसे सद्गति हो" यह राजा निमि का चमस मुनि से अष्टम प्रश्न है । "किस २ युग का क्या २ धर्म है और गृहस्थी पुरुष किस २ धर्मों से तरें,, यह राजा निमि का करभाजन मुनि से नवम प्रश्न है ॥ ३ ॥ ४ ॥

(संस्कृतार्थः) एवं दशमस्कन्धार्थं प्रदर्श्यैकादशस्कन्धार्थं प्रदर्श्यते मुक्तिरित्यादिना । (एकादशस्कन्धे) तन्नामके स्कन्धे (मुक्तिः) मोक्षः आत्यन्तिकमिति (तथा (उदिता) कथिता मुक्तिलक्षणं तु दशमे प्रतिपादितमेवातः पुनरुक्तिभयात्तोक्तमिति ज्ञेयम् इदानीं प्रकरणभेदमाह तत्रेति (तत्र मुक्तौ (कर्मज्ञाननिष्ठाभेदात्) कर्मनिष्ठामुक्तिरेका ज्ञाननिष्ठापरा, तत्रान्तःकरणशुद्धिद्वारा कर्मणःपारम्पर्येणकारकत्वम् ज्ञानस्य तु साक्षाद्विमोचकत्वम् यथा काशीमरणान्मुक्तिरथ च ज्ञानान्मुक्तिरित्यत्र श्रुतिद्वये आद्यं परम्पराकारकं साक्षात्कारकं च प्रत्यक्षत्वेन दृश्यत एव तद्वदत्रापीति ध्येयम् । ज्ञानादेव तु कैवल्यं प्राप्यते येन मुच्यते इत्युक्तत्वात् (प्रकरणद्वयम्) इति पूर्वोक्तप्रकारेण मोक्षस्य भेदद्वयं ज्ञेयम् ॥ १ ॥ अधुना कर्मनिष्ठाप्रकरणं विविच्यते (तयोः) कर्मज्ञाननिष्ठयोः (आद्यम्) कर्मनिष्ठाप्रकरणम् (पञ्चाध्यायात्मकः) पञ्चाध्यायमुक्तमस्ति । अथ प्रथमाध्यायार्थमुच्यते (तत्र) पंचसु अध्यायेषु (आद्ये) प्रथमाध्याये (विष्णुगुप्ते) कृष्णेन गोवर्द्धनोद्धारणादिभिरनेकविधाभिर्लीलाभिः रक्षिते यदुकुले) यदूनां वंशस्य विप्रशापात्) विप्राणां तीर्थयात्रागिपिण्डारकतीर्थे विश्वामित्रादीनां शापात् मौसलव्याजेन (मुखरस्य) योगपद्येन नाशः (निरूप्यते) अस्यैवं वैराग्यपरत्वमेवेति को हि नाम महाभक्तानां यदुवंशिनां वंशे शापमात्रादेव क्षणेन क्षीणतामापन्नेऽस्मिन्नसारे संसारे न विरज्येत । अत्र क्षयं योगस्य कृतक्षयस्तु विशे इति प्रथमाध्यायार्थः ॥ २ ॥ एवं प्रथमाध्यायार्थं विधाय द्वितीयाध्यायस्य तत्त्वार्थं प्रकटयते द्वावित्यादिना । (द्वौ) द्वौ सोत्तरप्रश्नौ द्वितीये इति द्वितीयाध्यायप्रयोजनम् । (चतुष्टयम्) चत्वारः सोत्तराः प्रश्नास्तृतीये इति तृतीयाध्यायार्थः (एकः) एकः प्रश्नः सोत्तरश्चतुर्थे इति चतुर्थाध्यायाशयः । (द्वौ) द्वौ प्रश्नौ सोत्तरौ पंचमे इति पंचमाध्यायतात्पर्यम् । (तेषु) चतुर्षु द्वितीयाध्याये तृतीयाध्याये चतुर्थाध्याये पंचमाध्याये इति भावः (सोत्तराः)उत्तरैः सह वर्तमानाः (प्रश्नाः) नव एवं नव प्रश्नाः उत्तराणि च नव स्युरितिविशदार्थः । तानेवाह ज्ञातुमिति अत्र ज्ञातुमित्यस्य द्वितीयान्तैः पदैः सह सम्बन्धः । निमिश्चक्रे इत्यनेन साकमन्वयः । (निमिः) नृपो विदेहापरनामा स्वयज्ञे यदृच्छयाऽऽगतान् (नव) आर्षभान् नवसंख्याकान् ऋषभवंशजान् मुनीन् के च तानाह—कविः १ हरिः २ अंतरिक्ष- ३ प्रबुद्धः ४ पिप्पलायनः ५ आविर्होत्रः ६ द्रुमिलः ७ चमसः ८ करभाजनः ९ । (नव) प्रश्नान् (चक्रे) कृतवान् ते च (नव) आर्षभाः पूर्वोक्ताः तानि नव उत्तराणि (आचख्युः) कथितवन्त इत्यर्थः । के च नव प्रश्नाः तानाह (भागवतान् धर्मान्) के भागवता धर्मास्तान् ज्ञातुं निमिः प्रथमं प्रश्नं चक्रे भागवतान् धर्मान् ब्रूतेति निमिः कविं प्रत्यूचे इति भावः ॥ (भागवतान् पुंसः) के भगवद्भक्ताः पुरुषाः तान् ज्ञातुं निमिः द्वितीयं प्रश्नं चक्रे । 'भागवतान् पुरुषान् ब्रूतेति निमिर्हरिं प्रत्युवाचेत्याशयः ॥ (मायां) का माया तां ज्ञातुं निमिः तृतीय प्रश्नं चक्रे (तदत्ययं) तस्या मायाया अत्यय नाश कारणं माया वेदितु मिच्छामीति निमिः अन्तरिक्ष प्रतिजगादेतिविशदार्थः । किं ? तं ज्ञातुं निमिश्चतुर्थं प्रश्नं चक्रे स्थूलधियः एतां दुस्तरां मायां कथं सुखेन तरन्तीति तदुच्यतामिति निमिः प्रबुद्धं

किं ! तं ज्ञातुं निमिश्चतुर्थं प्रश्नं चक्रे स्थूलधियः एतां दुस्तरां मायां कथं सुखेन तरन्तीति तदुच्यतामिति निमिः प्रबुद्धं कथयामासेति विशदार्थः (ब्रह्म) किं ब्रह्म तद् ज्ञातुं निमिः पंचमं प्रश्नं चक्रे किं ब्रह्मणः स्वरूपं तदस्मान् वक्तुमर्हसीति निमिः पिप्पलायनं बभाषेति स्वच्छार्थः (कर्म) किं कर्म तद् ज्ञातुं निमिः षष्ठ प्रश्नं चक्रे अस्मान् कर्मयोगं वदति निमिः आविर्होत्रं बभाणेति निष्कृष्टार्थः (अवतारानिम्) अवताराणामालिं पंक्ति विज्ञातुं निमिः सप्तमं प्रश्नं द्रुमिलमब्रवीत् । (अभक्तानिम्) अभक्तः किं फलमाप्नोतीति विज्ञातुं निमिः अष्टमं प्रश्नं चक्रे भक्तिहीनानां का निष्ठेति निमिः चमसं प्रति वदतिस्मेत्याशयः। (युगस्थितिम्) कोऽयं युगानां चतुर्णां धर्मः तं ज्ञातुं करभाजनं प्रति निमिः नवमं प्रश्नं चक्रे ॥ ३ ॥ ४ ॥

(मू०) सर्वकर्मार्पणं विष्णौ रागद्वेषविवर्जितः ॥
मिथ्यार्थदर्शनासक्तिर्विपर्ययविमर्शनम् ॥ ५ ॥
सर्वत्रानुगतं शुद्धं वेदतन्त्राच्युतार्चनम् ॥
पुरुषादेवपुर्लीला कालचक्रपरिभ्रमः ॥ ६ ॥
ध्यानं यागोर्चनं स्तोत्रमुत्तराणि नवाब्धिभिः ॥
धर्मे भागवतेऽभ्यासः पुंभिर्भागवतैः सह ॥ ७ ॥
जितमायस्य धामस्वमारोढुं भूमिकोत्तरा ॥ ८ ॥

(भाषार्थ) अबक्रमशः चारों अध्यायों के चरणों द्वारा अर्थ को और नव प्रश्नों के उत्तरों कोभी निरुपण करते हैं । जोकुछ कर्म कियेहैं और जोकुछ करैगा तथा जोकुछ कर रहा है वेह सब श्रीकृष्णके अर्पण करने चाहिये इसही बातको गीताके प्रमाणसे सिद्ध करै हैं श्रीकृष्ण महाराज अर्जुन से कहै हैं कि हे अर्जुन ? जोकुछ तू करता है खाता है होमकरता है देता है तथा तपस्या करताहै वह सब मेरेही अर्पण करदे " यही भागवत धर्म है यह राजा निमिके पहिले प्रश्नका उत्तर श्रीकविनामक मुनिने दिया है ऐसा जानना । जोराग और द्वेषसे रहित हैं वही भागवत पुरुष हैं यही निमिके दूसरे प्रश्नका उत्तर हरिसंज्ञक मुनिने कहा है । असत् (झूठे) जो मित्रपुत्रभृत्य कलत्र आदि हैं इनमें जो सत् (सची) बुद्धि करनी है वही माया है यह निमिके तीसरे प्रश्नका उत्तर अन्तरिक्षजी ने प्रतिपादन किया है ॥ जोकुछ यह संसारमें वस्तुमात्र दीखरही है वह सब असत्है और आत्मातो सत् है यही विपर्ययहै इसक्रम जो स्थिर बुद्धि पूर्वक विचार करना है उसको ही मायाका अत्यय (नाश) कहते हैं यह निमिके चतुर्थ प्रश्नका उत्तर प्रबुद्धजीने कथन किया है ॥ ५ ॥ जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में जो एकसाही व्याप्तहोरहा है वही शुद्ध ब्रह्म है यह निमिके पञ्चम प्रश्नका उत्तर पिप्पलायन जीने वर्णन किया है चारों वेद और नारद पञ्चरात्रको आदिलेकर जोकुछ कर्म काण्ड है उनकेद्वारा

षोडशोपचार आदि श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करना यह निमिके छटे प्रश्नका उत्तर आविर्होत्रजी महाराज ने दिया है ॥ मत्स्य कूर्म नृसिंह वामन राम कृष्ण आदि अनेक रूपधर कर परमात्माने भक्तजनों के उद्धारार्थ गोवर्द्धन का उठाना इत्यादि अनेकलीला करीं यह निमिके सप्तम प्रश्न का उत्तर द्रुमिल जी ने प्रतिपादन किया है। जो कोई परमेश्वर की भक्ति नहीं करते वह इस आवागमन रूपी काल के विकराल चक्र में भ्रमण करते २ कभीभी जन्म मरणादि से शान्ति को नहीं प्राप्त होते इस कारण ईश्वर की पूजा करनी आवश्यक है यह निमि के अष्टम प्रश्न का उत्तर चमस मुनि ने निरूपण किया है। ६। सत्ययुग में परमात्मा का ध्यान करना, द्वापर में यज्ञ, त्रेता में पूजन और इस कलियुग में तो "कलौ केवल कीर्त्तनात्" केवल स्तोत्र आदि का पाठ करना कहा है यही चारों युगों की स्थिति है यह निमि के नवम प्रश्न का उत्तर करभाजन ऋषि ने दिया है। इस प्रकार पूर्वोक्त नव प्रश्नों का उत्तर नव चरणों द्वारा नव मुनियों ने दिया है यह इस एक २ चरण से जानना॥ (प्रश्न) क्यों यह नव ही प्रश्नों का निरूपण किया अर्थात् न्यून और अधिक क्यों नहीं कहे। यद्यपि नव प्रश्न कहे भी थे परन्तु इनका चार अध्ययों में ही क्यों वर्णन किया (उत्तर) जैसे जो कोई मनुष्य अपने रहने का चार दर्जे वाला (चौमंजला) स्थान (मकान) वनाता है तो उसके चढने को सोपान (पहुरी) भी अवश्य ही वनाता है क्योंकि विना सीढियों के मकान पर किसतरह चढ़सक्ता है तद्वत् (उसी प्रकार) इस मुक्ति रूपी स्थानके चढने में यह चार अध्याय रूपी भूमिका वनाई है इन भूमिकाओं के क्रमशः अभ्यास करने पर मनुष्य की सद्गति होसक्ती है—अव उन चार भूमिकाओं में से पहिली भूमिका को दिखाते है यथा—दुस्तर माया को तरकर भगवत् भक्तों के साथ भागवत् धर्मों का सेवन करनाही प्रथम भूमिका है यह भूमिका चारों भूमिकाओं में अत्युत्तम है क्योंकि इसहीके करने से अवश्य ही मुक्ति होजाती है। जिस से भ्रष्ट होकर इस संसार में यह मनुष्य गिरा है वही अपना धाम है परन्तु उस धामसे च्युत न होना ही मुक्ति है। गीता में कहा भी है "यद्गत्वा न निवर्त्तते तद्धाम परमं मम" अर्थात् जिसको प्राप्त होकर मनुष्य फिर नहीं लौटते वही मेरा धाम है यह श्रीकृष्ण ने कहा है॥ ७॥ ८॥

(संस्कृतार्थः)—अधुना क्रमप्राप्तश्चरणैरध्यायचतुष्टयस्यैवार्थमथ च नव प्रश्नानामुत्तराण्यपदद्दा इ सर्वेति (विष्णौ) श्रीकृष्णे (सर्व कर्माणिणम्) यानि कर्माणिचक्रुः करिष्यन्ति कुर्वन्ति च जना नीति सर्वाणि भगवदर्पणं चक्रुः किलित मिदं गीता शास्त्रे "यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि

यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् " इति अयमेव भागवतो धर्मः इति निमेः प्रथम प्रश्नद्वयोत्तरं कविना दत्तमिति ज्ञेयम् ॥ (रागद्वेषविवर्जितः) रागश्च द्वेषश्च रागद्वेषौ तयोर्विशेषेण वर्जितः स एव भागवतः पुमान् इति निमेर्द्वितीय प्रश्नस्योत्तरं हरिणा प्रोक्तमिति ध्येयम् । (मिथ्यार्थदर्शनासक्तिः) मिथ्याभूतस्यार्थ दर्शने आसक्तिर्यया साम्बुगायेत्यर्थः इति निमेस्तृतीय प्रश्नद्वयोत्तर मन्तरिक्षेण प्रतिपादितमिति बोध्यम् । (विपर्ययविमर्शनम्) यत्किञ्चिज्जगति दृश्यते वस्तु तदसत् आत्मा तु सदिति विपर्ययः तस्य विमर्शनं स्वयुक्त्या स्थिरीकरणं स एव मायाया अत्ययः इति। निमेश्चतुर्थ प्रश्नस्योत्तरं प्रबुद्धेन कथितमिति मन्तव्यम् ॥ ५ ॥ (सर्वत्रानुगतं शुद्धम्) सर्वत्र जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तिषु तिसृषु अवस्थासु यत् अनुस्यूतं व्याप्तमित्यर्थः शुद्धं कर्तृत्वाद्यस्पृष्ट ब्रह्म इति निमेः पंचमप्रश्नस्योत्तरमिदं पिप्पलायनेन प्रोक्तमित्यवगन्तव्यम् । (वेदतन्त्राच्युतार्चनम्) वेदाश्चत्वारः तन्त्रं नारदपंचरात्रादयः तैः अच्युतस्य श्रीकृष्णस्यार्चनं षोडशोपचारपूजादि कर्म इति निमेः षष्ठप्रश्नस्योत्तरंमाविर्होत्रेण कथितमिति विवेचनीयम् । (पुरुषादि वपुर्लीला) पुरुषादिवपुषा आदिपदेन मत्स्य कूर्म नृसिंहादीनां बोधः पुरुषाद्यवतारं धृत्वा राम. कृष्णादिभिः भक्तजनोद्धाराय गोवर्द्धनोधारणादिर्लीला क्रियते इतिनिमेः सप्तम प्रश्नस्योत्तरं द्रुमिलेन जल्पितमितिज्ञेयम् ॥ (कालचक्रपरिभ्रमः) अभक्तः कालचक्रे भ्रमति न तु कदाचिज्जन्म मरणादिभिः शान्ति प्राप्नोति इत्येव तस्य फलम् पूजाविधेर्नवमस्योद्धार इत्यर्थः इति निमेरष्टमप्रश्नस्योत्तरं चमसमुनिनोक्त मिति निश्चेतव्यम् ॥ ६ ॥ (ध्यान यागोऽर्चनं स्तोत्रम्)-ध्यानं सत्ययुगे, यागः द्वापरे, अर्चनं त्रेता युगे, स्तोत्रम् कलियुगे, इतिक्रमात् चतुर्षु युगेषु स्थितिरिति निमेर्नवमप्रश्नस्योत्तरं करभाजनेन भणितमिति बोध्यम् ।: (उत्तराणि नवांघ्रिभिः) एवं नवप्रश्नानां उत्तराण्यपि नवभिः अंघ्रिभिश्चरणैर्दत्तमिति ज्ञेयम् ननु किमित्येते नवैव प्रश्नाः किमित्यमीषांचाध्याय चतुष्टयेन वर्णनमिति तत्र भूमिकाचतुष्टयप्रकारणोत्तरमाति धर्म इत्यादि एषा पुंसः (स्वधाम आरोढुम्) मुक्तिमार्गे गमनार्थं (उत्तराभूमिका) अत्युत्तमं सोपानं यत्पूर्वभूमिकाभ्यासबलात् (जितमायस्य) दुस्तरां मायां जितवत इत्यर्थः सतः (भगवतः गुणैःसह) भगवद्भक्तैः पुरुषैः साकं (भागवते धर्मे अभ्यासः) प्रतिदिनं भागवतधर्मस्यासक्तिः। भूमिकायाश्चास्या मुक्तावतिसन्निकृष्टत्वात् अत्युत्तमत्वम् यस्याश्च्युतो जगति निपतितस्तत्स्वं धामेतिभावः ॥ ७ ॥ ८ ॥

(मू०) मायाजयोऽथराभक्तिज्ञानकर्मसमुच्चयात् ।
अवतारकथातोतः काम्यत्यागेशकीर्तने ॥ ९ ॥

(भावार्थ) अत्युत्तमा १ उत्तमा २ मध्यमा ३ हीना ४ यह चार भूमिकाहैं इनमें से पहिली अत्युत्तमा भूमिका में "ज्ञातुंभागवतान्धर्मान्पुंसः,, इन दो प्रश्नोंका उपयोग होता है ॥ तदनन्तर दूसरी उत्तमा भूमिका का वर्णन करते हैं—भक्ति, ज्ञान, और कर्मके समुच्चय से मायाका जय होताहै इस भूमिका में चार प्रश्नोंका उपयोगहै अर्थात् "मायां,तदत्ययं,ब्रह्म,कर्म,, यह चार प्रश्न इस में आजाते हैं " मायाँ जय ,, इस पदसे माया का प्रथम प्रश्नहै " भक्ति,, इस पद से माया के अत्यय का प्रश्न होता है। "ज्ञान" इस पदसे ब्रह्म स्वरूप के प्रश्नका उपयोग है। और "कर्म,, पदसे कर्म ही का ग्रहण होता है ॥ अबतीसरी मध्यम भूमिका का निरूपण करते हैं

इस भूमिका में अवतार के प्रयोजन के प्रतिपादन द्वारा "अवतारांश्च,, इस सप्तम प्रश्नका उपयोग जानना। यह दूसरी उत्तमा भूमिका से कुछ कम है इस ही से इस को उससे अधम मानाहै ॥ अब चौथी हीनाधिकारक भूमिका को कहते हैं—काम्य कर्म का त्याग और ईशकीर्तन यह दो प्रश्न इसमें संघटितहोते हैं अर्थात् "अधर्मादीनां युगस्थितिम्" इन दो प्रश्नों का कथन है। ध्यान योग अर्चन यह सब ईशकीर्तन में ही आजाते हैं इस लिये इनका प्रथक् कथन नहीं किया ॥ ९ ॥

(संस्कृतार्थः) पूर्वोक्तायां भूमिकायामवतारप्रयोजनप्रश्नोपयोगः [illegible] ॥ इदानीमुत्तमां भूमिकामाह (भक्तिज्ञानकर्मस्वरूपमाह) भक्तिर्ज्ञानं न कर्म न [illegible] सद्गुरुः [illegible] यत्रैवं परिनिष्ठितो [illegible] तस्मात् (मायाजयः) मायायाः [illegible] अथ (अधरा) [illegible] पूर्वोक्तः [illegible] द्वितीयायामल्पाधुनत्वाया भूमिकायां मायादिप्रश्नानुरूपप्रयोगः मायाजयः इदमेव मायाप्रश्नः मायायां तु जयाय पृष्टा ॥ [illegible] वेतिभावः तज्जये कारणम्। [illegible] यथा "इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया। नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तरामिति ,, [illegible] । अथेदानीं तृतीयां मध्यमभूमिकामाह (अवतार कथनः) अवतारप्रयोजनप्रतिपादनेनात्रत्यसप्तमप्रश्नोपयोगः (अतः) [illegible] । अथ चतुर्थीं हीनामाह (काम्यत्यागेशकीर्तने) [illegible] पूर्वेणान्वयः। [illegible] एव परम्। ध्यानयोगोऽर्चनाद्यन्तु ईशकीर्तन [illegible] ॥ ९ ॥

(मू०) इति भूमिश्चतसृभिरध्यायानां चतुष्टयम्।
वसुदेवाय जायन्तेयोपाख्यानमिदं जगौ ॥
मुमुक्षवे द्वारवत्यां नारदस्तद्गृहागतः ॥ १० ॥
विष्णोरभ्यर्चना देवैः स्वर्वेसत्युद्भवेन च।
स्वं धाम नयमित्यूचे येषु संवादकारणम् ॥ ११ ॥

(भावार्थ) इस प्रकार चार अध्याय (दूसरा तीसरा चौथा और पांचवां) चार भूमिका द्वारा प्रतिपादन किये इन चारों भूमिकाओं में नव प्रश्नोंका समावेश जानना। कर्म निष्ठा प्रकरण क्या है इसका वर्णन करते हैं "हे महाभाग ? तू इन भागवत धर्मो को सुन और कर जब श्रद्धायुक्त निःसंग होकर सुनैगा तौ परम पद को प्राप्त होगा। यही कर्म निष्ठता है इसीलिये वसुदेव जी से पूँछेहुए नारद जी महाराज जयन्ति पुत्र नव योगियों के संवाद द्वारा इस वृत्तान्त को कहने लगे। वसुदेव जीकी मोक्ष मार्ग सुनने की इच्छा थीही इतने ही में ना-

रद जी महाराज यदृच्छा से रमते २ द्वारकापुरी में आ निकले । जिस कामको मनुष्य करना चांहता है यदि उस ही के कोई चिन्ह दीखने लगें तौ जानलेना कि अवश्य कार्य सिद्ध होगा इसी से वसुदेव जी के मुक्ति की इच्छा करने पर नारद जी का आगमन जानना ॥ १० ॥ इस प्रकार यह पाँच अध्याय समाप्तहुए अब ज्ञान निष्ठा प्रकरण के कथन करने के लिये छटे अध्याय का निरूपण करैं हैं ब्रह्मादि देवताओं ने आकर भगवान् की स्तुतिकी हे भगवन् ? आपने सब पृथ्वी के कार्य सिद्ध करदिये अब स्वर्ग को चलिये ऐसी प्रार्थना करने पर उद्धव जी भी बोले भगवन् ? यदि आप स्वर्ग को जाऔ तौ मुझे अवश्य अपने धाम को ले चलिये क्योंकि मैं तुम्हारा अनुचर हूं । यह सुन श्रीकृष्ण जी ने मन में विचारा कि यदि मैं अपने साथ उद्धव को लेजाऊं तौ कौन फिर इस पृथ्वीपर भगवत धर्म का प्रचार करैगा इसीलिये चलतेसमय समुझाय बुझाय श्री उद्धव जी को भगवानने तत्वोपदेश किया यद्यपि उद्धव जी महाराज स्वयं भी वडे ज्ञानी थे तथापि विना गुरू के उपदेश करे भली भांति ज्ञान नहीं होसकता इस कारण श्रीकृष्ण जी ने गुरू बन और उद्धव जी को शिष्य बनाय उपदेश दिया । इस कथन से यह भी सिद्ध होता है कि अवश्य गुरुदीक्षा लेनी चाहियें क्योंकि गुरु के करने से ही पुरुषको सुन्दर ज्ञान होता है यह श्रुति में भी कहा है ॥ ११ ॥

(संस्कृतार्थः) एवमध्यायचतुष्टम् चतसृभिभूमिभिःप्रतिपादितम् तासुचतसृ भूमिकासु नवप्रश्नानां समावेशः । ननुकिमिदंकर्मनिष्ठाप्रकरणमितितत्राह वासुदेवायेत्याद " इत्थमेतान्महाभाग धर्मान् भागवतान् श्रुतान् । आस्थितः श्रद्धया युक्तोनिःसंगो यास्यसे परमित्युक्तत्वात् ,, अस्य कर्मनिष्ठत्वमितिभावः आयन्तेयाः जयन्तपुत्रानव योगिनइत्यर्थः अतएव (वसुदेवाय) नारदोइदं आयन्तेयोपाख्यान् नवयोगिवृत्तान्तं (जगौ) वर्णयामास । कथम्भूताय वसुदेवाय (मुमुक्षवे) मोक्षस्याभिलाषिणे क्वनारदः समाया तस्तत्राह (द्वारवत्यां) द्वारकायां कथम्भूतोनारदः (तद्गृहागतः) तत्रैववसुदेवस्यगृहे आगतः ॥ १० ॥ एवमध्यायपञ्चकमुक्त्वा ज्ञाननिष्ठाप्रकरणंकथितुं षष्ठाध्यायार्थमुच्यते (स्ववसे) भवता भगवताधरण्यांसर्वकार्यं कृतमधुनात्वं सर्गवस (इतिदेवैः) अमुनाप्रकारेण ब्रह्मादिभिः (विष्णोः) कृष्णस्य (अभ्यर्थना) प्रार्थनाकृता (उद्धवेनच) उद्धवेनापि (स्वधामसमानय) स्वस्थानंवैकुंठं मांत्वंनय इति अभ्यर्थनाकृता (संवादकारणम्) संवादःकृष्णोद्धवयोः तस्य कारणं (षष्ठे) षष्ठाध्याये (उचे) कथयामास अत्रकर्तारिलकारः । लोकस्यकल्याणार्थं पृथिव्यामेवावस्थातीमिच्छता स्वयन्तु स्वर्गमधितिष्ठता श्रीकृष्णेन यदुद्धवस्य तत्वोपदेशःकृतः तनयोःसंवादकारणमितिभावः । एतेनान्यै रपिपुरुषैः आचार्यद्वारैवोपदेशः श्रोतव्यइत्युक्तम् गुरोर्हि पासंज्ञानं वुद्धिस्थंभवति ! आचार्यवान् पुरुषोवेदेतिश्रुतिरप्यत्र मानम् ॥ ११ ॥

(मू०) चतुर्द्धा त्रीन् तथैकं द्वौद्वावेकं चैकैकं द्विधा ।
द्वौ द्विधा त्रींश्चतुर्द्वैकमेकमेकं च सोत्तरान् ।
प्रश्नान् शेषेषु हित्वान्त्यौ समादंलयदर्शनो ॥ १२ ॥

(भावार्थ)—इस प्रकार कर्म निष्ठा प्रकरण और संवादके कारण को प्रकाश कर अब ज्ञान निष्ठा प्रकरण के कहने को बाकी के अध्यायों का संग्रह कर दिखाते हैं—अन्त्यके तीस और इकत्तीस अध्यायों को छोड़ कर बाकीके सात अध्याय को आदि लेकर उन्तीस अध्याय तक अर्थात् बाईस प्रश्न और बाईस ही उत्तरों को भगिने तेईस अध्यायों में वर्णन कियाहै । इस डेढ श्लोक में धाप्रत्ययान्त अर्थात् चतुर्द्धा १ द्विधा २ द्विधा ३ चतुर्द्धा ४ इन चारोंपदों का अर्थ अध्याय होता है बाकी के जितने इस डेढ श्लोक में पद हैं वे प्रश्नके वाचक हैं अर्थात् उन से प्रश्नों की गिनती करना । धाप्रत्ययान्त शब्दों में जितने अध्याय गिनती में होते हैं उनका प्रश्न एक २ ही जानों । यहाँ प्रश्न बाईस २२ हैं तथा अध्याय २३ तेईस जानने—शेष (बाकी) स्पष्ट आशय (खुलासा हाल) चक्रके द्वारा मालूम करलेना ॥ अब शिष्यों की बुद्धि के विशद करणार्थ ही सविस्तार इस डेढ श्लोक के अर्थका निरूपण करते हैं= चार अध्याय और एक प्रश्न अर्थात् श्लोक की गिनती से तो एक—दो—तीन—चार—यह अध्याय हुए और स्कन्धस्थ अध्यायों की संख्या से तो सात—आठ—नौ—दश यह अध्याय जानने अतएव चार अध्याय हैं और उनमें एक ही प्रश्न है यह सिद्ध हुआ ॥ पुनः—प्रश्न तीन और अध्याय एकहै अर्थात् इस श्लोक संख्या से तो पञ्चम अध्याय होताहै और स्कन्धस्थ अध्यायों की संख्या से ग्यारहवाँ होता है ॥ पुनरपि— एक ही अध्याय में एक ही प्रश्न है अर्थात् श्लोकस्थ संख्या से तो छटा अध्याय होता है और स्कन्धस्थ संख्या से तो बारहवाँ गिना जाता है यही इसकासार है ॥ फिर—दो प्रश्नहैं और वह दोप्रश्न एक ही अध्याय में प्रतिपादन किये हैं अर्थात् श्लोकस्थ संख्या से तो सातवाँ अध्याय होता है और स्कन्धस्थ संख्या से तेरहवाँ यही भाव है ॥ तदनन्तर—दोप्रश्न और एक अध्याय यह दोबार आता है अर्थात् श्लोक संख्या से पहिलीबार और दूसरी बार में सातवाँ तथा अठवाँ अध्याय स्थिरहोताहै तथैव पहिलीबार और दूसरी बार दो२ प्रश्नोंकी गिनती स्कन्धस्थ संख्याद्वारा तो तेरहवाँ अध्याय गिनती में आताहै यही इसकातात्पर्यहै॥पुनरपि—जैसे दो२प्रश्न और एक२अध्याय पहिले दोबार कहा इसीप्रकार अब एक२अध्यायमें एक२ही प्रश्न हैं अर्थात् पहिली बार और दूसरीबार एक२ प्रश्न और एक२अध्यायहोनेसे श्लोकस्थ गिनतीसे नौ—और दशअध्याय होतेहैं और स्कन्धस्थ संख्यासे तो पन्द्रह और सोलहअध्याय सिद्धहोतेहैं यहइसकासारहै॥

तत्पश्चात् प्रश्न एक और अध्याय दो अर्थात् श्लोकस्थ संख्यासै तौ ग्यारह और बारह अध्याय होते हैं और स्कन्धस्थ संख्यासै तौ, सत्रह और अठारह होते हैं यही इसका तत्व है ॥ इसके उपरान्त दो प्रश्न, और उनका एक अध्याय में निरूपण अर्थात् श्लोकस्थ संख्यासै तौ तेरह, अध्याय होते हैं और स्कन्धस्थ संख्यासै उन्नीस यही इसका आशय है ॥ तदनु ॥ एक प्रश्न और दो अध्याय, अर्थात् श्लोकस्थ अध्याय गणनासै तौ चौदह और पन्द्रह अध्यायहोते हैं तथा स्कन्धस्थ संख्या से वीस और इक्कीस यही इसका सरलार्थ हुआ ॥ इस्के पीछे तीन प्रश्न और एक अध्याय हैं अर्थात् श्लोक संख्यासै सोलहवाँ और स्कन्धस्थ गणनासै वाईसवाँ होता है यही इसका स्वच्छार्थ है ॥ पुनरपि एक प्रश्न और चार अध्याय हैं अर्थात् श्लोकस्थ संख्यासै तौ सत्रह अठार उन्नीस वीस यह चार अध्याय होते हैं और स्कन्धस्थ संख्यासै तौ तेईस चौवीस पच्चीस छवीस यह अध्याय हैं यही इसका विशदार्थ है इस्केबाद तीनवार एक २ ही अध्याय है और एक २ ही प्रश्न है अर्थात् पहिली वार दूसरी वार और तीसरी वार एक २ अध्याय के होने से तीन अध्याय होते हैं इसका यही तात्पर्य है कि श्लोकस्थः संख्यासै तौ इक्कीस वाईस और तेईस यह अध्याय पूर्णहुए और स्कन्धस्थ संख्यासै तौ सत्ताईस अठाईस और उन्तीस पूरे होतेहैं आशय यह है कि वाईस २२ प्रश्न और वाईसही उत्तर तेईस अध्यायों में वर्णन किये हैं यही इस डेढ श्लोकके चक्रका का सिद्धान्त है ॥

प्रश्नोत्तराध्यायज्ञापकं चक्रम् ॥

पदविन्यासः	पदानामर्थः	पदस्थप्रश्नाध्याय न्यासः	प्रश्नसंख्या	उत्तर संख्या	प्रश्नाध्यायसंख्या	स्कन्धाध्याय संख्या
चतुर्द्धा	४	अध्यायाः	१	१	४	७—१०
त्रीन्	३	प्रश्नाः	३	३	१	११
एकम्	१	प्रश्नः	१	१	१	१२
द्वौ	२	प्रश्नौ	२	२	१	१३
द्वौ	२	प्रश्नौ	२	२	१	१४
एकम्	१	प्रश्नः	१	१	१	१५
एकम्	१	प्रश्नः	१	१	१	१६
द्विधा	२	अध्यायौ	१	१	२	१७-१८
द्वौ	२	प्रश्नौ	२	२	१	१९
द्विधा	२	अध्यायौ	१	१	२	२०-२१
त्रीन्	३	प्रश्नाः	३	३	१	२२
चतुर्द्धा	४	अध्यायाः	१	१	४	२३-२६
एकम्	१	प्रश्नः	१	१	१	२७
एकम्	१	प्रश्नः	१	१	१	२८
एकम्	१	प्रश्नः	१	१	१	२९

अब बाकी बचेहुए श्लोक की व्याख्या करते हैं तीस और इकतीस वें अध्याय में ममता और अहन्ता का लयहै इनदोनों में पहिले ममता के लयको दिखाते हैं यथा जिस समय श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान ने अपने पक्षके यादवों का नाश देखा तौ कुछभी शोच नही किया किन्तु यह संसार अनित्य है यह कह कर उपेक्षा करदी यही ममत्व का लयहै अब अहन्ताके लय को दिखाते हैं यथा मेरा देह और में एक नही हूं किन्तु दुष्टों के नाशार्थ ही इस पाँच भौतिक देहको मैंनेधार कियाथा अब यह देह त्याग देने योग्य है यह विचार श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्द कन्द ने उसी समय इस देह का त्यागकिया यह दोनो प्रसंग ज्ञान की उत्पत्तिमें कारण भूत हैं क्योंकि अन्त में ज्ञानी को इस प्रकार ही वर्ताव करना चाहिये । यह दोनो संसार के मिथ्या जलाने वाली और ज्ञानकी जनक कथा हैं इसी लिये इनको इस ज्ञान निष्ठा प्रकरण में दिखाया है अब डेढ श्लोककी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

(सँस्कृतार्थः)-एवं कर्मनिष्ठाप्रकरणं संक्षेप कथयित्वा प्रकारेदानीं ज्ञान निष्ठाप्रकरणं कथयितुं शेषाध्यायानामर्थं संगृह्णाति चतुर्दशभ्यादिपादेन । (भागवते) निवेदकविनौ (द्विधा) रचना (शेषेषु) सप्तमादिषु त्रिपंचविंशतिसंख्यकेषु (षोडशान् प्रश्नान्) एतान् उत्तरैः सह कथितानात् प्रश्नान् ऋषिरुचे इत्यन्वयः । तत्र एकः प्रश्नः सदुत्तरं नेकं तत्र (चतुर्षु) मुनिना चतुर्ष्वध्यायेषु प्रोक्तम् । एतमुत्तरत्र त्रिषु प्रश्नयान्तेषु पदेषु अध्यायानां बोधो भवते । अमुना दिव्य बुद्धि वैशद्यार्थं सविस्तरः सार्द्धश्लोकार्थः प्रकाश्यते यथा (चतुर्षु) चत्वारोऽध्यायाः श्लोकक्रमसंख्यातः प्रथमः द्वितीयः तृतीयः चतुर्थः तथा स्कन्धगणनातश्च सप्तमः अष्टमः नवमः दशमः इति सरलार्थः अतएव चत्वारोऽध्यायाः प्रश्नस्त्वेक एवेति सिद्धम् । (त्रीन्) प्रश्नान् त्रिसंख्यकान् अध्यायश्चकः श्लोकगणनातः पंचमः स्कन्धगणनातश्चैकादशेतिभावः । (तथा) तेनैव प्रकारेण (एकम्) एकमितिविभक्तिपरिणामेन एकः प्रश्नः उत्तरमध्येकम् इति बोधः अथवा क्रियासम्बन्धात् एकपदस्य कर्मतेति एकं पदं समीचीनमेव एकं प्रश्नं कथितवान् इत्यन्वयः पुंस्त्वोक्तेः पुल्लिंगे द्वितीयाया नपुंसकेच प्रथमाया एकमेव रूपं सिद्ध्यतीति नियमाभिज्ञैर्मान्य स्तदिदमनेनैव मे-वात्तरमाशयमिति निष्कृष्टार्थस्तु एकेनाध्यायेनैकः प्रश्नः प्रतिपादित इतिबोध्यः श्लोक गणनातः षष्ठोऽध्यायः स्कन्ध संख्यातश्च द्वादशेतिभावः ॥ (द्वौ) प्रश्नौ द्वौ अध्यायेनैकेन प्रतिपादितौ श्लोकस्य संख्यातः सप्तमोऽध्यायः स्कन्धस्य संख्यातश्च त्रयोदशेतिभावः ॥ (द्वौ) प्रश्नौ द्वौ एकेनाध्यायेन कथितौ श्लोकस्य संख्यातः अष्टमोऽध्यायः स्कन्धस्य गणनातश्च चतुर्दशेतितात्पर्यः ॥ (एकम्) एकःप्रश्नः अध्यायेनैकेनोक्तः श्लोकस्य संख्यातो नवमोऽध्यायः स्कन्धस्य संख्यातश्च पंचदशेति विशदार्थः ॥ (एकम्) एकःप्रश्नः एकेनैवाध्यायेन निरूपितोऽतः श्लोकस्य संख्यातो दशमोऽध्यायः स्कन्धस्य संख्यातश्च षोडशेत्याशयः । (द्विधा) द्वावध्यायौ प्रश्नश्चैकः श्लोकसंख्यातः एकादश द्वादशावध्यायौ जातौ स्कन्धसंख्यातश्च सप्तदशाष्टादशाविति तत्त्वम् ॥ (द्वौ) प्रश्नौ अध्यायेनैकेनोक्तौ श्लोकस्यसंख्यातः त्रयोदशोऽध्यायः स्कन्धस्यसंख्यातश्चैकोन विंशतिरितिभावार्थः (द्विधा) द्वावध्यायौप्रश्नश्चैकः श्लोकस्यसंख्यातः चतुर्दशपञ्चदशाध्यायौ स्कन्धस्य संख्यातश्चविंशत्येक विंशतिसंख्यकौ इतिसारः (त्रीन्) प्रश्नान्त्रिसंख्यकान् अध्यायश्चैकः श्लोकस्य

संख्यातः षोडश, स्कन्धस्थ संख्यातश्च.द्वाविंशातिसंख्यकः ॥ (चतुर्द्धा) चत्वारोऽध्यायाः प्रश्न श्लेक: श्लोकस्थसंख्यातः सप्तदशाष्टादशैकोनविंशतिविंशातिसंख्यकाः स्कन्धस्थ संख्यातश्च त्रयो· विंशतिश्चतुर्विंशतिपंचविंशतिषड्विंशतिसंख्यकाः इतिभावः । (एकम्) एकःप्रश्न एकेनैवाध्या· येन गदितः श्लोकस्थसंख्यातः एकविंशतिसंख्यकोऽध्यायः स्कन्धस्थसंख्यातश्च सप्तविंशतिरिति सारार्थः ॥ पुनः (एकम्) एकःप्रश्नः एकेनाध्यायेनोक्तः श्लोक संख्यातः द्वाविंशतिसंख्यकोऽध्या- यः स्कन्धस्थसंख्यातश्चाष्टाविंशतिरिति ॥ पुनरपि (एकम्) एकःप्रश्नः एकेनाध्यायेन प्रतिपादितः अतः श्लोक संख्यातः त्रयोविंशतिसंख्याकोऽध्यायः स्कन्धस्थ संख्यातश्चैकोनत्रिंशदध्याय अथाऽ- वशिष्टपद्यं विवेचयति—ममतेत्यादिना—ममताऽहन्तयोर्लयः प्रकाश्यते—(ममाहंलयप्रदर्शनौ) त्रिंशदेकत्रिं शत्संख्याकौ अन्त्यौ द्वावध्यायौ ममाहमोर्लयस्य प्रदर्शकौ त्रिंशे ममतायालयः, एकत्रिंशेचाहंताया· इत्यर्थः तत्र ममत्वलयं दर्शयति—सच स्वयं स्वपक्षोंस्थितयादवकुलक्षयमेवलोकयतोऽपि कृष्णस्य तदुपेक्षया ज्ञायते । अधुनाहंतायालयं प्रकाश्यते—सतु कृष्णस्य देहादित्यागात् बुध्यते । एतौच- ज्ञानशमने हेतुभूतौ अतएव ज्ञानानिष्ठा प्रकरणे प्रदर्शितावितिपूर्णः सार्द्धः श्लोकः ॥ १२ ॥

(मू०) संगत्यागउपायस्य (१) सत्संगासंगयोः (२) सताम् (३) ।
भक्ते (४) र्जीवस्य (५) विषयासक्तौदृष्टेऽपिदूषणे ॥ १३ ॥
हेतो (६) र्हंससनन्दादिसंवादस्यो (७) त्तमस्यच ॥
श्रेयः सु (८) ध्यानयोगस्य (९) सिद्धीनांच (१०) विभूतिवत् (११) ॥१४॥
वर्णाश्रमादि धर्मस्य (१२) ज्ञानादीनां (१३) यमादिवत् (१४)॥
गुणदोषापवादस्य (१५) तत्वसंख्याव्यवस्थितेः (१६) ॥१५॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञभेदस्य (१७) देहयोगवियोगयोः (१८) ॥
अभिमाननिवृत्तेश्च (१९) क्रियायोगस्य (२०) संसृतौ ॥ १६ ॥
अधिष्ठानस्य (२१) भक्तेश्च परस्याः (२२) संवुभुत्सया ॥
प्रश्नान् द्वाविंशतिं चक्रे कृष्णं प्रत्युद्धवः क्रमात् ॥ १७ ॥

(भापार्थ) अब वह कौन २ प्रश्न हैं उन २२ प्रश्नों को पाँच श्लोकों से वर्ण न करते हैं। इन वाईसों में जितने षष्ठयन्त पद हैं उन सवका पूँछने की इच्छा सै उद्धवने श्रीकृष्णजी से निम्नलिखित प्रश्न किये यह अन्वय सब जगह करना वि- भूतिवत् इत्यादि पदों में स्थित जो वति प्रत्यय है यहभी षष्टी के अर्थ को ही कह ता है अर्थात् ,, विभूतिवत् ,, का ,, विभूतीनाम् ,, ऐसापद वनकर अन्वय होताहै (संगत्यागेउपायस्य) संन्यास लक्षण जो त्याग है उसमें कौनसा उपाय करै उस उ- पायके (संवुभुत्सया) भलीभांति जानने की इच्छा सै अर्थात् हे योगेश संन्यास लक्षण जो त्याग है उस्का करना विषयी पुरुषों सै वहुत कठिन है उसमें कोई सहज उपाय वताइये यही श्रीकृष्ण जी से उद्धवका पहिला प्रश्न है (१) (सत्संगासंगयोः)

— जीव — गुणो में बँधता है अथवा नहीं। बद्ध मुक्त जीव किस प्रकार रह सकता है और किन २ लक्षणों से जाना जाता है। तथैव नित्य बद्ध और नित्य मुक्त पना एकहीजीवमें किसतरह होसकता है यह मुझे बड़ा संशय है सो हे कृष्ण इस मेरे संशयको आपही दूर करेंगे यह दूसरा कृष्णजीसे उद्धवका प्रश्न है (२) ॥ (सताम्) हे कृष्ण आप किसको साधु कहते हैं इस प्रकारका तीसरा प्रश्न उद्धवजीका श्री कृष्णजी से है (३) ॥ (भक्तेः) — हे भगवन आपमें किस प्रकार भक्तिको करें यही चौथा प्रश्न उद्धवका श्रीकृष्णजी से है (४) ॥ (जीवस्य) जीव किसको कहते हैं और वह कैसाहै यह मुझको बड़ा संशय है यही कृष्ण से पाँचवाँ प्रश्न उद्धवका है (५) ॥ (विषयासक्तोदूषणेदृष्टऽपिहेतो :) - विषय - दुःखदेने वाले हैं ऐसा मनुष्य जान करभी फिर इन विषयों में क्यों फसता है यह कृष्णसे उद्धवका छटा प्रश्न है (६) ॥ (हंससनन्दादिसंवादस्य) - हे कृष्ण · जबतुमने हंस रूपधारण कर सनकादिकों को ज्ञानका उपदेश किया उसज्ञान के सुनने की मेरी इच्छा है यह उद्धका कृष्ण से सातवाँ प्रश्न है (७) ॥ (श्रेयस्सुउत्तमस्यच) -- हे कृष्ण ब्रह्मवेत्ता जन, अनेक प्रकार के कल्याण कारी उपायों को बताते हैं उन सब उपायोंमें भक्तियोगही प्रधान है यही आपका मत है उस मत को मुझसे कहो यह उद्धवका अठवाँ प्रश्न श्रीकृष्णजी से जानना (८) ॥ (ध्यानयोगस्य) हे भगवन् ·- मोक्षकी इच्छा करने वाला पुरुष जिस प्रकार आपकाध्यान करे उस ध्यानका तुम निरूपण करो यही उद्धवजी का श्रीकृष्णजी से नवम प्रश्न है (९) ॥ (सिद्धीनाञ्च) हे अच्युत - किसधारणसे कोन सिद्धिप्राप्त होती है और वह सिद्धिकितनी हैं यह सब बताओ यही कृष्ण के प्रति उद्धवका दशम प्रश्न है (१०) (विभूतिवत्) आकाश पाताल तथा पृथ्वीमें जितनी विभूति (ऐश्वर्य) हैं उनसबका आप निरूपण करो यहीग्यारवाँ श्रीकृष्णजी से उद्धवका प्रश्न है (११)॥१३।१४॥ (वर्णाश्रमादिधर्मस्य) जो आप ने पहिले ब्रह्माजी को हंसरूप से ज्ञान सुनाया था वही वर्णश्रम का धर्म मुझ से कहो यही उद्धव जी का श्रीकृष्ण जी से वारहवां प्रश्न है (१२) ॥ (ज्ञानादीनाम्) शुद्ध ज्ञान और वैराग्य युक्त भक्ति ज्ञान का निरूपण करो यही उद्धव जी का श्रीकृष्ण जी से तेरहवां प्रश्न है (१३) ॥ (यमादिवत्)—हे कृष्ण ? यम नियम, शम, दम, तितिक्षा, धृति, दान, तप, शौर्य, सत्य,ऋत,त्याग, इत्यादि इन सबके आप लक्षण कहिये—यही उद्धव जी का श्रीकृष्ण से चौदहवां प्रश्न है (१४)॥ (गुणदोषापवादस्य) गुण दोष अर्थात् विधि और निषेध तथा अपवाद इनका

भी वर्णनकरो यही उद्धवका श्रीकृष्ण जी सै पन्द्रहवां प्रश्न (१५) ॥ (तत्त्व संख्यान्यवस्थितेः)—हे विश्वेश ऋषियों ने कितने तत्व कथन करे हैं। आप के सिद्धान्त के अनुसार तौ एक है परन्तु कोई २६—कोई २५ कोई सात कोई ६ कोई ९ कोई ४ कोई ११ कोई १७ कोई १६ कोई १३ इत्यादि तत्वों की संख्या कहते हैं इनमें से कौन २ सत्यहै यह कहो यही उद्धवजीका श्री कृष्ण से सोलहवाँ प्रश्न है (१६) ॥ १५ ॥—(क्षेत्रक्षेत्रज्ञ भेदस्य)—हेकृष्ण? क्षेत्र (प्रकृति) जड़है और क्षेत्रज्ञ (पुरुष) चेतनहै इनदोनों में विलक्षण ताहोने पर भी प्रकृतिमें आत्मा और आत्मामें प्रकृति इसप्रकारका अभेदसा दीखताहै इस भ्रमको दूरकरो यही श्री कृष्णसे उद्धवजी का सत्रहवाँ प्रश्न है (१७) ॥ (देहयोगवियोगयोः)—हे कृष्ण ? आत्मा का कैसे अन्य देहमें गमन होता है और अकर्ता के कर्म, तथा नित्य के जन्म मरणादि किस प्रकार होते हैं यही उद्धवका अठारहवाँ प्रश्न है (१८) ॥ (अभिमाननिवृतेश्च) हे कृष्ण—दुर्जनों से किये हुए उपद्रवका सहना और बुद्धिमत्तासे मनका वशमें करना, यह किसतरह हो यही उन्नीसवें प्रश्न का भावार्थ है (१९) ॥ (क्रियायोगस्य)—हे कृष्ण ! कर्म—बन्धनकी पाश छुड़ाने को भक्तजन आपकी किस विधि से पूजा और आराधना करें उस क्रिया योगको कहो यही उद्धवजी का श्रीकृष्णजी से वीसवाँ प्रश्न है (२०) (संसृतौ अधिष्ठानस्य)—हे ईश? यह जन्म मरण न आत्मा को होताहै और न शरीर को क्योंकि आत्मा ज्ञानरूप है और शरीर जड़है। यदि कहो कि दोनों को ही नहीं होताहै यह कथनभी असत्य है क्यो कि प्रत्यक्षही मालूम होता है इस संशय को काटो—यही उद्धवजी का श्रीकृष्णसे इक्कीसवाँ प्रश्नहै(२१) (परस्याः भक्तेश्च)—हेअच्युत ? जिनका मन वशमें नहींहै ऐसे पुरुषोंको यह योगचर्या वड़ीदुष्करहै अतः वह योगचर्या जिस उपायसे विनाही परिश्रम सिद्ध होजाय उसभक्ति योग को तुम वर्णन करो—यही उद्धव जी का श्रीकृष्ण जी सै वाईसवाँ प्रश्न है (२२) ॥ यही २२ वाईस प्रश्न श्री कृष्णजी ने उद्धवजीसै कि यहैं॥ १६ ॥ १७ ॥

(भाषान्वयः)—मंगलयोग उपायस्य संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णं प्रति प्रथमं प्रश्नं चक्रे (१) सत्सङ्गासङ्गयोः संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति द्वितीयामिमं प्रश्नं चक्रे (२) ॥ सतां संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति तृतीयं प्रश्नं चक्रे (३) ॥ भक्तः संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णं प्रति चतुर्थं प्रश्नंचक्रे (४) ॥ जीवस्य संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति पंचमं प्रश्नं चक्रे (५) ॥ विषयासक्तौ दूषणे दृष्टेऽपि हेतोः संबुभुत्सया उद्धवः षष्ठं प्रश्नं चक्रे (६) ॥ हंससनन्दादिसंवादस्य संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णं प्रति सप्तमामिमं प्रश्नं चक्रे (७) ॥ श्रेयःसु उत्तमस्य च संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णं प्रति अष्टमं प्रश्नं चक्रे (८) ॥ ध्यानयोगस्य संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णं प्रति नवमं प्रश्नं चक्रे(९) सिद्धीनांच संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णं प्रति दशमं प्रश्नं चक्रे (१०) विभूतिवत्—विभूतीनांच सं-

बुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति एकादशं प्रश्नं चक्रे (११) ॥ वर्णाश्रमादि धर्मस्य संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति द्वादशं प्रश्नं चक्रे (१२) ॥ ज्ञानादीनां संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति त्रयोदशं प्रश्नंचक्रे (१३) ॥ यमादिवत्-यमादीनां संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति चतुर्दशं प्रश्नं चक्रे (१४) ॥ गुणदोषापवादस्य संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति पंचदशं प्रश्नं चक्रे (१५) ॥ तत्त्वसंख्यालक्षणादिकस्य तेः संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति षोडशं प्रश्नं चक्रे (१६) ॥ देहबंधमोक्षस्य संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति सप्तदशं प्रश्नं चक्रे (१७) ॥ देहयोगवियोगयोः संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति अष्टादशं प्रश्नं चक्रे (१८) ॥ अभिमाननिवृत्तेश्च संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति एकोनविंशं प्रश्नं चक्रे (१९) क्रियायोगस्य संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति विंशं प्रश्नं चक्रे (२०) ॥ यमनो अभिज्ञानस्य संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति एकविंशं प्रश्नं चक्रे (२१) ॥ परस्य भक्तेश्च संबुभुत्सया उद्धवः कृष्णंप्रति द्वाविंशं प्रश्नं चक्रे (२२) ॥ इति कृष्णंप्रति उद्धवः क्रमात् द्वाविंशति प्रश्नान् चक्रे इत्यन्वयः श्लोकपंचकस्य ॥ १३-१४-१५-१६-१७ ॥

(भाषान्वयार्थः) अथ केन प्रश्नः तान् द्वाविंशतिसंख्यकान् प्रश्नानाह संन्यासे उपायस्य इत्यादि पञ्चभिः श्लोकैः ॥ अत्र च द्वाविंशतेः चतुर्थ्यन्तानामखिलानां संबुभुत्सया प्रश्नान् द्वाविंशति उद्धवः कृष्णं प्रति चक्रे इति सर्वत्रान्वयः कर्तव्यः । विमुक्तिरन् इत्यादि पदस्थोऽनि रो पञ्चमैवव्यतयानि न तदन्तयोः भान्यया चतुर्थ्यन्तत्वहानिः ॥ (संन्यास उपायस्य) संन्यासलक्षणे त्यागे क उपायस्तस्य (संबुभुत्सया) सं-सम्यक् प्रकारेणावबुद्धिमिच्छतीति संबुभुत्सा तया संजिज्ञासयेत्यर्थः हे योगेश संन्यासलक्षणस्त्यागो विषयात्माभर्दुष्करः तस्मिन् क उपायः कर्तव्य इति कृष्णं प्रति उद्धवः प्रथमं प्रश्नं चक्र इति भावः (१) ॥ (सत्संगासंगयोः) सतः एकस्य-स्यात्मनः संगासंगयोर्बन्धमोक्षयोः इत्यर्थः । जीवः गुणेषु न बध्यते बध्यते वा किंच मद्भुक्तो जीवः कथं तिष्ठति केर्लक्षणैर्ज्ञायते । मायया नित्यमुक्तो नित्यबद्धः एकएव कथमिति मे शंसो भवतीति कृष्णं प्रति उद्धवस्य द्वितीयः प्रश्नः इति विशदार्थः (२) ॥ (सताम्) साधूनामित्यर्थः— हे कृष्ण ? तव साधुः कीदृग्लक्षणः इत्युद्धवस्य कृष्णं प्रति तृतीयः इति सरलार्थः (३) (भक्तेः) हे भगवन् ? त्वयि कीदृशी भक्तिर्विधेयेति कृष्णं प्रति उद्धवस्य चतुर्थः प्रश्नः इति स्वच्छार्थः (४) ॥ (जीवस्य) जीवः कीदृशः इति मे मनोविकारं भ्रामयति हे योगेश्वर तं संशयं त्वं छिंधि इति कृष्णं प्रति उद्धवस्य पञ्चमः प्रश्नः इति भावार्थः (५) ॥ विषयाणां दूषणं प्रत्यपि हेतोः) दोषदर्शनेऽपि जनानां विषयवासनायां सत्यां तद्धेतोः—हे कृष्ण ? विषयाः दुःखदा इति ज्ञात्वापि मनुष्याः कथं पुनस्तान् सेवन्ते इति कृष्णं प्रत्युद्धवः षष्ठं प्रश्नंचक्रे इत्यभिप्रायः. (६) ॥ (हंससनकादिसंवादस्य)-हे कृष्ण ? यदात्वं सनकादिभ्यो यद्रूपेण योगं कथितवान् तत् हंसरूपमहं ज्ञातुमिच्छामीति कृष्णं प्रत्युद्धवस्य सप्तमः प्रश्नः इत्याशयः (७) (श्रेयस्सु उत्तमस्य च)-श्रेयःसु सत्कर्मगुणेषु उत्तमस्य-हे कृष्ण ? महात्मानो बहूनि-श्रेयांसि वदन्ति तत्र सर्वेषां प्राधान्य भक्तियोगः त्वयोक्तः तत्कथय इति कृष्णं प्रत्युद्धवस्याष्टमःप्रश्न इति निष्कृष्टार्थः (८) ॥ (ध्यानयोगस्य)—हे भगवन् ? मुमुक्षुर्यादृशं त्वां ध्यायेत् तद् ध्यान कथयेति कृष्णं प्रति उद्धवस्य नवमः प्रश्नः (९) ॥ (सिद्धीनांच)—हे अच्युत ? कया धारणया कीदृशी सिद्धिःप्राप्यते सिद्धयश्च कतिसन्ति तत्सर्वं ब्रूहि इति कृष्णं प्रत्युद्धवस्य दशमः प्रश्नः (१०) (विभूतिवत्)—यथा विभूतीनामपि बुभुत्सया प्रश्नं चक्र इति यतेरर्थः—भूमौ स्वर्गे पाताले च याः काश्चित्त विभूतयःसन्तितामेवद इत्युद्धवस्य कृष्णं प्रत्युक्तिरेकादश पृच्छानुरूपा(११)॥१३।१४ (वर्णाश्रमादिधर्मस्य) वर्णाश्रमादीत्यादि पदात् साधारणधर्मस्य च बोधः पुरात्वं त्वद्भक्तिसाधन

रूपं परंधर्मं हंसरूपेण ब्रह्मणे आत्थ स धर्मो वर्णाश्रमाचारवतां येषां यथा विधीयते तथा कथय इति कृष्णं प्रत्युद्धवः द्वादशं प्रश्नं चक्रे (१२)॥ (ज्ञानादीनाम्)—ज्ञानादीनामित्यादिपदात् भक्ति-वैराग्यविज्ञानैश्वर्याणां बोधः—हे कृष्ण शुद्धज्ञानं वैराग्ययुतं भक्तियोगंच कथय इति कृष्णं प्रत्युद्धवस्य त्रयोदशः प्रश्नः (१३) ॥ (यमादिवत्)—यमादीत्यादिपदात् नियमादीनां त्रयस्त्रिंशत्संख्यानांबोधः हे कृष्ण—यमनियमौ कतिविधौ, शमःकः इत्यादीन् प्रश्नान् नो ब्रूहि, एषां प्रश्नानां समूहत्वेन एकता अतः सर्वानेकीकृत्य एकः प्रश्नो भवतीतिभावः इति कृष्णं प्रत्युद्धवस्य चतुर्दशः प्रश्नः (१४) ॥ (गुणदोषापवादस्य)—गुणदोषौचापवादश्चेति द्वन्द्वैकवद्भावः अपवादश्च तयोरेव नचैवं प्रश्नद्वैविध्यं पृथक् प्रयत्नाभावात्—गुणो—विधिः, दोषो निषेधः क्वचिच्च विधिनिषेधयोरपवाद इत्युद्धवस्य कृष्णंप्रति पंचदशः प्रश्नः (१५) ॥ (तत्त्वसंख्याऽव्यवस्थितेः)—व्यवस्थितिर्निश्चयः हे विश्वेश ? ऋषिभिः कति तत्त्वानि संख्यातानि त्वन्तु एकंतत्त्वं वदसि, केचित् २६ प्राहुः, अपरे २५, एके ७, केचित् ६, अन्ये ९, केचित् ४, अन्ये ११, केचित् १७, केचित् १६, अन्य १३ एवं तत्त्वानां नानात्वं यद्विवक्षया गायन्ति तद्वद इत्युद्धवस्य कृष्णं प्रति षोडशःप्रश्नः(१६)॥१५॥क्षेत्रक्षेत्रज्ञभेदस्य) क्षेत्रं प्रकृतिः क्षेत्रज्ञः पुरुषः, तयोर्भेदोविशेषः हे कृष्ण ? प्रकृतिः पुरुषश्च जडाजडत्व भावेन विलक्षणौस्तः प्रकृतावात्माऽऽत्मनि प्रकृतिश्च अतस्तयोर्भेदोन इतिमे संशयंछिन्धि इति उद्धवस्य सप्तदशः प्रश्नः (१७) ॥ (देहयोगवियोगयोः)—हे कृष्ण ? आत्मनो देहान्तरगमनम् । अकर्तुः कर्माणि; नित्यस्य जन्ममरणादि च कथं इतिनः कथय इत्युद्धवस्याष्टादशः प्रश्नः (१८) ॥ (अभिमाननिवृत्तेश्च)—हे कृष्ण ! तिरस्कारसहनोपायः, धिया मनसः संयमश्च कथं भवेत् नूनं दुर्जनोपद्रवो महीयसां दुःसहोहि अतः अभिमाननिवृत्त्यर्थं सहनोपायंवद इत्युद्धवस्यैकोनविंशः प्रश्नः (१९) ॥ (क्रियायोगस्य)—हे कृष्ण ! कर्मबन्धविमोचनाय भक्ता यथा त्वामर्चयन्ति तथा भवदाराधनं रूपं क्रियायोगं समाचक्ष्व इत्युद्धवस्यविंशः प्रश्नः (२०) ॥ (संसृतौ-अधिष्ठानस्य)—संसृतौ संसारे, अधिष्ठानस्य अधिष्ठातुः हे ईश ? इदं जन्ममरणं नात्मनो न शरीरस्य यतः आत्मा ज्ञानरूपः शरीरन्तु जडं माभूद्द्वयोरित्यपिन तथाप्युपलभ्यते अतः कस्य जन्ममरणं तद्वद—इत्युद्धवस्यैकविंशः प्रश्नः (२१) ॥ (परस्याः भक्तेश्च) परस्याः पूर्वविलक्षणायाः उत्कृष्टायाः इत्यर्थः भक्तिमात्रस्य पूर्वमुक्तत्वात् पौनरुक्तं माभूदिति भक्तेः पराविशेषणं ज्ञेयम्—हे अच्युत अवशीकृतमनसां पुंसां इमां योगचर्यां दुष्करां मन्ये अतोऽप्रयत्नतो यथा सिद्ध्येत्तथा भक्तियोगंब्रूत इत्युद्धवस्य द्वाविंशः प्रश्नः (२२) ॥ -आमीद्वाविंशतिसंख्यकाः प्रश्नाः कृष्णंप्रति उद्धवेन कृताः इति स्पष्टार्थः ॥ १६ । १७ ॥

(मूलम्) हेयोपादेयनिर्द्धारः (१) स्वप्ने सुप्तप्रबुद्धवत् (२) ॥
मिथः कृष्णकथासक्ताः (३) प्रेम्णैव हरिदासता (४) ॥ १८ ॥
स्वसृष्टानुप्रविष्टोऽसौ (५) रजः संमिश्रसत्त्वता (६) ॥
गुणचित्तोभयत्यागो (७) भक्तिरव्यभिचारतः (८) ॥१९॥
अरूपाचिन्तनं रूपैः (९) ध्यातुर्ध्येयसमानता (१०) ॥
तत्रतत्रोत्कटं सत्त्वं (११) कर्मत्यागः शनैः शनैः (१२) ॥२०॥
द्वे हेये द्वे उपादेये (१३–१४) गुणदोषावभिद्धिदौ ॥

कर्मणि ज्ञानभक्त्योर्न (१५) साम्यं सख्यं प्रकल्पनात् (१६) ॥ २१ ॥
स्वतः सिद्धः पुमान्नान्यत् (१७) मनोगंत्रभिमान्यजः (१८) ॥
मनः शत्रुजयः सम्यक् (१९) प्रतिमादिष्वजार्चनम् (२०) ॥ २२ ॥
पुमान्भक्त्योपगूढो (२१) विश्वमूर्तीशपूजनम् (२२) ॥
पादैर्द्वाविंशति विष्णोरुत्तराण्युद्धवं प्रति ॥ २३ ॥

[भावार्थ]—(हेयोपादेयविज्ञानः) यह जगत् असत् है इसलिये इसको त्यागनाही ठीकहै और आत्मा आदि वस्तु सत् उसहीको ग्रहणकरना श्रेष्ठ है इस प्रकार जो विचार लेता है यही उसको संगत्याग में उपाय है यह प्रथम प्रश्न का उत्तरहुआ (१) (स्वप्ने सुप्तप्रबुद्धवत्)—जैसे सोकर उठाहुआ पुरुष स्वप्न में देश २ नगर २ घूमते हुए अपने आत्माका स्मरण करताहुआभी उस समय अपनेको तन्मध्यवर्ती सत्य नहीं मानता । तथैव स्वप्नके देखने के समय अपने आप उसमें स्थित न होनेपरभी स्वप्न के देखनेके भ्रमसे अपने को तन्मध्यवर्ती सच्चाही मानरहाहै इसीप्रकार इस बाधितानुवृत्ति के द्वारा यह विद्वान् पुरुष देह में स्थितहोकर भी अपने आपको उस देहमें बद्ध नहीं मानता परन्तु मूढ जनतो वस्तुतः मुक्त होनेपरभी अपने आपको बद्ध मानता है । इस आत्मा का जन्म मरण बन्धन मोक्ष इत्यादि कुछभी नहीं होते किन्तु यह आत्मा तो स्वतः सिद्ध, नित्य, मुक्त, और शुद्धहै; यही दूसरे प्रश्नका उत्तर है (२) ॥ (मिथः कृष्णकथासक्ताः)—जो परस्पर हरिकीर्तन गोष्ठीको कर प्रतिदिन श्रीकृष्णचन्द्र की कथा में दत्त चित्त होते हैं वही सन्त हैं यही तीसरे प्रश्नका उत्तर है (३) ॥ (प्रेम्णैव हरिदासता)—लोभको छोडकर प्रेमसे हरि में दासभाव करना इसही को भक्ति कहते हैं । यही चौथे प्रश्नका उत्तरहै (४) ॥१८॥ स्वसृष्टानुप्रविष्टोऽसौ) जो अपनी सृष्टि में अनुप्रविष्ट होकर रहता है वही ईश्वररूपी जीव है (५) ॥ (रजः संमिश्रसत्वता)—जब सत्वगुणकी वृद्धि होतीहै तबही यह मनुष्य कुत्सित पदार्थों में दोषों को देखताहै और जब रजोगुणकी अधिकता होतीहै तो उन दोषोंको न देखताहुआ विषयों में प्रवृत्तहोकर उन विषयोंका सेवन करता है यही छटे प्रश्नका उत्तर है [६] ॥ (गुणचित्ते भयत्यागः)—गुण अर्थात् विषयों को त्यागदेना और चित्तको त्यागना । चित्तका यही त्यागना है कि अपने वशमें करना —यही हंसरूपधारी भगवान्ने सनकादिकों से योग निरूपण किया है यह सातवें प्रश्नका उत्तर है [७] ॥ (भक्तिरव्यभिचारतः) व्यभिचार आदि दोषों से रहित अर्थात् निष्कपट होकर मेरी भक्ति करनी यही कल्याणकारी वस्तुओं

में उत्तमताहै–यह आठवेंप्रश्नका उत्तरहै (८॥१९॥(अरूपचिन्तनं रूपैः) मृत्तिका धातु काष्ट आदि से बनी हुई शिव ब्रह्मा विष्णुकी साकार मूर्त्तियों में स्थित जो नील पीतादि रूपहैं इन रूपोंकेद्वारा अरूप वस्तु जो निराकार परमात्मा है उस्का चिन्तवन करनाही ध्यान कहाता है–यही नवें प्रश्नका उत्तर है ॥ (ध्यातुर्ध्येय समानता) ध्येय वस्तु अर्थात् परमात्मा आदिके साथ जो ध्यान करनेवाले की तुल्यता होजानी है वही सिद्धि है । सूक्ष्मभूतों के ध्यान करने से अणिमा सिद्धि प्राप्त होती है और स्थूलपदार्थो के ध्यान करनें से महिमा नामवाली सिद्धि प्राप्त होती है । सिद्धियां आठ हैं इनको अमरकोश के प्रमाणसे जानना यही दशम प्रश्नका उत्तर है ॥ [तत्रतत्रोत्कर्टं सत्वम्] उन २ इन्द्र आदि देवताओं में जो सत्वगुणकी अधिकता है वही विभूति है यही ग्यारहवें प्रश्नका उत्तर है ॥ (कर्मत्यागः शनै ः शनै :) शनै २ कर्मों का त्याग करनाही वर्णाश्रमधर्म है । संम्पूर्ण शास्त्रों में तौ गौणरीति सै वर्णाश्रम आचार धर्मोका प्रतिपादन किया है मुख्यरीति सै तौ विष्णुभक्ति करनी ही वर्णाश्रमाचार धर्म है क्योंकि भगवान ने गीता में कहाभी है कि " हे अर्जन तुम सव धर्मोको छोड मेरीही भक्ति करो में तुमे सव दुःखों से छुडाऊंगा और तुम किसी वातका शोच विचार मत करो ,, यही वारहवें प्रश्नका उत्तरहै (१२) ॥२०॥ (द्वे हेये द्वे उपादेये) ज्ञानादिकों में और यमादिकों में दो छोड देने चाँहिये और दो ग्रहण करने योग्य हैं । ज्ञानदिकों में कौन छोडने और कौन ग्रहण करने इनका वर्णन करते हैं ,, मेरीभक्ति करनी यह धर्महै सव ओर एक आत्मा कोही देखना यह ज्ञान है । दोपों में नहीं लिपटना यही वैराग्य है । और अणिमा आदि सिद्धियोंका प्राप्तहोना यही ऐश्वर्य है इस प्रकार के ज्ञानादिकों का ग्रहण करना उचित है इस से भिन्न शून्य मन्दिर आदिमें वन्दना करनी हेय अर्थात् त्याज्य है । अव यमादिकों का दिखातेहैं मेरे में वुद्धि का स्थित करनाही शम है । इन्द्रियों का निग्रह करना दम है । दुःख का सहना तितिक्षा है जिह्वा और शिश्नेन्दिय का जीतनाही धृति है । इस ही प्रकार के यमादिकों का ग्रहण करना योग्य है इनसे अतिरिक्त भक्ति शून्यहोकर यमादिकों का त्यागनाही श्रेष्ठ है । यहां दो उत्तर श्लोकके चतुर्थांश से ही वर्णन किये हैं । और इससे आगे एक उत्तर दो चरणोंसे निरूपण किया है इसकारण पहिले घटकर फिर वढना यह समानही है इसहीसे यहाँ पूरे वाईस उत्तरही होतेहैं यह सिद्धहुआ यह तेरह और चौदह प्रश्नोंके दोउत्तरहैं (१३-१४) (गुणादोपावभिद्भिदौ) (कर्मणि ज्ञानभक्त्योर्न) प्रथम गुण इत्यादि पहिले पादका अर्थ दिखाते हैं–यह गुण है यह दोप है इस

प्रकारका भेद ज्ञान करनाही दोष है। और जिसमें भेद न हो अर्थात् यह दोष है यह गुणहै इसप्रकार का जिसमें भेद न दीखे वही गुण है। अब पहिले पादके अर्थ को दूसरे पादमें मिलाते हुए दूसरे पादका वर्णन करते हैं—यथा—वह गुण दोष–कर्म में होते हैं किन्तु ज्ञान भक्ति में नहीं। जो कुछ कर्म कृष्ण में समर्पण करा जायहै वही गुणहोता है क्योंकि सब में ब्रह्मही व्यापक है इसलिये अभेद भावना करनी ही योग्य है "जोकुछकरे वह ब्रह्मके ही अर्पण करे" इत्यादि श्रुतिकाभी इस में प्रमाण है। यही पन्द्रहवें प्रश्न का उत्तर है (१५) (साखा संख्या प्रकल्पनात्)––किसीके मतमें २५ किसीके २६ इत्यादि अनेक प्रकार की तत्वोंकी संख्या यद्यपि ग्रन्थ कारोंने की है तथापि यह सब निज २ मतों की कल्पना और बुद्धिकी विचित्रताहै किन्तु सिद्धान्त में तो एक ही परमात्मा रूप तत्व है—यह सोलहवें प्रश्न का उत्तरहै (१६) ॥ (स्वतः सिद्धः पुमान्नान्यत्) परमात्मारूप पुरुष–स्वतः प्रकाश स्वरूप है और प्रकृति–जड होने से परतःप्रकाश वाली है इसकी सविस्तार व्याख्या हमने अपनी बनाई न्यायसिद्धान्त मुक्तावलीके टीके में की है विस्तार के भयसे यहाँ थोडाही लिखाहै—यही सत्रहवें प्रश्न का उत्तर है (१७) (मनोगत्राभिमान्यजः)–स्वयं आत्मा तो अज है परन्तु अपने मन से कल्पित पदार्थों के अभिमान से जन्म और मृत्युवाला होता है यही अठारहवें प्रश्न का उत्तर है (१८) ॥ (मनः शत्रुजयः सम्यक्)–मनका अपने वश में करना ही अभिमान की निवृत्तिमें कारणहै यद्यपिमन अत्यन्त ही चञ्चलहै तथापि अभ्यास करने से हौले २ वश में होसक्ताहै यही उन्नीसवें प्रश्न का उत्तरहै (१९) ॥ (प्रतिमादिष्वजार्चनम्)– आदिपद से जल सूर्य अग्नि मन्त्र ब्राह्मणों का बोध होता है अर्थात् इन सबमें श्रीकृष्णका पूजन करना ही क्रिया योग है यही बीसवें प्रश्नका उत्तर है (२०) ॥ (पुमान्प्रकृत्योपगृढः)–प्रकृतिरूप कामिनी को गाढालिंगन (जोरसे चिपटाना) कर निर्लेपहो ने पर भी पुरुष इस संसार वासना को भोगता है यही इक्कीसवें प्रश्नका उत्तर है (२१) ॥ (विश्वमूर्तीशपूजनम्)—इस चराचर जगत् में व्यापक विराट् रूप परमेश्वर का पूजन करनाही पराभक्ति है यह भक्ति सत्संगति से होती है इस के बिना और कोई सहजउपाय इस भक्ति के सिद्ध करने में नहीं है यही बाईसवें प्रश्नका उत्तर श्रीकृष्ण महाराज ने उद्धवजी को सुनायाहै ॥ इसप्रकार बाईस प्रश्नोंके बाईस २२ उत्तर श्रीकृष्ण महाराज ने उद्धवजीको भली भांति समुझाये हैं ॥ २३ ॥

(संस्कृतार्थः)—अथ क्रमशश्चरणैर्द्वाविंशतिप्रश्नानामुत्तराण्याह—हेयोपादेयेत्यादिषड्भिः श्लोकैः द्वाविंशतिसंख्यकैः पादैः श्रीकृष्णस्य द्वाविंशतिसंख्यकान्युत्तराण्यपि ज्ञेयानि पादेनैकेनोत्तरमप्येक मिति नात्र विचारः बहुषु पादेषु संकरदर्शनादित्यलं बहुजल्पनेन ॥ (हेयोपादेयनिर्द्धारः)—हेयस्त्यागः उपादेयं ग्रहणं तयोर्निर्द्धारो निश्चयः असदिदं जगदादि तद्धेयं सद् आत्मादि तदुपादेयमिति विचारः संगत्यागे उपाद इति प्रथमप्रश्नस्योत्तरम् (१) ॥ (स्वप्ने सुप्तप्रबुद्धवत्)—' यथा स्वप्नदृष्टेऽर्थे सुप्तप्रतिबुद्धौ सक्तासक्तौ भवतः एवमात्मनः संगासंगौ स्तः यथाहि स्वप्नादुत्थितः पुरुषः स्वप्नमध्यवर्तिनमात्मानं स्मरन्नपि न तन्मध्यवर्तिनं मन्यते यथा च स्वप्नदृष्टस्य वस्तुनो मिथ्यात्वादनन्तमध्यवर्त्यपि स्वप्नदृष्टश्रमात्तन्मध्यवर्ती भवति एवं बाधितानुवृत्त्या विद्वान् देहस्थोऽपि न स्वं बद्धं मन्यते मूढस्तु तत्त्वतो मुक्तोऽपि भ्रमात्स्वं बद्धं मन्यते तदुक्तम्—' देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान्स्वप्नाद्यथोत्थितः। अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग् यथा॥१ तथा—न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्नवै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥२॥इत्यन्यटीकाकारेण स्फुटीकृत मत्र बोद्धव्यम्। अत एवात्मनः सङ्गासङ्गौ बन्धमोक्षौ न भवतः स तु स्वतःसिद्धो मुक्तो नित्योऽस्तीति भावः इति द्वितीयप्रश्नस्योत्तरं कृष्णेन प्रोक्तमित्यर्थः (२) ॥ (मिथः कृष्णकथासक्ताः) ये मिथः परस्परं हरिकीर्तनगोष्ठीं कृत्वा कृष्णस्य याः कथाः व्रजरक्षणादिरूपा लीलास्तासु आसक्ताः दत्तचित्ताः त एव सन्तः सन्ति इति तृतीयप्रश्नस्योत्तरम् (३) ॥ (प्रेम्णैवहरिदासता) प्रेम्णैव न तु लिप्सादिना या हरिदासता सा एव भक्तिः इति चतुर्थस्योत्तरम् (४) ॥ (स्वसृष्टानुप्रविष्टौ सौ)—स्वसृष्टेष्वनुप्रविष्टोऽसावीश्वर एव जीव इत्यर्थः इति पंचमस्योत्तरम् (५) ॥ (रजः संमिश्रसत्त्वता)—रजसा संमिश्रं सत्त्वं यस्य स तथा तद्भावः सदोष दर्शनेऽपि विषयासक्तौ हेतुः संमिश्र मितिपदेन रजसः प्राधान्यं तेन सत्त्वांशे नदोषं पश्यंति रजःप्राबल्याच्च तं तिरस्कृत्य विषयेषु प्रवर्तन्ते अत एव तान् विषयान् सेवन्ते इति षष्ठस्योत्तरम् (६) ॥ (गुणाश्चित्तोभयत्यागः)—गुणाः श्चित्तंचेत्युभयस्य त्यागे हंससनन्दादिसंवादत्वम् गुणाः विषयाः चित्तस्य तु त्यागो निग्रह एव इदमेव हंसरूपे कथितयोगस्य प्रयोजनम् इति सप्तमस्योत्तरम् (७) ॥ (भक्तिरव्यभिचारतः)—अव्यभिचारतः व्यभिचारादिदोषशून्यतया मद्भक्तिरस्यात् इदमेव श्रेयस्तु उत्तमता इत्यष्टमस्योत्तरम् (८) ॥ (अरूपचिन्तनं रूपैः)—रूपैः मृच्छिलाधातुदार्वादिनिर्मितेश्वरेशलोकेश्वराकारमूर्तिस्थितनीलपीतादिरूपैः अरूपस्य वस्तुनो निराकारस्येत्यर्थः चिन्तनम् ध्यानयोगः इति नवमस्योत्तरम् (९) ॥ (ध्यातुर्ध्येयसमानता)—ध्येयेन वस्तुना सह ध्यातुस्तुल्यत्वं सिद्धिः तथा भूतसूक्ष्मध्यानादणिमा स्यात महत्तत्त्वध्यानान्महिमा स्यात् । सिद्धयश्चाष्टावेवाह " अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा । प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वञ्चष्ट सिद्धयः" इत्यमरकोषात्संख्या ज्ञेया—इति दशमस्योत्तरम् (१०)—(तत्र तत्रोत्कटं सत्त्वम्) तत्र तत्र तेषु तेष्विन्द्रादिषु यत्सत्त्वाधिक्यं सा विभूतिः इत्येकादशस्योत्तरम (११) ॥ (कर्मत्यागः शनैः शनैः) शनैः शनैः कर्मत्यागः कर्मणां त्याग एव वर्णाश्रमादिधर्मः गौणरीत्याऽखिलशास्त्रेषु वर्णाश्रमाचारधर्माः प्रोक्ताः मुख्यतयातु "सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वदुःखेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः" इति गीताप्रामाण्यात् विष्णुभक्तिरेव वर्णाश्रमाचारधर्माः इति द्वादशस्योत्तरम् (१२) (द्वे हेये द्वे उपादेये)—ज्ञानादिषु यमादिषु च उभयत्र द्वे हेये द्वे चोपादेये तथाहि ज्ञानादिषु तावत् " धर्मो मद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानंचैकात्म्य दर्शनम् । गुणेष्वसङ्गो वैराग्य मैश्वर्यंचाणिमादयः" इति एवंविधाज्ञानादयः उपादेयाः अर्थादन्येतु हेया इत्यर्थः । यमादिषु च " शमो मन्निष्ठिताबुद्धिः दम इन्द्रियनिग्रहः तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः" एवं विधाः यमादय उपादेयाः अ-

न्यथा तु हेया इत्यर्थः एवमन्यत्रापि ज्ञेयम् । अथ चान्यद्गमार्थः एकेनैव चरणेन नवदशिनः प्रश्न
स्य तु पादद्वयनैकरूपेणोत्तरत्वेनार्थः प्रतिपादितः यतोऽत्र सर्वार्थसम्पुटत्वात् द्वाभ्यामेव निर्वचनीयम्
इति त्रयोदशचतुर्दशयोः प्रश्नयोरेकेनैव पादेनोत्तरम् (१३ । १४) ॥ (गुणदोषाविभिन्नदृष्टिः ।
कर्माणि ज्ञानभक्तयोर्न) पूर्वं गुणस्वरूपं प्रश्नाभ्यासेनाभिप्रायमाह अयं गुणः अयं दोषः इति भिन्नज्ञानं
दोषः एतद्विभागराहित्येन यद् अभेदज्ञानं स गुणः ' गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ' इत्यु-
क्तत्वात् । गुणदोषयोरपवादमाह अमुना कर्माणीत्यादिद्वितीय पादेनाभिप्रायतो गुणदोषौ कर्मणि
स्तः न तु ज्ञानभक्तयोः तत्र कृष्णसमर्पितं कर्माणि गुणः तत्र हि सर्वत्र ब्रह्मस्वरूपत्वादभेदेनैव
ज्ञेया यथोक्तं श्रुत्यादिषु ' सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ' अद्वैत तेन मन्तव्यं ब्रह्मण्यात्म
साधिना ' इति भगवद्भिर्वेदे कर्माणि तु भेदज्ञानस्वरूपाण्येव ज्ञानमार्गस्तस्या भक्तिः किमन्यत्
स इद्धोत्तमः ' सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः । भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः '
इत्यत्रोक्ता । अनयोस्तु प्रत्येकमेकात्म्यत्वेन भेदाभावात् नात्रापि दोषलेशः एतदेव कपिलेन सूक्तं " न मन्मे
कान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः । साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषामिति " इति पञ्चदशप्रश्न
स्योत्तरम् (१५) ॥ (सा सा संख्या प्रकल्पनात्)–सा सा नवतत्त्वेषु प्रसिद्धाः प्रश्न
स्य पंचविंशति षड्विंशत्यादयस्तत्त्वसंख्याः नादीनां प्रकल्पनात् स्मृतिवेदिनाम ज्ञेयाः वस्तुतस्तु
एकमेव तत्त्वमिति भावः इति षोडशप्रश्नस्योत्तरम् (१६) ॥ (स्वतः सिद्धः पुमानात्मा) ।
पुमान् क्षेत्रज्ञः स्वतः सिद्धः–स्वप्रकाशस्वरूपः । अन्यत् सर्वं न स्वतः सिद्धं तत्तु आत्मनैव
प्रकाश्यते प्रकृतिः कर्मादिकपरस्तु कर्मकर्तृत्वाभिमानिभिः तथा च बुद्धिर्निर्विकारा परिणामिनी पुरुषः
कर्तृत्वाद्यभाववान् कारणत्वाभाववत्त्वात् यदेवं तथैव यथाबुद्धिः इयं कारिकाऽपि सांख्यतत्त्वकौमुद्याः
यथा "मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त । षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः
पुरुषः " अस्य विस्तृतव्याख्यानन्तु मत्कृतसिद्धान्तमुक्तावली भाष्यटीकायां द्रष्टव्यमित्यलं बहु-
विस्तरेण इति सप्तदशप्रश्नस्योत्तरम् (१७) ॥ (मनोऽभिमानीश्वरः) मनः प्रतिगच्छतीति म-
नोगन्ता मनःस्थित इति भावः तस्मिन्मनःकल्पिते सर्वे अभिमानी अस्य देहयोगवियोगयोः कार-
णम् वस्तुतः स्वयमजोऽपि मनोभ्यां मनोऽभिमानाज्जन्ममृत्युवान् भवेदित्यर्थः इत्यष्टादशप्रश्नस्योत्तरम्
(१८) ॥ (मनःशत्रुजयः स्मृतः)–मन एव शत्रुः तस्य जयः स्ववशीकरणम् तदभिमाननि-
वृत्तौ कारणम् यद्यपि मनश्चञ्चलं तथाऽप्यभ्यासेन तस्य निग्रहोऽपि श्रीकृष्णसेवया इत्येकोनविंशप्रश्न-
स्योत्तरम् कृष्णेन दत्तमित्यर्थः (१९) ॥ (प्रतिमादिष्वर्जनम्)—प्रतिमादिषु इत्यादिपदात्
सलिलसूर्याग्निगन्धविप्राः तेष्वस्य वेदविहितविधिना कृष्णस्यार्चनं क्रियायोगः इति विंशप्रश्नस्यो
त्तरम् (२०) ॥ (पुमान्प्रकृत्योपगूढः)–प्रकृत्या कामिनीरूपया गाढमालिंगितः पुमान् नि-
र्लेपोऽपि पुरुषः चक्रात्संसारमधितिष्ठति तदेवाधिष्ठानम् इत्येकविंशप्रश्नस्योत्तरम् (२१) ॥ (वि
श्वमूर्तीशपूजनम्)–विश्वमूर्तेश्चराचरजगद्व्यापिनो विराड्रूपस्य ईशस्य परमेश्वरस्य पूजनमत्र पराभ-
क्तिः इयन्तु सत्सङ्गत्याऽप्रयत्नेनैव सिद्ध्यति नान्य उपायः इति द्वाविंशतिप्रश्नस्योत्तरम् पृच्छते
उद्धवाय कृष्णेन दत्तमितिभावः (२२) ॥ इति अमुना प्रकारेण द्वाविंशतिसंख्यकानां प्रश्ना-
मुत्तराण्यपि पादैः उद्धवं प्रति कृष्णेन वर्णितानीत्यर्थः ॥ २३ ॥

(मूलम्) गुरुभिः पञ्चविंशत्या लोकतत्वपरीक्षणे ॥ २४ ॥
हीनमध्योत्तमैरष्ट नवाष्टाभिस्त्रिधैकधा ॥
आत्मतत्वपरीक्षायां चतुर्द्धेत्याद्यमुत्तरम् ॥ २५ ॥
ऋण्यनृण्याश्रमद्वन्द्वभेदेन द्वादशं द्विधा ॥

व्यवस्थेति तथावेदोऽपीति पञ्चदशं द्विधा ॥ २६ ॥
भिक्षुगीतस्य सांख्यस्य गुणालक्ष्मैलगीतयोः ॥
उक्तयोक्तं मनसोरित्थं वलं भेदो रणे जयः ॥ २७ ॥
ऊनविंशं चतुर्द्धैवं चतुर्भिर्द्वादशोत्तरैः ॥
पञ्चद्वादशभिः षड्भिः षड्त्रयोविंशतिस्ततः ॥ २८ ॥
निःसंगत्वे गुणत्यागे भक्तिर्दोह्येपकर्माणि ॥

(भावार्थ) – इस प्रकार प्रश्न और उत्तरों को कह कर अब चारों धा प्रत्ययान्तोंके भेदों के कहते हुए पहिले आद्य भेदका वर्णन करे हैं " गुरुभिः ,, इत्यादि इस डेढ श्लोकसे " यथा पहिला प्रश्न के साथ उत्तर, चार अध्यायों में निरूण किया है उन में भी पच्चीस गुरुओंके द्वारा लोकतत्वपरिक्षामें हीन, मध्यम, और उत्तम अर्थात् पहिला अष्टक हीनहै दूसरा नवक मध्यम और तीसरा अष्टक उत्तम-इसप्रकार इन भेदों से इन पच्चीसों के तीन प्रकरण होते हैं। परन्तु यहाँ एक और भी वात जानने योग्य है कि जो पच्चीस वें गुरुका कथन किया है वह यद्यपि इनतीन प्रकरणोंमें तो है तथापि परीक्षा के—लोक तत्वपरीक्षा तथा आत्मतत्व परीक्षा यह दोभेद होने से उस पच्चीस वें गुरुका लोक तत्वपरीक्षा को छोड आत्मतत्व परीक्षा में गणना कि जाती है इसी लिये यह चौवीस तीन प्रकार के होनेसै तीन अध्यायों में पृथक्लिखे है किन्तु पच्चीसवें गुरुके उत्तम प्रकार में होनेपर भी परीक्षा भेदसे उसकी चौथे अर्थात् दशवै अध्यायमें स्थितिकी है अतएव ,, हेयोपादेयनिर्द्धारः ,, यह प्रश्नोत्तर चार भेदवाला होने सै चार अध्यायो से अर्थात् सात आठ नौ दश इन अध्यायों सै निरुपण किया है तात्पर्य यह है कि " पहिले अध्याय में आठगुरुओ का अष्टक, दूसरे में नो गुरुओंका नवक और तीसरे में आठ गुरुओं के अष्टक मे सै सात गुरुओं का सप्तकवर्णन कर और एक गुरुका चौथे अध्याय में निर्णय है इसी से चार अध्याय जानों। यही इस डेढ श्लोकका भावार्थ है ॥ २५ ॥ अव वारहवें धाप्रत्ययान्तके उत्तर को कहते है " कर्मत्यागः शनैः शनैः " इस के द्वारा यह उत्तर ऋणी (जो करजदार है) और अनृणी (जो करजदार नहो) भेदसे दोप्रकारका है इसहीसे इसका दोअध्यायों मे वर्णन है ब्रह्मचारी और गृहस्थ यह दोनों ऋणी हैं वह ऋणभी तीनप्रकारकाहै ऋषिऋण १ देवऋण २ पितृऋण ३ ब्रह्मचर्याश्रममें वीस या पच्चीस वर्ष वेद शास्त्रका अध्ययन करने सै ब्रह्मचारी ऋषियों के ऋण से छुटजाता है इसही कारण सबसे पहिले हमारे हिन्दू धर्म में ब्रह्मचर्याश्रम है। वाकी दोदो अर्थात् देवऋण और पितृऋण इनसे गृहस्थाश्रम कर छुटता है जैसे देवताओं के ऋण

से यज्ञादि कर्म करने के द्वारा गृहस्थी अनृणी हो जाता है तथैव सन्तानके उत्पन्न करने से तिलाञ्जलि दान और श्राद्ध आदि कर्म करने के द्वारा गृहस्थी पितरोंके ऋण को दूर करता है पितर यही इच्छा करते हैं कि हमारे वंश में सदैव सुसन्तान पैदाहों और वह हमको जलदान दें। अहहा ? आज कलतो बडी आश्चर्य की बात होरही है कि जिन पितरों ने अपना तन मन धन लगाकर जिस सन्तानको पाला और जो अपना सर्वस्वदेकर चलेगये हाय ? आज उन के नामसे श्राद्ध तर्पण द्वारा जलदान आदि देनाभी भारमालूम होरहाहै क्यों न हो यह इस विकराल कलि कालकी ही महिमा है हे मित्रो ? जरातो सोचिये और समझिये कि जिन्होंने तुमको अपना सर्वस्व देदिया क्या उनको जलदेनाभी तुम बोझमालूमहोनाहै क्या इस से ज्यादाभी कोई कृतघ्नता होसक्तीहै अतःआपको चाहिये कि श्राद्धादि करो वस इस बातको अधिक वेदादि प्रमाणों से लिखकर विस्तार भय से अपने प्रकृत प्रकरणका अनुकरणकरता हूँ। यती (संन्यासी) और वानप्रस्थ (जोघरको त्याग स्त्रीके साथ वन में रहते हैं) यह दोनों अनृणी हैं अर्थात् इन दोनों ने पूर्वोक्त तीनों ऋणों को चुकाकर अपना २ आश्रमग्रहण किया है। अतएव इस पूर्वोक्त प्रश्नोत्तरके दो भेद होने से दो अध्यायों में अर्थात् सत्रह और अठारह अध्यायों में इसका निरूपण किया है यही द्वितीय धान्तका प्रयोजन है॥ अब पन्द्रहवे धान्तप्रश्नगधान्त को उत्तर सहित कहते हैं—"गुणदोषावभिद्दिदो—कर्मणि ज्ञानभक्त्योर्न" इस लिये यहाँभी दोप्रकार हैं यथा—गुण और दोष कर्म में ही होते हैं तथा ज्ञानभक्ति में नहीं इस व्यवस्था से एकप्रकार सिद्ध होता है ? । जैसे यह व्यवस्था हमने कहीहै इसही प्रकार वेदभी कहताहै वही दूसराप्रकार है। इस प्रकार पन्द्रहवाँ उत्तर दोअध्यायों में अर्थात् वीस और इक्कीसवें निरूपण कियाहै ॥ २६ ॥ अब उन्नीसवाँ उत्तर जो कि " मनःशत्रुजयः सम्यक् " है इसका निरूपण चार अध्यायों में है क्योंकि मन का अरि होना ? वलहोना २ भेदहोना ३ और जयहोना ४। यह मनके जय कर ने में चार प्रकार हैं। पृथक् २ होने से चार अध्यायों में निरूपण कियेहैं। अब इसी चारप्रकार का अन्वय कर दिखाते हैं भिक्षु गीत की उक्तिसे मन का शत्रुपना कहाहै यही पहिला प्रकार है ? सांख्यकी उक्ति से मनका वल कहा है यही दूसरा प्रकारहै। गुण लक्षणोंकी उक्तिसे मनका भेद कहाहै यही तीसरा प्रकार है ३। ऐल गीतसे मनका जय निरूपण कियाहै यही चौथाप्रकार है ४। इसहीसे यह उन्नीसवाँ प्रश्न चारप्रकारकाहै। अब भिक्षुगीतसे मनके अरित्वको दिखाते हैं यथा—भिक्षुओंका मनही शत्रुहै यही यहां समर्थन कियाहै यही प्रथम प्रकारहै १ अब सांख्यकी उक्तिसे मनका वल कहतेहैं—इस सांख्योक्तिमें महदादि प्रपञ्चसमूह

प्रतिपादनहै यह समूह मनके पराभव करनेमें सहायकारी है । तात्पर्य यहहै कि— पहिले शत्रु के बल को जानै तदनन्तर निर्भयता सै उस शत्रु का शीघ्रही जयहो जाता है यही दूसरे प्रकार का भाव है २ ॥ अब गुण लक्षणकी उक्ति सै मन के भेद को प्रकाश करते हैं—यथा–रज और तम इन दो गुणोंकी वृत्ति से मन अपने की अर्थात् जिसका मन है उस मनुष्य के पराभव को करता है तात्पर्य यह है कि मन मनुष्योंको जीतलेताहै । और सत्व गुण वृत्ति सै और वृत्तियों के (तम और रज से उत्पन्न वृत्तियों के) वशीभूत होनेपर निर्मूल मन रूपी शत्रु को अनायास (सहज) हीसे पुरुष जीत सकता हैं यही तीसरे प्रकार का तात्पर्य है ३ ॥ ऐल गीत की उक्ति सै मन का जय दिखाते है पूर्वोक्त तीनो प्रकारों सै सम्पूर्ण जय की सामग्री को कहकर अब ऐलगीत के प्रसंग सै उस मनकी सामग्री के विजय रूप फल को दिखाते है–ऐल जो पुरुरवाहै वह सैकडों शास्त्रों का विचार कर २ प्रतिद्वंद्वि मन को जीत कर आनन्द को प्राप्त हुआ इसही प्रकार मन का जय होता है यह चौथे प्रकार का विशदार्थ है ४ ॥ जो कुछ यह मन के चार प्रकार प्रतिपादन किये हैं यह बहुतही ठीक और युक्ति युक्तहैं अन्यथा चार अध्यायों का अप्रसंग होगा अर्थात् इस एक प्रश्न का चार अध्यायों में किस प्रकार प्रतिपादन होसकैगा । यह बात वोपदेवजी महाराज ने भलीभांति सुन्दर मन से विचारकर निकाली हैं । यह चारों भेद तेईस चौवीस पच्चीस और छब्बीसमें वर्णन किये हैं ॥ अब यह पूर्वोक्त चार प्रश्न–बारह अध्यायों में वर्णन किये हैं इन प्रश्नोत्तरों की रीति दिखाते है यथा "हेयोपादेयनिर्द्धारः" १ 'कर्मत्यागः शनैः शनैः' "गुणदोषावभिद्धिदौ–कर्मणि ज्ञानभक्त्योर्न" ३ मनः शत्रुजयःसम्यक्" ४ यह चारों उत्तर बारह अध्यायों में कहेहैं । और (बारह उत्तर इसही के सँस्कृत टीके में देखलेने) पांच अध्यायों में वर्णन किये हैं । और छः उत्तर (यहभी सँस्कृत टीके में लिखे हैं इसही से दुबारा यहां नहीं लिखे) छः अध्यायों में निरूपण कियेहैं । इस पूर्वोक्त गणनासै बाईस प्रश्न और बाईसही उत्तर–तेईस अध्यायों में लिखे हैं यही इसका भाव है ॥ २७ ॥ २८ ॥ (प्रश्न) एक अध्याय में एक प्रश्न, दूसरेमें दूसरा इसही प्रकार बाईस अध्यायों में बाईस प्रश्न क्यों नहीं निरूपण किये अर्थात् एक प्रश्न में चार अध्याय इत्यादि विषमता क्योंकरी (उत्तर) सत्संगासंग १ (इस पदोंकी व्याख्या पहिलेही करदी दुबारा करनेपर पुनरुक्ति होती है) साधु २ भक्ति ३ इन तीनो प्रश्नों का एकही संगत्याग अर्थात् संसार को छोड साधु होकर भक्ति करना ही विषय है विषय और विषयी यहां अंग और अंगीके समान एकही स्थान नें स्थित

होने चाहिये अर्थात् यह तीनों प्रश्न एक विषय होने से एकही अध्याय में कहे हैं। यही पहिले मेलहोने का उत्तर है ॥ विषय में प्रवृत्त होना १ और हंस सनन्दादिकों का संवाद २ इन दोनों प्रश्नों का गुणचित्तोभयत्याग अर्थात् विषयों का त्यागन और मन का वशीभूत करना यह दोनो का एकही प्रसंग है इसही कारण यह दोनो प्रश्न एकही अध्याय में कहेहैं यही इसकाभाव विद्वानों को समुझना योग्य है यही दूसरा मेल है । व्यभिचार शून्य भक्ति करनी १ और ध्यान का प्रकार २ यह दोनो उत्तर भक्ति के दृढ रूपी एकही विषय में आजाते हैं इसही से इन दोनों कोभी एकही अध्याय में वर्णन किया है यही इसका तात्पर्य पण्डितों को चिन्तवन करना चाहिये यही तीसरा संगम है ॥ "ज्ञानादीनां" १ "यमादिवन्" २ इन इन दो प्रश्नों के "द्वेहेयेद्वेउपादेये" इस उत्तर से नैष्कर्मताकी सिद्धि होती है अर्थात् यह दोनों निष्काम्य कर्म के प्रसंग में आजाता है इसही से यह दो एकही अध्याय में वर्णन किये हैं यह चौथा मेलन है ॥ तत्वों की संख्याकी व्यवस्था १ पुरुष स्वतः सिद्ध है और प्रकृति परतः सिद्ध है २ मनही के प्रसंग से अज रूपी परमात्मा कों देह का योग और वियोग होता है ३ इन तीन प्रश्नोत्तरों का तत्व ज्ञान में उपयोग है इस लिये यह तीनों एकही अध्याय में वर्णन किये है यही पांचवा मेलनहै इन पांचों विषयक मेलनों का प्रकार श्रीव्यासदेवजी महाराज नें कोमल बुद्धि वाले पुरुषों के ऊपर अनुग्रह करके और भली भांति चित्तमे स्थिर कर दिखाया है यही इस श्लोकका विशदार्थ और पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर जानों ॥ २९ ॥

(संस्कृतार्थः (एवं प्रश्नान् तदुत्तराणि च कथयित्वाऽधुना चतुर्णां भाग्यप्रश्नानां भेदान् वदिष्यन् आद्यप्रश्नानाह गुरुभिरित्यादिसार्द्धश्लोकेन—(आद्यं) सप्तप्रश्नोत्तरम् (चतुर्द्धा) चतुर्भिरध्यायैर्वर्णितमित्यर्थः तत्र (पञ्चविंशत्या गुरुभिः) पंचविंशतिसंख्याकानां गुरूणां प्रसंगेन (आत्म तत्वपरीक्षणं) आत्म तत्वपरीक्षायाम् (अष्टनवाष्टाभिः हीनमध्योत्तमैः) पूर्वं अष्टकं हीनः मध्यनवकः मध्यमः उत्तराष्टकस्तूत्तमः इति पंचविंशतिगुरूणां भेदैः हेतुभूतैः (त्रिधा) प्रकारत्रयं ज्ञातम् (आत्मतत्वपरीक्षायाम्) किंचिदनात्मतत्वं तत्परीक्षणे तु (एकधा) एकः प्रकारः अत एव लोके तत्वपरीक्षणे सप्तमाष्टनवमेषु अध्यायेषु अष्ट, नव, अष्टेति क्रमादुक्ता गुरवो ज्ञेयाः। आत्मतत्वपरीक्षायान्तु एकधा सा चोक्ता दशमेऽध्याये इत्थं 'देहात् देव निर्द्धारः' इत्युक्तं चतुःप्रकार तया चतुर्भिरध्यायैरुक्तमिति भावः॥ अधुना द्वादशं प्रश्नस्यान्तं सोत्तरमाह "कर्मत्यागः शनैः शनैः" इति तच्चोत्तरं द्विप्रकारकम्। ऋणऽनृणिनो द्वयोराश्रमयोर्भेदात् (द्वादशम्) उत्तरम् (द्विधा) तत्र ऋणिनौ ब्रह्मचारि गृहस्थौ ऋणत्रयं प्रथमं ऋषिऋणम् १ देव ऋणम् पितृ ऋणंच ३॥ पूर्वं विंशति वर्षैः पंचविंशतिवर्षैर्वा वेदशास्त्राध्ययनेन ब्रह्मचर्याश्रमस्ततो ब्रह्मचारी ऋषीणामृणान्मुक्तो भवति। अवशिष्ट ऋणद्वयेन च गृहस्थः यथा च देवानामृणतोः यज्ञादिकर्मसाधनैः गृहस्थोऽनृणी जायते। तौ च सन्तानोत्पादनतः "पितरो जलमिच्छन्तीति प्रमाणात्" अञ्जलिप्रदान श्राद्धादिकर्मणा गृहस्थेन पितृणां च ऋणत्याः क्रियते अनृणिनौच यतिवनस्थौ तौ ऋणत्रयमपाकृत्य स्वाश्रमापिना-

वित्यर्थः अतएवेतदुत्तरं सप्तदश ष्ट दशयाध्याययोर्वर्णितं मिति द्वितीयं धान्तं पदमिति ॥ इदानीं पंच दशं ध्यायस्यगान्तं सोत्तरमुच्यते "गुणदोषाभिद्भिदा कर्माणि ज्ञानभक्त्योर्न" इति कृत्वा प्रश्नद्वयम् (व्यवस्था इति तथा वेदः अपि इति) तस्य च गुणदोषो कर्मण्येव न ज्ञानभक्त्योरिति व्यवस्थाया एकः प्रकारो जातः यथा च इयमस्माभिर्व्यवस्थ‌उक्ता तस्मात्तथैव वेदाख्येवमेव कथयति इति द्वितीयः प्रकारः इति भेदद्वयेन (पंचदशम्) पचदशमुत्तरम् (द्विधा). विंशैकविंशयोरध्याययोः प्रतिपादितमिति ॥ २६ ॥ अथानविंशमुत्तरं 'मनः शत्रुजयः सम्यक्" इति चतुर्भिरध्यायैर्मनसोऽरित्वाद् चतुर्भेदात्प्रकारचतुष्टयमुक्तम् । भिक्षुगीतस्य उक्त्या मनसः अरित्वमुक्तम्, सांख्यस्य उक्त्या मनसः बलमुक्तम्, गुणलक्ष्मैलगीतयोः द्वयोरर्थात् गुणानां लक्षण तस्य उक्त्या मनसः भेद उक्तः ऐलगीतस्य उक्त्या मनसः रणे जयः प्रोक्तः एवं ऊनविंशं चतुर्द्धा इत्यन्वयः तत्र (भिक्षुगीतस्य) तन्नामकस्येश्वरस्तुति विशेषस्य (उक्त्या) कथनेन (मनसः) चेतसः (अरित्वम्) शत्रुत्वम् (उक्तम्) कथितम् भिक्षूणां हि मन एव शत्रुरिति समर्पितम् १ (सांख्योक्त्या मनसो बलमुक्तम्) तत्र तु महदादिप्रपञ्चसमूहः प्रतिपादितः स च मनः पराभवे सहायकत्वात् बलमित्युक्तम् । मनःसम्बन्धित्वञ्चास्य तत्त्वज्ञानेन पूर्वं शत्रुबलज्ञानं कृत्वा तदनुनिर्भयतया पुरुषस्य कस्थितो जयो भवतीति भावः २ (गुणलक्षणोक्त्या मनसो भेदमाह) रजस्तमोगुणवृत्त्या मनः स्वकीयस्य पराभवं करोति सत्वगुणवृत्त्यातु वृत्त्यन्तराणां वशीभूते सति निर्मूलो मनःशत्रुः अनायासेनैव पुरुषेण जेतुं शक्यः इति तात्पर्यार्थः । ३ ।—(ऐलगीतोक्त्या मनसो रणे जयः प्रोक्तः) एवं पूर्वोक्तैः प्रकारैः समग्रां जयसामग्रीं मुक्त्वा ऐलगीतप्रसङ्गेन तस्याः विजयरूपफलमुच्यते—ऐलो हि पुरूरवाः स च विचारसहस्रैः प्रतिद्वन्द्विनं मनो निर्जित्यानन्दमाप्तवान् "नैतस्मिन्स्ततोऽप्येव सर्वस्यालोकनिःस्पृहः । मुक्तसंगो महीमेतामात्मारामश्चचारह' इत्युक्तत्वात् इति विशार्थः ४ यदिदं चेतसः प्रकारचतुष्टयं प्रतिपादितं तद्वस्तुतो निश्चिततममेव अन्यथाख्यान चतुष्कस्याऽप्रसक्तिः स्यात् तदेतद्बोपदेवाचार्येण सुविचारेण चेतसा विचिन्त्य चोक्तमितिभावः। तच्च भेदचतुष्टयम् त्रयोविंशादिषु चतुर्षु अध्यायेषु कथितम् एवमुक्तरीत्या (चतुर्भिरुत्तरैः) हेयोपादेय निर्द्धारः १ कर्मत्यागः शनैः शनैः २ गुणदोषाव भिद्भिदौ—कर्माणि ज्ञानभक्तयोर्न ३ मनः शत्रुजयः सम्यक ४ इत्युत्तरैः (द्वादश) द्वादश संख्यका अध्याया भवन्ति (द्वादशभिः उत्तरैः) स्वप्ने सुप्तप्रबुद्धवत् १ मिथः कृष्णकथासक्ताः २ प्रेम्णैव हरिदासता ३ रजः संमिश्रसत्वता ४ गुणचित्तोभयत्यागः ५ भक्तिरव्यभिचारतः ६ ६ अरूपचिन्तनंरूपैः ७ द्वेहेयेद्वे उपादेये ८—९ सा सा संख्या प्रकल्पनात् १० स्वतःसिद्धः पुमान्नान्यत् ११ मनोगंत्राभिमान्यजः १२ इत्युत्तरैः । (पञ्च) पञ्चाध्याया भवन्ति (षड्भिः) स्वस्टष्टानुप्रविष्टोसौ १ ध्यातुर्ध्येयसमानता २ तत्र नत्रोत्कटं सत्वम् ३ प्रतिमादिष्वजार्चनम् ४ पुमान् प्रकृत्यो पगूढः ५ विश्वमूर्तोशपूजनम् ६ इतिषड्भिरुत्तरैः । (षट्) षट्संख्यका अध्याया जायन्ते (ततः) इतिगणनात् (त्रयोविंशतिः) द्वाविंशत्युत्तराणि त्रयोविंशत्यध्यायाः स्युरितिभावः ॥ २७ ॥ २८ ॥ ननु त्रयोविंशतिसंख्यकेष्वध्यायेषु प्रत्येकमध्याये एकैक एव प्रश्नः तथैवोत्तरं कथन्नकृतं किं वैषम्येणेति संप्रश्नस्य तत्रोत्तरयति निःसंगत्वे इत्यादिना (त्रिद्विद्विद्वित्रि मेलनम) त्रयाणां मेलनं द्वयोर्मेलनम, द्वयोर्मेलनं द्वयोर्मेलनं त्रयाणांमेलनमित्यर्थः । अथ च कस्मिन् कस्मिन् विषये कस्य कस्य मेलनं तत्स्फुटतया दर्शयति तत्र हि (निःसंगत्वे) संगत्यागे(उपयोगात्) समर्थत्वात(त्रयाणाम्) सत्सङ्गासङ्गसाधुभक्ति प्रश्नानां अर्थात् सत्सङ्गा सङ्गयोः १ सतां २ भक्तेः ३ इति त्रिसंख्यकानां प्रश्नानामेकप्रसङ्गतया मेलनं कृतमितिसुधीभिर्विभाव्यम ॥ (गुणत्याग)—गुणाः विषयाः तेषां त्यागे (द्वयोः उपयोगात) प्रश्नयोः उपयोगात् द्वियोर्मेलनम अर्थात विषयासक्तौ दूषणे दृष्टेऽपि पुनस्तस्मिन्प्रवर्तनमत्र को हेतुः रजः संमिश्रसत्वता इत्येकस्य प्रश्नोत्तरस्य, हंससनन्दादि संवादस्तु

गुणानि [illegible] इन्द्रियविषयेषु [illegible] ॥ ([illegible]) अथ [illegible] ॥ ([illegible]) [illegible] ॥ ([illegible]) [illegible] प्रकृतिस्तु परतःसिद्धा [illegible] इति [illegible] विवचनीयम् ॥ अतएव विदुषा [illegible] इति विशदार्थः ॥ २९ ॥

(मू०) तद्धेतुष्वपिनिष्कम्पो (१)—निःसंगो (२) छिद्रलेपकः (३) ॥
विशोधको (४) मलत्यागी (५) त्यक्ताविक्रियया (६) भिदः (७) ॥ ३० ॥
निःस्नेहो (८) दिष्टभुक् (९) क्षोभहीनो (१०) रूप मन्दोभितः (११) ॥
सारग्राह्य (१२) स्पर्शमूढो (१३) निर्लोभो (१४) गीतवंचितः (१५) ३१
रसामूढो (१६) विमुक्ताशो (१७) ऽपरिग्राह्य (१८) भिमानधुक् (१९) ॥
एकः (२०) एकमना (२१) गुप्तसिद्धांका (२२) धृतनिश्चयः ॥ ३२ ॥
ईशस्यैकस्यैकर्तृत्वे (२३) ध्यातुर्ध्येयात्मनास्थितो (२४)
देहास्वत्वेच (२५) पुरुषः क्रियते गुरुभिः क्रमात् ॥ ३३ ॥

(भाषार्थ) -- जैसे दुष्टोंसे पीड़ादीहुई पृथ्वी चलायमान नहीं होती इसी प्रकार दुष्ट जनों से पीड़ादिया हुआभी मुनि -. अपने शास्त्रोक्त मार्गसे चलायमान नहो यद्यपि अनेक प्रकारकी भूमियोंसे अनेकशिक्षालीहैं परन्तु यह शैल रूप भूमिसे परोपकारार्थ सर्व व्यापारवत्ता, और वृक्षरूप भूमिसे तो परोपकार के लियेही जन्म होना यही दो स्थूलर बातोंको यहाँ पृथिवी रूपी पहिले गुरु से निष्कम्पतारूप शिक्षासमुझनी ॥ (१) अब दूसरे गुरुवायुने जो शिक्षादी है उसको कहते हैं .. यथा वायु स्थूलरीति से दो प्रकार का है १ एक प्राण २ दूसरा बाह्य । जैसे प्राणवायु उदरभरने मात्र से ही प्रयोजन रखता है किन्तु विषयादिको से नहीं इसी प्रकार मुनि कोंभी होना चाहिये । अथवा जैसे बाह्य वायु सुगन्ध तथा दुर्गन्ध में घूसताहुआभी उस सुगन्ध दुर्गन्ध में आसक्त नहीं होताहै इसी प्रकार योगीभी विषयोंमें प्रवेश करताहुआभी उन विषयोंमें आसक्त नहो यही निःसंगतारूपी दूसरे वायुरूप गुरुकी

शिक्षाहै (२)॥अवजो आकाशसे सीखाहै उसको निरूपणकरैंहैं—यथा—मुनि-आकाश की नाई—देहान्तर्गत आत्माको अच्छेद्य, अभेद्य जाने अथवा वायुसे प्रेरेहुए मेघों सै आकाश छुआनहीं जाता तथैव देहादि गुणों से स्पृश्यमान आत्माभी नहीं छुआजाता इस प्रकार अच्छेद्याभेदकता तीसरे आकाश रूपी गुरूसै सीखी है (३)॥ अव जो कुछ जलसे शिक्षा प्राप्तकी है उसेवर्णन करैं हैं यथा—स्वच्छ गुणद्वारा देखने सै, माधुर्य गुणद्वारा पीने आदिसै, तथा स्निग्धपवित्र इत्यादि गुणद्वारा कीर्तनकरने सै जैसे जल—पवित्र करैं है इसीप्रकार मुनि कोभी होना योग्यहै यही विशोधकता चौथे जल रूपी गुरू सै सीखी है (४)॥ अब अग्निकी शिक्षा दिखाते हैं—तेजस्वी, प्रदीप्त और सर्व भक्षकभी अग्नि—मलको ग्रहण नहीं करता। किञ्च—कहीं गुप्त और कहीं कुण्डादिकों में प्रत्यक्षहोकर दूसरेकी इच्छासै हविको ग्रहणकर दाताके भूत भविष्यत् पापोंको दूरकरता है इसी प्रकारका मुनिकोभी होना उचित है यही निर्मलता पाँचवें अग्नि रूपीगुरू से सीखी है (५)॥ अव चन्द्रमाकी शिक्षा कहते हैं—जैसे कलाओंकी क्षय और वृद्धि होती है किन्तु चन्द्रमा की नहीं इसी प्रकार जन्म सै लेकर श्मशान पर्यन्त देहके विकार होते हैं किन्तु आत्माके नहीं—यही निर्विकारता—छटे चन्द्रमा रुपी गुरूसै सीखी है (६)॥ अव सूर्यसे प्राप्त शिक्षाको प्रकाश करे हैं—जैसे सूर्यभगवान्—अपनी किरणों से ग्रीष्मऋतु में जलको ग्रहण करैं है तथा वर्षाऋतु में उसी जलको वर्षा देते हैं इसी प्रकार योगीभी इन्द्रियों सै विषयों को यथा समय ग्रहण करै पुनः याचकके प्राप्त होने पर उस पदार्थ को देभीदे। अथवा सूर्य भगवान् जैसे जल के दूध के मदिरा आदिके घडों में भिन्न २ उपाधि सै भिन्न २ से मालूम होते हैं परन्तु वह एकही हैं इसी प्रकार मुनिभी अपनेको प्रकटकरै यही भेद शून्यतारूपी शिक्षा सात में सूर्यरूपी गुरूसे सीखी है (७)॥ ३० ॥ अब कपोत अर्थात् कवूतर सै प्राप्तशिक्षा का प्रकाशकरैं हैं—किसी पदार्थ में तथा किसीके साथ अत्यन्त स्नेह और संग न करै यदि करैगा तौ कवूतरकी नाई दुःखको प्राप्त होगा—यथा—किसी वनमें कोई कवूतर घोंसला बनाकर वडे प्रेमसे कवूतरी के साथ रहताथा परस्पर संयोग सै कवूतरी के अंडे फिर बच्चेभी पैदा होकर फिरने लगे एकसमय प्रेमवश वह कवूतर और कवूतरी अपने बच्चों के लिये दानालेने गये थे उसी अवसर में किसी लुब्धक ने आय घोंसले के धोरे जाल फैलाय उन बच्चों को पकडलिया उसी वक्त कवूतरी दानेको लाती हुई अपने बच्चों को जालमेंफंसादेख दुःखित हो अपने आप भी उसीजाल में जाफंसी, तबही कवूतर ने अपने वालक और स्त्री को फंसा देख विलाप करता २ स्नेह वश वह भी उसही जाल में फस नष्ट हुआ—इसी लिये मुनि को अति स्नेह और संग न करना यही आठवें कपोतरूपी गुरू से सीखा है

(८) ॥ इन पचीस गुरुओंके हीन, मध्यम और उत्तम यह तीनभेद पहिले कहआये उन में से यह आठ हीन संज्ञक प्रथम भेद वाले जानने ॥ अब नौ ९ गुरुओंवाले दूसरे भेद का निरूपण करें हैं उन में से पहिले अजगर की शिक्षा को दिखाते हैं सरस नीरस वहुत वा थोडा जो कुछ भाग्यवश मे मिलजाय उसी को खाकर आनन्द रहता है किन्तु अपने आप उद्योग नहीं करता इसी प्रकार मुनि को भी अजगर वृत्ति करनी उचित है—यही नवें अजगर रूपी गुरु से दैवाधीन जीवन सीखा है (९) ॥ समुद्र से प्राप्त शिक्षा कहते हैं=जैसे वर्षा में नदनदियों के जल से वढाहुआ भी समुद्र कुछ ज्यादा खुशी नहीं होता और ग्रीष्मऋतु में सूखता भी नहीं इसी प्रकार पूर्ण और अपूर्ण कामना वाला मुनि नारायण पर होकर न आनन्द को प्राप्त हो न शोच को यही क्षोभ हीनता दश में समुद्ररूपी गुरु से सीखी है (१०) ॥ पतंग की शिक्षा को कहे हैं—अजितेन्द्रिय पुरुष स्त्री आदि को देखकर उस के कटाक्ष आदि भावों से लोभित हुआ नरक में गिरता है किंच यदि मायारचित स्त्री आदिकों में यह पुरुष लोभित होगा तो वलते हुए दीपक में पतंग के समान नष्ट होगा अतः मुनि को ऐसा न होना योग्य है यही पतंग रूपी ग्यारहवें गुरु से रूपाप्रलोभिता सीखी है (११) ॥ भ्रमर की शिक्षा को कहे हैं जैसे भ्रमर सब पुष्पों से सार वस्तु को ग्रहण करता है इसही प्रकार मुनि भी वेद आदि शास्त्रों के सारको ग्रहणकरै—यही भ्रमररूप वारहवें गुरु से सारग्राहिता सीखी है (१२) ॥ हाथी से प्राप्त शिक्षाको कहते हैं—जैसे हाथी=हथिनीके स्पर्श से मदोन्मत्त होकर अन्य गजों से मारा जाताहै इसी प्रकार स्त्री के स्पर्शकी इच्छासे और जारों के द्वारा मुनिभी माराजायगा अतःमुनिको ऐसा नहोना चाहिये यही स्पर्श राहित्यता तेरहवें गुरुगज से सीखी है (१३ ॥ सहदकी मक्खी से प्राप्त शिक्षाको दिखाते हैं—मुहालका तोडने वाला जैसे वहुत दिनों से इकट्ठे किये हुए सहदरूपी धनको मक्खियों को जलाय उडाय अपने आप ग्रहणकरता है इसी प्रकार धन के इकट्ठाकरने से मुझको भी कोई धनछीन मार कर निकालदेगा यह विचार निर्लोभ होना उचित है यही निर्लोभता मधुलेने वाले रूपी चौदहवें गुरु से सीखी है (१४) ॥ हरिण से प्राप्त शिक्षा को दिखाते हैं—श्रवणेन्द्रिय के स्वाद में लम्पट—हरिण—सुरीली आवाज अर्थात् गति के सुनने से नष्ट होजाता है इसलिये मुनि को चाहिये कि गीत आदि को न सुने यही पन्द्रहवें हरिण नामक गुरु से सीखा है (१५) मत्स्य से शिक्षित का वर्णन करे हैं—अच्छी जिह्वा इन्द्रिय के स्वाद से लोहेके कांटे में लिपटे हुए मांसखण्ड के स्वादवश से धीवरों द्वारा जल से निकाला हुआ नष्ट होता है इसी प्रकार मुनिभी रसयुक्त पदार्थों में आसक्त नहो अर्थात् ओषधि के समान क्षुधा शान्ति के लिये अन्न का भक्षण करै यही नीरसता सोलहवें मत्स्य संज्ञक

गुरू से सीखी हैं (१६) पिंगला नाम वेश्या से जो सीखा है उसका व्याख्यान सहित वर्णन करै हैं—विदेह नगर में पिंगला वेश्या—विषयी जन के रतिस्थान में लेजाने को सुन्दर वेषधर द्वारपर वैठगई आधीरात होजाने पर भी जव कोई धनी पुरुष न आया तौ इसको वैराग्य उत्पन्नहुआ और कहनेलगी कि अब मैं इन तुच्छ मनुष्योंकी इच्छा को छोड़ अपने आत्मामें स्थित उस सच्चिदानन्द का ध्यान करूंगी क्योंकि आशा निश्चयसे दुःख के देनेवाली है और नैराश्यहोने से परम सुख प्राप्त होता है यह विचार परमानन्द को प्राप्त हुई यही विमुक्ताशा सत्रहवें गुरु पिंगला नाम वेश्या से सीखा है (१७) यह नौ गुरू द्वितीय भेदवाले मध्यम संज्ञक हैं ॥ कुरर पक्षी से प्राप्त शिक्षा का निरूपण करैं हैं—एक कुरर पक्षी मांस लेकर आकाश में उड़ा उसको मांस लिये जाता देख और वहुतसारे पक्षी उस से मांस छीनने को दौड़े और उसको चारों तरफ से चोंचों से छेदने मारने लगे ऐसी अपनी दुर्दशा देख उसने मांस को छोड़दिया और सव कटमरे परन्तु यह बड़े सुख को प्राप्त हुआ इसी प्रकार मुनि भी वहुत संग्रह न करे यही अठारहवें कुरर नामक पक्षी से अपरिग्राहकता सीखी है (१८) (प्रश्नः)—निर्लोभता और अपरिग्राहकता एकही है अतः पुनरुक्ति होगी (उत्तर)—संचय के निषेध को निर्लोभता कहे हैं और संचित के त्याग को अपरिग्राहिता यही इन दोनोंका भेदहै अतःपुनरुक्ति नहीं ॥ वालक से प्राप्त शिक्षा को कहते हैं—जैसे वालक को मान और अपमान तथा कुटुम्ब की कुछभी चिन्ता नहीं होती किंतु क्रीड़ा आदि में ही दत्तचित्त रहता और सदासुखी रहता है इसी प्रकार मुनि को भी निरभिमानी होना योग्य है—यही निरभिमानता उन्नीसवें वालकरूप गुरुसे सीखी है (१९) ॥ कुमारीके शिक्षित को कहते हैं—किसी कन्या के यहां पिता के कहीं जाने पर सुसरालिये आये उसने उन के भोजनार्थ धान कूटने के समय हाथ में की शंखकी चूड़िया वजने लगी तभी लज्जाकर एक २ चूड़ी हाथ में रहनदी वाकी निकालदी तव तौ उन चूड़ियों का शब्द न हुआ और उस कन्या ने उन को धानकूट भातकर भोजन जिमाया इसीप्रकार मुनि को चाहिये वहुतों के साथ न रहैं क्योंकि कलह होता है और दो के साथ भी वात चीत होती है इसही से एक २ चूड़ी की नाई स्वयं एकही विचरे—यही एकाकिता कुमारी रूप वीसवें गुरु से सीखी है (२०) ॥ अव वाण वनानेवाले से प्राप्त शिक्षा को कहे हैं—कोई वाण वनाने वाला वाण को दत्तचित्त होकर वना रहाथा उसी समय वड़े वाजे गाजे के साथ राजा की सवारी निकलगई परन्तु इस को कुछभी सिवाय वाण वनानेके मालूम नहुआ इसीप्रकार मुनिभी ब्रह्म में लीन मन होकर द्वैत भावना को छोड़ एकाग्र चित्त होजाय—यही चित्तैकाग्रयता इक्कीसवें

शरकार रूपी गुरु से सीखी है (२१) सर्प से प्राप्त शिक्षा को दिखाते हैं--घर के बनाने से दुःख होताहै ऐसा सर्प मनसे विचार दूसरे के बनायेहुए घर में प्रवेश कर रहताहै और बडा सुखीहोता है तथैव मुनिभी जहां संध्या होजाय वही घर जान निवासकरै और एकजगह घर बनाकर न रहै यही सार्य गृहता सर्परूपी बाईसवें गुरु से सीखी है (२२) मकरीकी शिक्षा को दिखाते हैं— जैसे मकरी अपने उदर मेंसे अनेक से जालेको निकाल दूरतक फैलाय कुछ देरतक उसपर खेलकूद पुनरपि उसको अपने पेट के भीतरही निगलजाती है इसीप्रकार एकही परमेश्वर अपनी मायासे जगत् की रचना और पालनकर ग्रस लेता है इसी लिये मुनि को उचित है कि उसका ऐसा निश्चय कर ध्यान करे—यही एककर्तृका ऊर्णनाभि नामक तेईसवें गुरु से सीखी है (२३) ॥ पेशस्कृत अर्थात् भृंगीनामक कीडे से प्राप्त शिक्षाको दिखाते हैं — भृंगीनामककीडा किसी अन्य जाति के कीडे को लाकर वार२ उसके ऊपर शब्द करता है और उस हीका ध्यान करता २ उस को अपने रूपवाला अर्थात् अपने से रूपरंग वाला मानो दूसरा भृंगी हीबना लेता है इसी प्रकार यह देहधारी जिस २ पदार्थ में स्नेह आदि सेमनको धारण करता है उस २ स्वरूप को ही प्राप्त होताहै यही संगति चौबीसमें भृंगी नामक गुरु से सीखी है (२४) ॥ अब स्वदेहसे प्राप्त शिक्षा का वर्णन करै हैं इन शरीरों के जन्म मरण आदि को देखकर मालूमहोता है कि अपना शरीरभी आत्मा नहीं किन्तु शरीरसे भिन्न और कोई आत्मा है इस प्रकार मुनि को यही अपने देहको देखकर विचार करना उचित है कि इस शरीर में इन्द्रियें भी आत्मा नहीं क्योंकि उन इन्द्रियों के नाश होने परभी पहिले देखी सूंघी तथा स्मरण करी हुई वस्तुकाभी उसही प्रकार चिन्तवन होता है इस प्रकार शरीर आदिसेभिन्न नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त आत्मा है (इस प्रसंग का बहुत विशद और विस्तृत वर्णन हमारी बनाई हुई न्यायसिद्धान्तमुक्तावली की भाषा में है यहाँ अधिक विस्तारके भयसे नहीं लिखा यही देहरूपी पचीसवें गुरुसे सीखा है (२५) यह अन्तके तीसरे भागवाले उत्तम संज्ञक आठगुरु हैं अर्थात् यह तीन भाग मिलकर २५ पचीस गुरु होते हैं ॥ ३२ ॥

(संस्कृतार्थः)—एवं प्रश्नोत्तरभेदान् विचार्य पंचविंशतिगुरुभ्यः यत् शिक्षितं तदाह तद्धेतुत्वेत्यादि चतुर्भिः श्लोकैः । अत्र पंचविंशतेः प्रथमान्तानां गुरुपदं क्रियते गुरुभिः क्रमादित्येवम् सहान्वयः कार्यः ।—(तद्धेतुत्वेऽपि निष्क्रमः)—यत्र तद्धेतुषु कस्मात्तेषु सर्वस्थानि गुणान् निष्कम्पो धारणया गुरुणा क्रियते धरणी हि प्राणिभिः तिरस्कृताऽपि न क्रमते इति निष्क्रमता प्रथमेन पृथिव्याः गुरुणा शिक्षितम (१) ॥ (निःसंगः) यथाहि पवनः सर्वत्र सर्वत्र प्रचलन्नपि सुगन्धि दुर्गन्धि युक्तपदार्थेषु नसज्जति तथैव यतिर्भोगान् भुंजानोऽपि नतेषु सज्जतीति भावः इति निःसंगता

द्वितीयेन वायुना गुरुणा शिक्षिता (२) ॥ (अच्छेदलेपकः)—यथाकाशश्चराचरैर्भावैः संगि-
त्वाऽपि नयथार्थतो विच्छिद्यते यथाच मेघाद्यैर्गन्धिस्त न लिप्यते एवमात्मान अच्छेदमलेपच
पश्ये दित्यर्थः इति अच्छेदलेपकता तृतीयेन नभसा गुरुणा शिक्षितम् (३) ॥ (विशोधकः)—
यथा स्नातास्तन्धसिष्टगुणैर्जलानिक्षण स्पर्शनात्पानादेव पुनन्ति तथा मुनिरपि पुनीयात् इति विशोधकता
चतुर्थेन जले गुरुभिः शिक्षिता (४) ॥ (मलत्यागी)यथा—तेजस्वीत्यादिगुणवान्हः सर्वभक्षोऽपि
नमलमंगीकरोति तथा मुनिर्हविश्यादाविदयं भुंजानोऽपि ज्ञानवलात्तद्दोषैर्युज्यते इति निर्मलताऽग्नि
नापञ्चमेन गुरुणाशिक्षिता (५) विक्रियरहितः) यथाहिचन्द्रः क्षयवृद्ध्यादिभिर्न विक्रियते
तथा गर्भारम्भश्मशानान्तैः षोडशदेहसंस्कारैर्मुनिर्न विकुर्वीत इति निर्विकारत्वं षष्ठसङ्ख्यकेन चन्द्रसमा
गुरुणा शिक्षितम् (६) ॥ (अभेदः) यथाच सूर्यः उपाधिवशात् भिन्न इवनतु यथार्थतो भिन्नः
तथात्मेत्यर्थः इति भेदशून्यता सप्तमेन रविणा गुरुणा शिक्षिता (७) ॥ ३० ॥ निःस्नेहः)यथा
हि कपोतः स्त्रीपुत्रस्नेहप्रसंगान्नष्टः तथा स्वयं न भवेदिति व्यतिरेकदृष्टान्तः इति निःस्नेहताऽष्ट-
मेन कपोतेन गुरुणा शिक्षिता (८) एतेऽष्टौ गुरवाहीनसंज्ञकाः प्रथमखण्डस्थाः ज्ञेयाः ॥ (दिष्ट
भुक्) यथाऽजगरोहि भाग्यवशात् यल्लब्धं तद्भुंक्ते न तु स्वयं प्रयतते तथा मुनिःस्यादितिभावः
इति नवमेनाजगरेन गुरुणा दैवभुक्ता शिक्षिता (९) ॥ (क्षोभहीनः) यथा हि समुद्रः नदनदी
जलागमनेन वर्षासु न वर्द्धते न च ग्रीष्मे तदा शुष्कतया शुष्यति तथा कामानां प्राप्तापाप्ते
मुनिःस्यादित्याशयः इति दशमेन सागरेण गुरुणा क्षोभराहित्य शिक्षितम् (१०) ॥ (रूपाप्रलो-
भितः)—यथा हि पतंगः प्रदीप्त प्रदीप रूपलोभात् नश्यति तथा कामिन्यादि रूपदर्शनान्मुनिर्नश्यति
तस्मात्तथानस्यादिति व्यतिरेकेण व्यज्यते इत्येकादशेन पतंगेन गुरुणा रूपाप्रलोभिता शिक्षिता ।
(११) ॥ (सारग्राही)—भ्रमरो हि सर्वकुसुमेभ्यः सारं गृह्णाति तथा सर्वेभ्यो वेदादि सच्छास्त्रेभ्यो
मुनिर्गृह्णीयात् इति द्वादशेन भ्रमरेण गुरुणा सारग्राहित्वं शिक्षितम् (१२) ॥ (अस्पर्शमूढः)
करी यथा करिण्याः स्पर्शमूढः गजान्तरैर्हन्यते तथा कान्तास्पर्शव्याजैर्मुनिस्तस्मात्तथा न स्यादि-
त्यादिव्यतिरेकः इति त्रयोदशेन गजेन गुरुणा स्पर्शराहित्यं शिक्षितम् (१३) ॥ (निर्लोभः)—
मधुहा हि मधुमक्षिका निरस्य स्वयं मधु गृह्णाति तथा धनलब्धं मामपि कश्चिन्निरस्यतीति विचार्य
मुनिर्निर्लोभो भवेत्—इति चतुर्दशेन मधुहा गुरुणा निर्लोभता शिक्षिता (१४)—(गीतवञ्चितः)
हरिणोहि श्रवणेन्द्रियस्वादकष्टात् गीतप्रसंगान्नष्टो भवति तेन मुनिर्गीतं न शृणुयात् इति गीत-
वञ्चिता पंचदशेन हरिणा गुरुणा शिक्षिताऽत्रापि व्यतिरेकः (१५) ॥ ३१ ॥ (रसामूढः)—
मत्स्योहि रसनेन्द्रियस्वादतया मत्स्यभेदनगन्त्रोथितमांसास्वादनवशात् धीवरैर्जलान्निर्यापि-
तो नष्टो भवति तथा मुनिर्न रसवशाद्दर्थैर्व्यासक्तो भवेत्—इति नीरसता षोडशेन मत्स्येन गुरुणा
शिक्षितेति व्यतिरिच्यते (१६) ॥ (विमुक्ताशः) काचित्पिंगला वेश्याहि विषयिजनागमन
संकल्पाशां विमुच्यासारसंसार ता विरक्ताभूत् तथा मुनिः स्वयं स्यादित्यर्थः इति विमुक्ताशत्वं
पिंगलया वेश्यया सप्तदशेन गुरुणा शिक्षितम् (१७) एते नव मध्यमा गुरवो द्वितीयखण्डस्था
बोध्याः ॥ (अपरिग्राही)—कुररोहि सामिषः कुररान्तरैस्ताड्यमानः मांसं त्यक्त्वा निर्भयोऽभूत्
तेन मुनिर्निरामिषः स्यात् (प्रश्नः) निर्लोभताऽपरिग्राहितयोः एकविषयतया कस्तयोर्भेदः
(उत्तरम्) निर्लोभतायां संचयनिषेधः अत्र तु संचितत्याग इत्यपौनरुक्त्यम् । इत्यपरिग्राहिता
ऽष्टादशेन कुररेण गुरुणा शिक्षिता (१८) ॥ (अभिमानमुक्)—यथा मानापमानाभ्यां रहितो
बालकः सदैव सुखी भवति तथैव निराभिमानी मुनिस्स्यात् इति निरभिमानता बालकेनैको-
नविंशकेन गुरुणा शिक्षिता (१९) (एकः) कुमारीकंकणानिहि कलहान्तरप्रसंगात् सर्वचंचल
मभूदितिज्ञात्वाकुमार्या एकमेव स्थापितं तदा नीरवता निश्चलतासीत् तथा कलहान्तरदोषप्रसंगात्

अल्पजनसंगं त्यक्त्वा मुनिः स्वयमेकाकी स्यात् इत्येकाकिना कुमारीकङ्कणेन विंशतितमेन गुरुणा शिक्षितः (२०) ॥ (शरकृतः)—यथा हि बाणनिर्माणे एकाग्रचित्तो शरकारः सर्वान् गच्छतोऽपि नृपं नावलोकयत् एवं मुनिरपि ध्यानं समाधिस्थः सन् नावलोकयेत् तस्मात्सैवएकाग्रचित्तभवः इति निश्चयेन शरकृता एकविंशतितमेन गुरुणा शिक्षितम् (२१) ॥ (गृहासिद्धौ सर्पः)—गृहं विना अपि यथा सर्पः परगृहे वास सुखमास्ते तथा मुनिरपि स्यात् इति सर्पेण गुरुणा द्वाविंशतितमेन शिक्षितम् (२२) ॥ (ईश्वरस्य एक एव तु जगत्कर्तृत्वे ऊर्णनाभिः)—ऊर्णनाभिर्हि स्वहृदयादूर्णातन्तून् बहिर्निःसृत्य विहृत्य सायं क्रीडति पुनर्ग्रसते एवमेव परमेश्वरः स्वमायया जगत् सृजति पाति ग्रसते च नान्य इति मुनिरपि भूयोनिश्चयः स्यात्—इत्यूर्णनाभिना त्रयोविंशतितमेन गुरुणा शिक्षा कर्तुं न इष्टा (२३)—(ध्यानतन्मयतायां मुनिनिश्चयः)—यथा हि पेशस्कृता कीटः स्वकुड्यां प्रवेशितः पूर्वरूपं परित्यजन् तद्रूपतां याति तथा मुनिरपि भृङ्गवद्ध्यानात् तद्रूपतां प्राप्नोति मुनिनिश्चयः स्यात् । इति चतुर्विंशतितमेन गुरुणा भृङ्गिणा सुगमतिस्य शिक्षितम् (२४)—(देहासक्तत्वे मुनिनिश्चयः)—स्वशरीरेण स्वशरीरे स्वस्वामित्वगोपनीय ज्ञानं नश्वरं शरीरं हि जन्ममरणयोगात् इति पञ्चविंशतितमेन देहेन गुरुणा "देहमिदं नश्यति" शिक्षितम् । ... खण्डश्या उक्ता बोध्याः ॥ ३२ । ३३ ॥

(मूलम्) पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतंगो मधुकृद्गजः ॥ ३४ ॥
मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः ।
कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३५ ॥
एते मे गुरवो राजन् चतुर्विंशतिराश्रिताः ।
उपायत्वेंतरंगास्ते क्रमात् त्रिस्कन्धता ततः ॥ ३६ ॥
देहस्य पृथगुद्देशः श्रेष्ठ्यान्निर्दिष्टता कृतात् ॥ ३७ ॥
स्वात्तरात्पृथगध्याये द्वितीयैकोनविंशकौ ।
प्रश्नौ प्रागुत्तरेणाऽपि योगं बोधयितुं कृतौ ॥ ३८ ॥

(भाषार्थ)—अवकौन २ गुरुहैं उनका वर्णनकरें हैं—पृथिवी १ वायु २ आकाश ३ जल ४ अग्नि ५ चन्द्रमा ६ सूर्य ७ कबूतर ८ अजगर ९ समुद्र १० मुहालकी मक्खी १२ हाथी १३ भ्रमर १४ हरिण १५ मच्छ १६ पिंगला १७ पतंग ११ कुररपक्षी १८ बालक १९ कुमारी २० बाणकर्ता २१ सर्प २२ मकरी २३ भृंगी २४ ॥ ३५ ॥ हेराजन् यदु—यह मेरे चौवीस गुरुहैं और इनपूर्वोक्त "संगत्याग" इत्यादि उपायों में अन्तरंग हैं और इनमें पहिले आठ हीन हैं दूसरे नौ ९ मध्यम हैं

इत्यादिनाभगवता कृष्णेनैकादशाध्याये [illegible]—पुनरपि—[illegible] सत्सु " [illegible] ,, इत्यादिनाकृतः [illegible] " [illegible] ,, इत्यादि [illegible] [illegible] [illegible] प्रश्नः [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बोधयितु प्रतिपादितम् ॥ ३८ ॥

(मूलम्) प्रथमः पंचमः षष्ठो दशमोऽथ त्रयोदश ॥
एकविंश इतिप्रश्नाः पञ्चोत्थापनपूर्वकाः ॥ ३९ ॥
निःसंगता कथं कीदृक् तन्निरोधश्च येयथा ॥
भक्तेर्यो विषयस्तस्मिन् सत्यन्यस्मिन् रतिः कथम् ॥ ४० ॥
सा कथं भक्तिरूपं किं कथं भक्तिगुणोऽिश्रते ॥
यैर्यैः कामार्थधर्मेषु यैर्योगिभिर्वर्विहिर्भवेः ॥ ४१ ॥
ते कीदृशाः श्रुतिर्भक्तिरा च सूतयः कथम् ॥
कीदृक् भक्तः कथं दोस्थमभिमानश्चवः कथम् ॥ ४२ ॥
किं कर्मज्ञानभक्तीनां सूचितानां पुनः पुनः ॥
सर्वोद्देशसाराणां स्वरूपमिति संगतिः ॥ ४३ ॥
इत्येकादशस्कन्धः ॥

(भावार्थ) – पहिला, पाँचवाँ, छटा, दशवाँ, तेरहवाँ, और उन्नीसवाँ यह छः प्रश्न उत्थापनपूर्वक हैं अर्थात् " त्वंतुसर्वपरित्यज्य " इत्यादि वाक्यों से श्रीकृष्णजी ने उद्धव जीकी आकांक्षा को उठाकर यह छः प्रश्न कराये हैं और बाकी के सोहल प्रश्न हैं वेह श्रीउद्धवजी महाराजने अपनी बुद्धिसेही कियेहैं यही इसश्लोक का तात्पर्य है ॥ ३८ ॥ अबचार श्लोकों से बाईस २२ प्रश्नोंकी संगति का निरूपण करते हैं (निःसंगता कथम्) हेभगवन् संग त्याग किसप्रकार होसक्ता है इस उद्धवजी के प्रश्नका श्रीकृष्णने यही उत्तरदिया है कि हेउद्धव हेय और उपादेयवस्तुका निश्चय करना ही संगत्याग में कारण है इसही कारण प्रथम प्रश्न जानना (१) (कीदृक्) फिर उद्धव बोले हे ईश वोह निस्संगताकिस प्रकारकी है श्रीकृष्ण बोले कि हे उद्धव जैसे मनुष्य सोताहुआ उन स्वप्न में देखतेहुए असत् पदार्थों को सत् (सच्चा) मानता है और सोकर उठने पर वेह पदार्थ असत् (झूंठ) प्रतीत होते हैं इसीप्रकार संसार असत् है और ब्रह्म सत् है इसतरह का जो विचार करना है यही निःसंगता का प्रकार है—

इस वास्ते इस दूसरे प्रश्नका कथन है (२)। (तन्निर्वाहश्चयैः)। पुनः उद्धव पूँछने लगे हे नारायण ! जो इस निस्संगता का निर्वाह करते हैं वेह कौनहैं—श्री कृष्ण उत्तरदेते हैं कि मेरेभक्त साधुमहात्मा–इसी कारण तीसरा प्रश्नहै (३)। (यथा)–पुनः उद्धव बोले हेकेशव ! जिसके करने पर निर्वाह होताहै वह क्या वस्तुहै यह सुन कृष्णकहैं हैं कि वहमेरी प्रेमरूपा भक्तिही है यही उत्तर है इसही हेतु यह चौथा प्रश्नहै (४)। अब जहाँ२प्रश्नहो वह उद्धवजी का पूँछनाहै और जहाँ २ उत्तर आवै वह उद्धवजी को श्रीकृष्णने समुझाया है यही सबजगह जानो यथा–(भक्तेर्यो विषयस्तास्मिन् सत्यन्यास्मिन् रतिः कथम्)—(प्रश्न)–भक्तिका जो विषय ईश्वरहै उसको छोडकर इन विषय वासनायुक्त पदार्थों में किस प्रकार प्राणियोंकी प्रीतिहोती है (उत्तर) ईश्वरही प्रति शरीर में जीवरूप से निवासकरताहै और अपनी सकल सृष्टि में अनु प्रविष्ट होरहाहै उसही में प्रीति करनी यह आपकी वातनौ ठीकहै परन्तु जिस समय रजोगुणकी प्रवलता होती है उसही समय इस तुच्छ संसार कोही सार जानलेता है यही इस में हेतुहै—इसही लिये यह पाँच में और छटे प्रश्न युक्तियुक्त हैं (५–६)। (साकथम्) (प्रश्न) ब्रह्ममें ही रतिहो संसार में नहीं वह कौनसा उपायहै (उत्तर) जिससमय विषयोंका त्याग और मन–अपने वशमें होजाताहै तवही ब्रह्ममें प्रीतिहोती है यह उपायहै—यही सातवें प्रश्नकी सुसंगति है (७)। (भक्तितुल्यंकिम्)–(प्रश्न) भक्ति के तुल्य और भी कोई पदार्थ है [उत्तर] भक्ति के तुल्य भक्तिही है औरनहीं=इसी लिये यह अष्टम प्रश्न है (८) [कथं भक्तिर्गुणोज्झिते] (प्रश्न) निर्गुण ब्रह्म में फिर वह भक्ति किस प्रकार करनी (उत्तर) साकार उपासना के द्वारा भक्ति होसक्ती है–यही इस नवम प्रश्नकी संगति समुझनी (९)। (यैर्यैः कामार्थधर्मेषु)—(प्रश्न) काम अर्थ और धर्म के मध्य में किन २ उपायों से निर्गुण ब्रह्म में भक्ति होसक्ती है काम इस पद से यहां अणिमादि आठ सिद्धियों का बोध होता है और अर्थ इस शब्द से बिभूति अर्थात् ऐश्वर्यादि का ग्रहण है तथा श्री कृष्णजी में समर्पित जो प्रेम है वही धर्म है यही तीन प्रश्न हैं (उत्तर) ध्येयवस्तु के साथ ध्यान करनेवाले की जो तुल्यता है वही सिद्धि है, इन्द्र आदिकों में जो सत्व का अधिक होना है वही विभूति है और शनैः शनैः कर्मों का त्यागनाही वर्णाश्रम धर्म है यह तीनों उपाय भक्ति के होने में कारण हैं। इसही से इन तीन प्रश्नों की भक्ति में हेतु होनेसे सुसंगति होसकती है। इसी से यह दशवां ग्यारहवां तथा बारहवां प्रश्न किया है (१०–११–१२) (यैर्मोक्षेन्तर्वहिर्भिर्वैस्तेकीदृशाः) (प्रश्न) जो मोक्ष में अन्तरङ्ग और बहिरंग होनेसे रति को उत्पन्न करते हैं वेहकौन हैं।

(उत्तर) यहां अन्तरंग ज्ञानादिक हैं और वहिरंग यमादिक हैं । ज्ञानादिकों को मोक्ष में साक्षात् उपकारकता है और यमादिकों को तो मोक्ष में आरात् अर्थात् परम्परा से उपकारकता जाननी इसी लिये यह दोनों प्रश्न यहां उपयोगी होते हैं, यह तेरहवें और चौदहवें प्रश्न जानने (१३–१४) । (श्रुतिर्भक्तिपरा) (प्रश्न) वेद किस प्रकार भक्तिपर हैं (उत्तर) वेद में अन्तःकरण की शुद्धि के लिये यज्ञ आदि कर्मोंका विधान है जब अन्तःकरण शुद्ध होगा तो अवश्यही भक्ति होगी इसीसे इस ही संगति को देखकर यह पन्द्रहवां प्रश्न निरूपण किया है (१५) । [स्मृतयश्च कथम्] [प्रश्न] स्मृति किस प्रकार भक्तिपर है [उत्तर] कणाद आदि महर्षियों से प्रणीत सूत्रों को ही स्मृति कहते हैं यह स्मृतियें वेद के तत्वों का भेद स्मरण कराती हैं कोई तत्व हेय [त्याज्य] है और कोई तत्व उपादेय [ग्रहण करने योग्य] इस व्यवस्था के करनेपर सब स्मृतियों का एक भगवत तत्त्व में पर्यवसान [प्रवेश] होता है इसही से यह सोलहवां प्रश्न सुसंगत है [१६] [कीदृकभक्तः] [प्रश्न] भक्त किसको कहते हैं [उत्तर] जो प्रकृति से युक्त पुरुष है वही जीव और भक्त है वही भलीभांति भक्ति करसकता है यही सत्रहवें प्रश्न की संगति है [१७] (कथं दौस्थम्) (प्रश्न) इस भक्त के भक्ति करने परभी पुनः पुनः जन्म मरण आदि क्यों होते हैं (उत्तर) मन यदि विषय वासना की ओर जाता तो विषयाकारहोजाता है ब्रह्मकी तरफ झुकता है ब्रह्मरूप होता है इस प्रकार यह मनही वन्ध मोक्षका हेतुहोकर भक्तजनों के भी मरण आदिको कराता है यही अठारहवें प्रश्नकी संगति है (१८) । (अभिमानक्षयः कथम्) (प्रश्न) — अभिमान किसरीति से दूर होताहै (उत्तर) जब काम आदि शत्रुओंको यह भक्त जीतलेताहै तवहीं निरभिमान होजाता है यही उन्नीसवें प्रश्नकी संगति है (१९) । (सर्वोपदेशसाराणां पुनः पुनः सूचितानां ज्ञानकर्मभक्तीनां किं स्वरूपम्)— (प्रश्न) वार २ कहेगये इन ज्ञान कर्म तथा भक्तिका क्या स्वरूप है अर्थात् क्या ज्ञान का स्वरूप है, और क्या कर्म का स्वरूप है तथा क्या भक्ति का स्वरूप है (उत्तर) प्रकृति से आलिंगन किये हुए पुरुष से यह विश्व निर्मित है और इस ही में ईश्वर व्याप रहाहै इसप्रकार जो जानना है यही ज्ञान का स्वरूप है । शिव, केशव और शक्ती इत्यादि की प्रतिमा बनाकर जो पूजन करना है अर्थात् यह पूजनभी षोडशोप चार आदि वेदकी विधि से होता है यही कर्म है । विराट् मूर्ति सर्व व्यापी ईश्वर का पूजन अर्थात् सर्वत्र ईश्वरकी बुद्धि कर उसका आराधन करना ही भक्ति है । (प्रतिमापूजन और साकार उपासना आदि हमने अपने रचे हुए "चौदहरत्न" नामक पुस्तक में अर्थात् १२५ पुस्तकों के सिट में भली भांति वेद

के प्रमाणों से दर्शायी है यह सब बातें उसहीमें से देखलेनी यहाँ हमने विस्तार के भय से वेह सब विषय नहीं लिखे हैं] यह पूर्वोक्त ज्ञान कर्म भक्ति इनतीनों का स्वरूप बीस २० इक्कीस २१ बाईस २२ इनतीनों प्रश्नों में कहा है यही इन तीन प्रश्नों की संगति समुझ लेनीयोग्य है ॥ यह इन बाईस प्रश्नोंकी संगति का प्रकार श्रीमान् विद्वान् बोपदेवजी महाराज ने विद्यार्थियों को तथा पण्डितों के सुख पूर्वक बोध के लिये विशद रीति से दिखाया है (२०–२१–२२) ॥ ४३ ॥

इति एकादशस्कन्धः समाप्तः—शुभम् ॥

दोहा ॥

श्री नारायणदास जी सारस्वत गुण रास ।
तिनकेहिसुतहरिचरणरत बैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
स्कन्धएकादशाविगतलखि बुधजनपावहिंहर्ष ॥

(संस्कृतार्थः) प्रथमः प्रश्नः (संगत्यागे उपायस्य) पंचमः प्रश्नः (जीवविषयकः) षष्ठः प्रश्नः (संसारदोषदृष्टेऽपि पुनस्तत्प्रवर्त्तना) दशमः प्रश्नः (सिद्धयः कति विधाः) त्रयोदशः प्रश्नः (के ज्ञानादयः कथं तेषां निष्पत्तिः) एकविंशः प्रश्नः (कोयमधिष्ठाता संसारे) ॥ इति षट् प्रश्नाः उत्थापनपूर्वकाः "त्वं तु सर्वं परित्यज्य" इत्यादि वाक्यैः कृष्णेनोद्धवस्याकांक्षामुत्थाप्य कारिताः अन्ये षोडश प्रश्नास्तूद्धवेन स्वमनीषयैव कृता इत्यर्थः ॥ ३९ ॥ अथैषां द्वाविंशतिसंख्यकानां प्रश्नानां संगतिमाह निःसंगतेत्यादि चतुर्भिः श्लोकैः । (निःसंगता कथम्) निःसंगता संगत्यागः कथं केनोपायेन भवेदित्येवमर्थं प्रथमः प्रश्नः सा च निःसंगता हेयोपादेयनिर्द्धारेण भवतीति तदुत्तरम् (१) । (कीदृक्)—सा च निःसंगता कीदृशी—यथा स्वप्नदृष्टे पदार्थे सुप्तप्रतिबुद्धौ सक्तासक्तौ एवमात्मनः सक्तासक्ताविति विचार एव निःसंगता रूपेत्येवमर्थं द्वितीयः प्रश्नः (२) । (तन्निर्वाहश्च यैः)—तस्या निःसंगताया निर्वाहश्च यैस्ते के साधवः इत्येवमर्थं तृतीयः प्रश्नः तेऽपि ये कृष्णकथासक्ता इति तदुत्तरम् (३) । (यदा)—ययाऽनुष्ठितया तन्निर्वाहः सा का – इत्येवमर्थं चतुर्थः प्रश्नः प्रेमरूपा भक्तिरित्युत्तरम् (४) । (भक्तेर्यो विषयस्तस्मिन् सत्यन्यस्मिन् रतिः कथम्)—यश्च भक्तेर्विषय ईश्वराख्यस्तस्मिन् सति [अर्थात् ईश्वरे हृदये विद्यमाने सति तं त्यक्त्वा अन्यस्मिन् वैषयिकपदार्थे कथं प्राणिनां रतिर्जायते—विशदयति—ईश्वरस्यैव शरीरावच्छेदाज्जीवत्वं अतएव स्वसृष्टावनुप्रविष्टावित्युक्तं अतः तत्रैव क्षेत्रज्ञरूपे रतिरिति तु युक्तमेव परन्तु तद्विपरीते निस्सारे सरसे सांसारिके पदार्थे तेषां कथं प्रवृत्तिर्भवतीति सा रजोगुणप्राबल्यादिति ;पंचमषष्ठौ प्रश्नौ (५–६) । (सा कथम्) सा च रतिर्ब्रह्मणि कथं भवेदित्युत्तरयति गुणविस्तरमागात् क्षेत्रज्ञे रतिर्भवतीत्येवमर्थं सप्तमः प्रश्नः (७) । (भक्तितुल्य किम्) भक्तितुल्य

परं किं—भक्तिरेव भक्तितुल्या नान्यदित्येवमर्थमष्टमः प्रश्नः (८)। (कथं भक्तिर्गुणोज्झिते)—गुणोज्झिते निर्गुणे ब्रह्मणि कथं भक्तिः कार्या साकारत्वाभावादित्येतदर्थं नवमः प्रश्नः (९) (यैर्यैः कामाधिधर्मैः) कामार्थधर्मेषु मध्ये यैर्यैर्धर्मैः निर्गुणभक्तिः स्यात्के तत्र कामाः सिद्धाः काम्यन्त इति व्युत्पत्त्या तासु भक्तिहेतवः तथा ताभ्यामपि [illegible] इत्यनेनोक्ताः कामाः [illegible] ताः अपि भक्तिहेतवः धर्मोऽपि श्रीकृष्णेऽर्पितोऽस्ति हेतुः इति प्रश्न [illegible] तद्रूपस्य सिद्धिश्च येन वस्तुना सह स्यात्तत्तुल्यता विभूतिस्तु इन्द्रादिषु परमैश्वर्यम् । शनैः शनैः कर्म इत्यत एव वर्णाश्रमादिधर्माः । इत्यर्थं दशैकादशद्वादश प्रश्नाः (१० । ११ । १२)। (यैर्मोक्षस्तदर्थं वैदिकाः कीदृशाः) यैश्च मोक्षस्तद्र्वैर्यदि वैदिकाः राशिः [illegible] ज्ञानादयः [illegible] तेषां मोक्षे साक्षादुपकारकता ज्ञानादीनामारादुपकारकता तु, [illegible] अयोदशचतुर्दशौ प्रश्नौ कृतः (१३ । १४) (श्रुतिर्भक्तिपरा)—श्रुतिर्वेदो भक्तिपरा [illegible] तत्राह वेदे अन्तःकरणशुद्ध्यर्थं यज्ञादिकर्मणां विधानात् शुद्धान्तःकरणस्य भवत्येव भक्तिरित्येतदर्थं पञ्चदशः प्रश्नः (१५)। (स्मृतयः कथम्)—स्मृतयश्च कथं भक्तिपराः स्मृतयोऽप्यश्रुतादि पुराणादीनि तानि वेदस्य [illegible] स्मरन्ति तत्त्वानां [illegible] भगवत्येव पर्यवसानमिति स्मृतीनां भक्तिपरत्वम् इत्येतदर्थं षोडशः प्रश्नः (१६)। (कीदृक् भक्तः) कथं कृत्युपेतः पुमान् सम्यग्भक्तः भवति भक्तिकर्त्तृत्वार्थं सप्तदशः प्रश्नः (१७)। (कथं दोहनम्)—अस्य च भक्तस्य कथं दोहनं [illegible] भवति तत्राह मनोऽभिमानात् इत्येवमर्थमष्टादशः प्रश्नः (१८) (अभिमानक्षयः कथम्)—तस्याभिमानस्य क्षयो भवति तदाह कामादिशत्रूणां क्षयात्क्षयो जायते इत्येतदर्थमूनविंशः प्रश्नः (१९)—(सर्वोपदेशसाराणां पुनः पुनः सूचितानां ज्ञानकर्मभक्तीनां किं स्वरूपम्) वारं वारं कथितानां सर्वशास्त्राणां ज्ञानकर्मभक्तीनां किं स्वरूपम्—ज्ञानस्य किं स्वरूपम् । कर्मणां किं स्वरूपम् भक्तेः किं स्वरूपम् । तत्र ज्ञानं [illegible] गूढेन पुंसा विश्वमधिष्ठितम्। कर्माणि च प्रतिमादिषु [illegible] भक्तिस्तु विराड्रूपस्य सर्वव्यापिनः ईश्वरस्य पूजनम् [illegible] विंशैकविंशद्वाविंशाः प्रश्नाः इति संगतिप्रकारः प्रश्नानां [illegible] विदुषा [illegible] दर्शितः (२० ॥ २१ ॥ २२) ॥ ४३ ॥

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगुणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्यो द्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेन व्याकारि टीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
मुक्तिप्राप्तिप्रसंगे शिवगणनपरो गच्छति स्कन्ध एषः ॥ ११ ॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायवोपदेवकृतायां हरिलीलायां सारस्वतवंशोद्भव
श्रीमन्नारायणसूनुवैद्यनाथकृतकृष्णलीलामृताख्यटीकायां
एकादश स्कन्धः समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशस्कन्धः प्रारम्भः

(मूलम्) आश्रयो द्वादशस्कन्धे त्रयोदशभिरीरितः ॥
आश्रयश्च परं ब्रह्म परमात्मा रमापतिः ॥ १ ॥
यतः प्रपञ्चधीस्तत्र सर्पे स्रग्धीरिवाश्रिताः ॥
उपादेयानुपादेयावाश्रयाश्रयिणौ च तौ ॥ २ ॥

(भाषार्थ)—इस प्रकार तृतीय आदि स्कन्धों में सर्गादि नौ भेदों को कह कर अब क्रमानुसार बारहवें स्कन्ध में आश्रयरूपी दशवें भेदका वर्णनकरते हैं। आश्रय-इस बारहवें स्कन्ध में तेरह १३ अध्यायों से निरूपण किया हैं ॥ पर ब्रह्म १ परमात्मा २ रमापति इनहीं तीनोंका नाम यहां आश्रय जानना। जोनिर्गुण तत्वहै वही परब्रह्महै। जो सत्व, रजः, तमः, इन तीनों गुणों से विशिष्ट है वही परमात्माहै। और जो केवल सत्वगुणसे विशिष्ट है वही रमापति है यही एक तत्व तीन भेदों से कहा है इसमें प्रमाणभीहै। प्रमाणसँस्कृत टीके में देखलेना ॥ १ ॥ [प्रश्न] अद्वय पदार्थ में आश्रयकी प्रवृत्ति अर्थात् एकत्व में द्वित्वकी प्रतीति किस प्रकार होसकती है (उत्तर)—जैसे सच्चेसर्प में अंधेरे के होने से झूँठीरज्जु (रस्सी) का भ्रमहोता है इसी प्रकार सच्चे आश्रयरूपी ब्रह्म में असत् (झूँठी) रूपी प्रपञ्चकी बुद्धि होती है। यह बुद्धि व्यतिरेक द्वारा जाननी। आश्रय और आश्रयी—ब्रह्म और प्रपञ्च है अर्थात् ब्रह्म आश्रयहै और प्रपञ्च आश्रयी है यह दोनों उपादेय और अनुपादेय हैं अर्थात् ब्रह्म उपादेय (ग्रहण करने योग्य) हैं और प्रपञ्च अनुपादेय [हेय—अर्थात् त्याज्य] है। इसही कारण इस बारहवें स्कन्ध में दोप्रकरणहैं पाहिला उपादेय प्रकरण, और दूसरा अनुपादेयप्रकरण यही दो यहां मुख्य प्रकरण जानने यही इस दूसरे श्लोक का भाव है ॥ २ ॥

(सँस्कृतार्थः) एवं तृतीयादिषु नवभेदान्कथयित्वा क्रमशो द्वादशस्कन्धे आश्रयः कथ्यते आश्रय इति (द्वादशस्कन्धे) तन्नामके स्कन्धे (त्रयोदशभिः) त्रयोदशसंख्यकैरध्यायैः (आश्रयः ईरितः) आश्रयः कथितः इत्यर्थः। अधुना आश्रयलक्षणमाह आश्रय श्चेति (परं ब्रह्म) यच्च निर्गुणं तत्वं तदेव परं ब्रह्म (परमात्मा) यश्च सत्व रजस्तमोभिस्त्रिगुणैर्विशिष्टः स परमात्मा (रमापतिः) रमापतिस्तु सत्वगुणयुक्तः। अतएव यः पदार्थः आश्रयसंज्ञकः स च ब्रह्मादिपद-वाच्यः इतिभावः। एकमेव हि तत्वं त्रिभिः पदैः कथ्यते तत्र प्रमाणं दर्शयति यथा—"वदन्ति त-त्तत्वविदस्तत्वं यज् ज्ञानमद्वयम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते" ॥ १ ॥ नन्वद्वये

पदार्थे आश्रयपदप्रवृत्तौ किं कारणमिति तत्राचयन यत इति (यतः) यस्मात् (यथे) स्वरूप आश्रयभूते च सर्पे (स्रगीरिव) स्रक् माला रज्जुरित्यर्थः आरूढ़ा ॥ रज्जुनिर्दिष्टा भ्रमतो भवति तद्वत् (तत्र) तस्मिन् मतापि वस्तुं आश्रयभूते च (प्रपञ्चाः) आरूढ़ा प्रपंचबुद्धिः (आश्रिता आध्यस्ता प्रतीतिरूपत्वेन ज्ञाता प्रपञ्चत्वाभावाद्धीरित्युक्तम् यदुक्तम् " आभासश्च निरोधश्च यतस्त्वध्यवसीयते स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते " । (तौ च आश्रयाश्रितौ उपादेयानुपादेयौ) आश्रयः ईश्वरः आश्रितः प्रपञ्चः तौ द्वौ च उपादेयानुपादेयौ तथा च परं ब्रह्म स्वरूप आश्रय उपादेयः । प्रपंचरूपा आश्रिता अनुपादेयः त्याज्य इत्यर्थः । अनयोरुपादेयानुपादेय योर्द्वयो प्रकरणद्वयं भवतीतिभावः ॥ २ ॥

(मूलम्) अनश्चतुर्भिरध्यायैरनुपादेयतोदिता ॥
उत्तरोत्तरदुःस्थत्वात् स्थापकानां स्थितेरपि ॥ ३ ॥
युगेयुगेन्यथाभावात् कालग्रस्ततया तथा ॥
उपादेयत्वमेकेन परीक्षितफलदर्शनात् ॥ ४ ॥
श्रवणं मननं ध्यानं चेत्युपादानहेतवः ॥
तत्र श्रवणसिद्ध्यर्थं द्वाभ्यां शब्दस्य संभवः ॥ ५ ॥
वेदोपवेदभिन्नस्य मार्कण्डेयकथा त्रिभिः ॥
विष्णुमायाशिवेक्षाभिर्भिन्नामननसिद्धये ॥ ६ ॥
मूर्तेस्तत्वं सूर्यगत्य मेकेनध्यानसिद्धये ॥
पुराणार्थोपसंहार एकेनैकेन तद्विदाः ॥ ७ ॥

[भाषार्थ]—पूर्वोक्त दोनों प्रकरणों में पहिले अनुपादेयता प्रकरण का निरूपण करते हैं यह अनुपादेयता चार अध्यायों में वर्णन की है । कलिकाल के राजाओं की उत्तरोत्तर [आगे आगे] दुर्बलता होतीजाती है अर्थात् जो आगे को राजा होंगे वे यथार्थ राजनीति के अनुसार पृथिवी का पालन नहीं करेंगे यही प्रथम अध्याय का अर्थ है [१] । [स्थितेरपि] इस कलियुगके गुण दोषोंको देख कल्कि अवतार द्वारा दुष्ट जनों के नाश होनेपर फिरभी सत्ययुग आदि की स्थिति का वर्णन यही दूसरे अध्याय का तात्पर्य है [२] [युगे युगेऽन्यथा भावः]सतयुग, द्वापर त्रेता, और कलियुग इन चारों युगोंकी मर्यादा का अन्यथा भाव अर्थात् चारों युगों में भिन्न २ धर्म का कथन इस तीसरे अध्यायका तत्व है [३] । [तथा कालग्रस्ततया] जो कुछ यह सांसारिक पदार्थ है वोह सब विकरालकाल के गाल में है । इन्हही को पौराणिक नैमित्तक आदि चार प्रकार के लयको प्रतिपादन करते हैं इन लयों के लक्षण आदि पहिले कहचुके हैं इस लिये दुबारा यहां नहीं कहे यही चतुर्थ अध्याय का सार है [४] इस प्रकार इन चार अध्यायों से इस प्रपञ्च की अनु-

पादेयता का कथन किया अव उपदेयता रूपी दूसरे प्रकरण को कहते हैं राजा परीक्षित को ब्रह्मसायुज्यरूपी फलकी प्राप्तिहुई इसी को आश्रयभी कहते हैं इस उपदेयता का इस एकही अध्याय में निरूपण है यही इस पञ्चम अध्याय का विशदार्थहै आश्रय प्राप्ति में कौन २ उपाय हैं उनको कहहैं हरिकथा का श्रवण करना यह पहिला उपाय है। पुनः उसी कथा का मनन करना यह दूसरा उपाय है। फिर उन शिव केशव आदि देवताओं का ध्यान करना ही तीसरा उपाय है। श्रवण, मनन, ध्यान, यह तीनों तत्व के साक्षात्कार को उत्पन्न करते हैं। प्रथम उस श्रवणकी सिद्धि के लिये वेद और उपवेद का कथन करैं हैं। श्रवण—वेदसापेक्ष है इसही से वेदशास्त्र के विभाग के कथन में तीनों वेदोंका शाखा आदि विस्तार इस छटे अध्याय में वर्णन किया है [६]। वेद के विस्तारको कह कर लक्षण सहित उप वेद अर्थात् पुराणों का विस्तार इस सातवेंअध्याय में वर्णन किया है [७] इन दोनोंअध्यायों में श्रवणका कथन कर अव मनन रूपी दूसरे उपाय का वर्णन करैं हैं मार्कण्डेय ऋषि के कथाका प्रसंग=आठ, नौ, दश, इन तीन अध्यायों में कथन किया हैं यह कथा का प्रसंग—मननकी सिद्धि के अर्थ—विष्णवीक्षा १ मायेक्षा २ शिवेक्षा ३ इन भेदोंसे तीन प्रकार का है तात्पर्य यहहै कि पहिले मार्कण्डेय ऋषिने—विष्णु का दर्शन किया। फिर माया का अवलोकन किया। तदनन्तर शिवजी का दर्शन किया। इसीसे यहां ऐसा आशय निकालते हैं कि औरभी जो पुरुष मननकरनेवाले हैं उनको प्रथम परोक्षतत्व की प्राप्ति होती है। पुनः असंभावना और विपरीत भावना से उस में सन्देह होता है। तदनन्तर मनन के दृढ़होनेसे भ्रम दूर होकर और सन्देह न रहकर अपरोक्षतत्व का अधिगम होता है—इस विचारको चमत्कारिक चित्तवाले सरस जनही जानते हैं। वेही इस वोपदेवजी के आशय को श्रेष्ठ समुझ आनन्द हों। इतने कथन से यही वात सिद्ध हुईकि—मार्कण्डेयमुनि के तपश्चर्य्या के प्रभाव से उनको नारायण का दर्शन हुआ उस दर्शन से मार्कण्डेयजीको परोक्षतत्वरूपी विष्णुकीप्राप्ति हुई यही आठवें अध्याय का अर्थ है [८] भगवान्की माया के देखने की इच्छावाले मार्कण्डेयमुनि ने—वट वृक्ष के पत्ते पर सोते हुए वालमुकुन्दजी महाराज के श्वास के साथ उन के हृदय में जाकर अपने आप समेत सव जगत् देखा और मुनि कहने लगे कि यह जगत् किस प्रकार इस लघुवालक के पेट में समागया इस असंभावना से—फिर श्वास छोड़ने के साथ जव उस वालक के पेट में से निकले तौ अपने आपसहित सव जगत् को उसही प्रकार का द्वारे देखा पुनः विचार करने लगे कि भीतर का जगत् और—में—सच्चाहूँ क्या वारह का इस विपरीत भावना से ऋषि को वड़ाभारी सन्देह हुआ।

यही नवम अध्याय का तात्पर्य है (९) सन्देह में पड़ेहुए उनही मार्कण्डेय मुनिके मननकी दृढता से यह भ्रम दूर हुआ और अपरोक्ष तत्व रूपी शिवजी महाराज का दर्शनभी हुआ यही दशम अध्याय का सार है [१०] । सृष्टि की; आदि में माया सहित चतुर्भुज साकार मूर्ति धारण कर विष्णु भगवान संसार को रचते हैं । जैसे साकार कुम्हार साकार घड़े को उत्पन्न करै है । इसही प्रकार साकार विष्णुभी इस साकार जगत् को जन्माते हैं परन्तु इतना अवश्य समुझना कि परमेश्वर चतुर्भुज कुम्हार आदिकेतुल्य अनित्य शरीरवाला नहीं है किन्तु उनका नित्य और मायिक शरीर है यदि ऐसा नमाने तौ कुम्हारके सदृश ईश्वरके नाश होजाने की शंकाहोगी इसही सै वोह परमेश्वर इस संसारी मूर्तिमान आकारों से भिन्न और विलक्षण तथा अकथनीय मूर्तिवाले हैं । और लय सृष्टिका जबहोता है उस समय मायारहित निराकार शिवस्वरूप परमात्मा लयको करता है उस समय इसही प्रकारकी मूर्तिका दर्शन है बस इस थोड़ेही में बहुत समुझ लेना ॥ ५ ॥ इस प्रकार मननके प्रकारको कहकर अबध्यानके प्रकारको कहैं हैं—ग्यारहवें अध्यायमें ध्यानका प्रकारहै—अर्थात् इसअध्यायमें महापुरुष भगवानकी मूर्तिका तत्व और सूर्य मंडलमें स्थित देवतारूपी ईश्वरका ध्यान (यही ध्यानका निरूपण एकादश अध्याय में किया है (११) प्रथम स्कन्ध से लेकर सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पुराण के सम्पूर्ण अर्थ का अनुक्रम द्वादशवें अध्याय में कथन किया है (१२) । पुराण और उप पुराणोंकी संख्या इस तेरहवें अध्याय का पयोजन है (१३) ॥ ७ ॥

(संस्कृतार्थः)—तत्रादावनुपादेयतायाः प्रथमं प्रकरणमाह अत इति—(अतः) पूर्वं (चतुर्भिरध्यायैः) परीक्षिदित्यनुगीति चतुःसंख्यकैरध्यायैः (अनुपादेयता) हेयता (उदिता) कथिता । अत्राध्यायार्थमाह उत्तरोत्तरेत्यादिना (क्ष्मापकानाम्) राज्यपालकानां राज्ञां (उत्तरोत्तरदोषत्वात्) अग्रे दुर्बलता प्रथमेऽध्याये निरूपिता (१) । (द्वितीयेऽपि) आयुर्बलादिह्रासाः तात्पर्यस्य यस्य पूर्वं सत्यस्य गुणागुणौ निरूप्य पुनः कल्क्यवतारेण अधर्मिणां जनानां नाशे कृते पुनरपि कृतयुगस्य स्थितिरभूदिति द्वितीयाध्यायार्थः (२) ॥ ३ ॥ [युगे युगे ऽन्यथाभावः]—प्रतियुगं सत्यद्वापरत्रेताकलियुगेषु अत्र स्थितेरित्यनुवर्तनीयम् मर्यादाया अन्यथा भावः युगचतुष्टये भिन्ना धर्म इति यावत् इति तृतीयाध्यायार्थः [३] । [तथा कालप्रहततया] कालचक्रद्वारा संसारप्राप्तः नैमित्तिकादयः लया चतुर्द्धा पूर्वमुक्तास्तेऽधुना कालप्रहततया प्रतिपादयति इति चतुर्थाध्यायार्थः [४] । एवं एभिरेवकारणैश्चतुर्भिः प्रपंचस्यानुपादेयता प्रोक्ता इदानीमुपादेयताया द्वितीयं प्रकरणमाह [परीक्षित्फलदर्शनात्] परीक्षितः फलस्य मोक्षप्राप्तिरूपस्यावलोकनात् ॥ [एकेनोपादेयत्वम्] एकेनाध्यायेन उपादेयतोक्ता सा चोपादेयताऽऽश्रयस्येति पंचमाध्यायार्थः [५] आश्रयप्राप्तौ के उपायास्तानाह श्रवणमिति [श्रवणम्] हरिकथायाः (मननम्) श्रुतायाः तस्या एव [ध्यानम्] तद्वारीतिशिवकशवलोकेशशंकरपाशिनाम् श्रवणादयो हि तत्वसाक्षात्कारमुत्पादयन्ति लक्षणन्त्वेतेषां प्रागेवोक्तम् तत्र श्रवणमाह तत्रेति [श्रवणसिद्ध्यर्थम्] श्रावणपयोजनाय [द्वाभ्याम्]

वेदार्थविचाराभ्याम् । (शब्दस्य) स्फोटरूपस्य (संभवः) उत्पत्तिर्भवति तत्र तु श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्य इत्युक्तत्वात् श्रवणं वेदसापेक्षमस्ति—अतएव वेदसंभवः वेदशाखाविभागोक्तौ त्रयाणां वेदानां विस्तारः षष्ठेऽध्याये वर्णित इतिभावः (६) उपवेदः पुराणं तस्य संभवः अध्यायेऽस्मिन् वदविभूतिं निरूप्य सलक्षणः पुराणविस्तारो वर्ण्यते इति सप्तमाध्यायप्रयोजनम्, कथितमत्रश्रवणम् (७) अधुना मननमाह—मार्कण्डयति—(मार्कण्डेयस्य) तन्नामस्य ऋषेः (कथा) प्रसंगः (त्रिभिः) (अष्ट नव दशभिरध्यायैरित्यर्थः सा कथाच (मनन सिद्धये)—मननसिद्ध्यर्थम् (विष्णुमायाशिवेक्षाभिः) विष्णवीक्षा मायेक्षा शिवेक्षा इतिभेदैः (भिन्ना) त्रिभेदवतीत्यर्थः भावार्थस्त्वयम्-यथा-मार्कण्डेयस्य पूर्वं विष्णोर्दर्शनम् ततो मायाय अवलोकनम् ततश्च शिवस्य प्रेक्षणमिति तथा च मननं कुर्वतामन्येषामपि प्रथमं परोक्षतत्वाधिगमो भवति, पुनरसम्भावना विपरीतभावनाभ्यां तत्रैव सन्देहो जायते ततो मननदृढतया भ्रमनिरासे पुनरसंदिग्धतयाऽपरोक्षतत्वाधिगम इति सरसाश्चमत्कारिकचित्ताश्चात्र तात्पर्यप्रमाणम् अतएवेदं निर्गतम् यथा मार्कण्डेयस्य तपश्चर्याप्रभावतः विष्णोर्नारायणस्य दर्शनं जातं तेन परोक्षतत्वस्य विष्णोः प्राप्तिरित्यष्टमाध्यायार्थः (८) भगवन्मायावलोकनकामस्य मार्कण्डेयस्य मायाशिशोः श्वासोच्छासैः प्रवेशनिर्गमनेन असंभावनाविपरीतभावनाभ्यासमर्थास्तु कथमस्य लघुबालकस्य हृदि ससंसारोऽहंतिष्ठामीत्यसंभावना पुनः कथमस्य हृन्निर्गमनात् ससंसारश्चाहं पृथक्त्वेन दृश्यते इति विपरीतभावना ताभ्यामुभेः सन्देह इति नवमाध्यायार्थः(९)सन्देहे निपतितस्य तस्यैव मार्कण्डेयस्य मुनेः मननदृढतया भ्रमनिरासत्वात् अपरोक्षतत्वस्य शिवस्य दर्शनजातमिति दशमाध्यायार्थः (१०) सृष्ट्यादौ समायिकश्चतुर्भुजः साकारो विष्णुः संसारं सृजति संसारस्य साकारतया कुमारो घटवत् सचापि साकारोऽस्त्येव किन्तु स अस्मत्तुल्यानित्यतामिलानित्यशरीरतया लोकं सृजतीति अन्यथेश्वरस्याप्यनित्यत्वान्नाशप्रसङ्ग इति मत्वाऽस्मद्विलक्षणामूर्तिरित्युक्ता सृष्टिकर्ये निर्मायिको निराकारः शिवरूप ईश्वरः लयं करोतीतिदिक् ॥ ५ ॥ इदानींध्यानमाह मूर्तेरिति—(ध्यानसिद्धये) ध्याननिरूपणाय (एकेन) एकेनाध्यायेन अर्थात् एकादशेनाध्यायेन (मूर्तेस्तत्त्वसूर्यगस्तत्र)—भगवन्मूर्तेस्तत्त्वम् सूर्यमण्डलाधिष्ठातृत्वञ्च ध्यानार्थमुक्तम् अस्मिन्नध्याये महापुरुषस्य भगवतो मूर्तेर्वर्णनं कृत्वा पार्थक्येन सूर्यव्यूहस्याख्यानम् । कथितमित्येकादशाध्यायार्थः (११) । (पुराणार्थो पसंहारः) प्रथमस्कन्धमारभ्य संक्षेपतः श्रीमद्भागवतपुराणोक्तसर्वार्थानुक्रमः प्रतिपादित इति द्वादशाध्यायार्थः (१२) । (एकैकेन) एकैकशः पार्थक्येन (तद्भिदाः) तेषां ब्रह्माद्यादीनां भेदा पुराणानां संख्येत्यर्थः निरूपिता इति त्रयोदशाध्यायार्थः (१३) ॥ ७ ॥

(मूलम्) अष्टादश दश त्रिंश त्र्यधिका नव विंशतिः ।
षड्विंशतिर्दश नव पञ्चभिर्विंशतिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥
चतुर्भिश्चाथ नवतिरेकात्रिंशत्रयोदश ।
इतिभागवतेऽध्याया एकत्रिंशच्छतत्रयम् ॥ ९ ॥
एकादिनियमेनैतानभ्यसेच्छक्तितोन्वहम् ।
वक्ता श्रोतर्यथ श्रोता वक्तर्यन्यत्र चिन्तकः ॥ १० ॥
शास्त्रे स्कन्धे प्रकरणेऽध्याये वाक्ये पदेऽक्षरे ।
गुरूपदिष्टो योर्थस्तं विमृशन् विष्णुतत्परः ॥ ११ ॥

(भावार्थ)—इस प्रकार आश्रय को दिखाकर बारह स्कन्धों में से प्रत्येक स्कन्ध के अध्यायों की संख्या को कहते हैं—बोपदेवजी के मत से प्रथम स्कन्ध में अठारह ही अध्याय हैं परन्तु अन्य टीकाकारों के मत से तो उन्नीस हैं यह उनका मतयुक्ति युक्त नहीं है इसी से अप्रामाण्य है यह पहिले ही सिद्ध करचुके हैं (१)। दूसरे स्कन्ध में दश अध्याय हैं (२) तीसरे स्कन्ध में तेंतीस अध्याय जानने (३)। चौथे स्कंध में उन्तीस ही ठीक अध्याय हैं परंतु अन्य टीकाकारों के मतसे तो इकत्तीस अध्याय होते हैं यह उनका मतयुक्ति विरुद्ध है (४)। पञ्चमस्कंध में छव्वीस अध्याय हैं (५)। छटे स्कंध में उन्नीस माने जाते हैं (६)। सातवें स्कंध में पंद्रह अध्याय गिने हैं (७)। आठवें स्कंध में तेईस अध्याय हैं किंतु अन्यमत से चौवीस होते हैं यह उनका मत ठीक नहीं है इस बात को पहिले ही लिखकर आये हैं (८)। नवम स्कंध में चौवीस अध्याय माने हैं (९)। दशम स्कंधमें नव्वे अध्याय प्रमाणित हुए हैं (१०)। एकादश स्कंध में इकत्तीस अध्यायों की गणना है (११)। द्वादश स्कंध में तेरही अध्यायों की संख्या है (१२) ॥ अब सब मिलकर कितने अध्याय होते हैं उन को कहते हैं श्री बोपदेवजी के मतानुसार तो तीनसौ इकत्तीस ३३१ अध्याय कुल श्रीमद्भागवत में सिद्ध होते हैं और अन्य टीकाकारों के मत से तो ३३५ तीनसौ पैंतीस गिनेगये हैं परंतु बोपदेवजी काही मत पंडितों के अनुकूल है इस विषय की युक्ति प्रथमही दिखला आये हैं इसी से दुबारा नहीं लिखी और ठीक २ अध्यायों की गिनती इस चक्रसे जानो ॥ ८९ ॥

स्कन्धाध्यायसंख्याबोधकचक्रम् ॥

स्कन्धसंख्या	बोपदेवकृत अध्यायसंख्या	अन्यकृत अध्याय संख्या	बोपदेवकृत सर्व संख्या	अन्यकृत सर्व संख्या
१	१८	१९	३३१	३३५
२	१०	१०		
३	३३	३३		
४	२९	३१		
५	२६	२६		
६	१९	१९		
७	१५	१५		
८	२३	२४		
९	२४	२४		
१०	९०	९०		
११	३१	३१		
१२	१३	१३		

अब श्रीवोपदेवजी महाराज प्रतिदिन श्रीमद्भागवत के अभ्यास का अपना किया हुआ अनुभव दिखाते हैं—प्रतिदिन—एक २ दो २ अथवा इससे भी अधिक यथा शक्ति इस भागवत का अभ्यास करैं। यदि कोई श्रोता (सुननेवाला) उपस्थित होयतौ अपने आप वक्ता (कहनेवाला) होकर श्रीमद्भागवत को सुनावै तथैव यदि कोई वक्ता विद्वान् उपस्थित होयतौ स्वयं पाण्डित्य के अभिमान को छोड़कर आप श्रोता बन परायण सुनें अथवा जहाँ यह दोनों बात न बनैं तौ आपही आप इस शास्त्र का प्रति दिवस विचार करै यही श्रीमद्भागवत के अभ्यास की क्रिया है ॥ १० ॥ किंच गुरूने जो जिस प्रकार का उपदेश किया है उसही के अनुसार अपनी बुद्धि से विष्णु के चरणारविंद का ध्यान करताहुआ भक्ति में तत्पर हो अभ्यास करै जो पुरुष इसरीति के अनुसार इस महापुराण के स्कंध अध्याय, प्रकरण, वाक्य, पद, और अक्षरों का अभ्यास करता है वोह विष्णु की सायुज्य मोक्ष को प्राप्त होता है यही अभ्यास की क्रिया उत्तम और सु म है ॥ ११ ॥

(संस्कृतार्थः)—एवमाश्रयं प्रदर्श्य सर्वस्कन्धेष्वध्यायसंख्यामाह अष्टादशेत्यादि (अष्टादश) अष्टादश संख्याका अध्यायाः प्रथमस्कन्धे इति: वोपदेवमतम् अन्यमते तु एकोनविंशतिः तन्मतं न समीचीनमिति प्रागेवोक्तम् (१)। (दश) द्वितीयस्कन्धे दशसंख्यका अध्यायाः सन्ति (२) (त्रिंशत्त्र्यधिकाः) त्रयोऽधिका यस्मिन्निति त्रिंशतिः त्रयस्त्रिंशदध्याया इत्यर्थः तृतीयस्कन्धे इतिभावः (३)। (नवविंशतिः) नव च विंशतिश्च नवविंशतिः एकोनविंशदित्यर्थः चतुर्थस्क-न्धे अन्यमतत एकत्रिंशादेति तन्मतं नसम्यक् इत्याशयः (४)। (षड्विंशतिः)—षड्विंशति-संख्यका अध्यायाः पञ्चमस्कन्धे इति विशदार्थः (५)। (नव पञ्चभिः दश) नव पंचभिः सहिता दश इति दशनवपञ्चाभिः एकोनविंशतिः पञ्चदशाचेत्यर्थः अर्थात् एकोनविंशति संख्यका अध्यायाः षष्ठस्कन्धे (६)। अथ च पंचदशाध्यायाः सप्तमस्कन्धे इति गर्भाशयः (७)। (त्रिभिः चतुर्भिश्च विंशतिः) त्रिभिः विंशतिः त्रयोविंशतिः चतुर्भिर्विंशतिः चतुर्विंशतिः इत्यर्थः त्रयोविंश तिसंख्यका अध्यायाः अष्टमस्कन्धे वोपदेव भिन्नमते चतुर्विंशतिरिति तन्मतं नश्रेष्ठम्—अथ च चतुर्विंशतिसंख्यका अध्याया नवमस्कन्धे इतितात्पर्यार्थः (८–९–)। (अथ नवतिः) नवति संख्यका अध्याया दशमस्कन्धे (१०)। (एकत्रिंशत्) एकत्रिंशदध्याया एकादशस्कन्धे (११) (त्रयोदश) त्रयोदश संख्याका अध्याया द्वादशस्कन्धे वर्णिता इति सर्वत्रयोज्यमित्यर्थः (१२) अधुना सर्वस्कन्धस्थाध्यायसंख्याभेकत्रितां कृत्वा तद्गणनामाह (एकत्रिंशच्छतत्रयम्) एकत्रिंश-दधिका यस्मिन् शतत्रयं तत्तथा (इतिभागवतेऽध्यायाः) एतत्संख्यकाः श्रीमद्भागवत पुराणे अध्यायाः प्रतिपादिताः इति विद्वद्वोपदेवमतं सुष्ठु प्रतिभाति अन्यमतेषु च सर्वां संख्यां मिलित्वा पंचत्रिंशच्छतत्रयमित्यखिलस्कन्धेषु चत्वार एवाधिका इतिदत्तमुत्तरं प्रागेव ॥ ८ ॥ ९ ॥ अत्रैव निजानुभवतः संक्रममाह एकादिति (एकादिनियमेन) प्रतिदिनमेकैकोऽध्यायोऽथवा द्वौ द्वावध्यायौ तदधिका वा इति स्वमनसि विचारं कृत्वा (एतान्) अध्यायान् (अन्वहं) प्रतिघस्रमक्रमम् (शक्तितः) यावच्छक्तिस्तावत् (अभ्यसेत्) अभ्यासः कार्यः। (अथ श्रोतरि वक्ता) अन्यस्मिन् श्रोतरि उपस्थिते स्वयं वक्ता भवेत् (वक्तरि श्रोता) अन्यस्मिन् वक्तरि उपस्थिते

स्वयं श्रोता स्यात् (भगवच्चिन्तकः) उभयत्रापि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] क्रिया प्रतश्च " शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः " इत्यत्र [illegible] ॥ १० ॥ किं च गुरुणा विद्यागुरुणा, उपदिष्टः [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुमान्, विष्णुतत्परः श्रीकृष्णचरण [illegible] [illegible] भवेत् । [illegible] [illegible] [illegible] मेषां चतुर्गामर्थस्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विष्णुसायुज्य प्राप्नोति भावः [illegible] [illegible] [illegible]॥ ११ ॥

(मूलम्) एकं तेजस्त्रिधा यद्वत् सूर्यमण्डलरश्मिभिः ।
एकं ब्रह्म त्रिधा तद्वद्विष्णुमायात्मभिर्मतम् ॥ १२ ॥
मण्डलान्निर्गतं सूर्यतेजोऽनेकत्वं रश्मिना यथा ।
मायाया निर्गते विष्णौ तथा नेकत्वमात्मना ॥ १३ ॥
यथा नयनसंबन्धाद्द्रष्टारो रश्मयो रवेः ।
तथा ज्ञातार आत्मानो देहसम्बन्धतो हरेः ॥ १४ ॥
विशेषस्तु यद्वात्मानश्चेतनत्वादुपासने ।
विष्णुमायान्तरत्वात्तु तस्मान्निरुपाये ॥ १५ ॥

(भावार्थ)–(प्रश्न) जब जीव विष्णु भगवान्से अनन्त मिले हैं तो किसप्रकार विष्णुकी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होसकते हैं (उत्तर) सूर्य के निकलनेके समय जिस प्रकार एकही सूर्य का तेज—सूर्य १ मण्डल २ रश्मि ३ इन भेदों से तीन प्रकार प्रत्यक्ष मालूम होताहै इसही प्रकार—एक अद्वितीय ब्रह्म–विष्णु १ माया २ आत्मा ३ इनभेदों से तीनप्रकार का होजाता है अर्थात् चैतन्य अवच्छिन्न विष्णु है १ मायावच्छिन्न ईश्वर है २ और अविद्या अवच्छिन्न आत्मा है ३ । आशय यह है कि—कार्योपाधि जीव है १ कारणोपाधि ईश्वर है २ और जिस में कार्य तथा कारणता न घटसकै वही ब्रह्म है ३ ॥ १२ ॥ (प्रश्न) फिर जीव अनेक क्यों हुए (उत्तर) एकही तेज जिस प्रकार सूर्य से निकलकर किरणरूप से अनेक प्रकार का होजाता है इसही प्रकार मायोपाधि ईश्वर के संकाश से निर्विशेष चैतन्य विष्णुरूपी तेज निकलकर अविद्या विशेषों में प्रतिबिम्बित होनेपर जो माया में अनेकता होती है तात्पर्य यह है कि–निर्विशेष चैतन्य का बड़ा भारी प्रतिबिम्ब ईश्वर है । फिर उसी विम्ब के अनेकों प्रतिबिम्ब पड़ने से लाखों जीव होजाते हैं अर्थात् इस विलक्षणरीति सेभी समझो – यथा वृन्दावनमें एक समय मध्यान्हसमय मन्दिरश्री लक्ष्मण दास सेठजीके बड़े सरोवरस्थ जलमें मैंने सूर्यमण्डलकेप्रतिबिम्ब को देखा और फिर उस जलमें स्थित प्रतिबिम्ब का दूसरा प्रतिबिम्ब उन चारों ओर बनीहुई सिंगमर्वरकी

दीवारों पर चमका तदनन्तर उन दीवारों के प्रतिविम्ब का और तीसरा प्रतिविम्ब उसके सामने के ऊपरके मकानोंपर प्रकाशहोने लगा देखकर यही मालूम हुआ कि इसही प्रकार एक ब्रह्मभी विम्ब प्रतिविम्बद्वारा अनेक होजाता है तथैव जब सूर्यका प्रतिविम्ब दर्पण में आता है उस दर्पण काभी प्रतिविम्ब दीवारों पर आजाता है इसही प्रकार जीव - ब्रह्मकाही प्रतिविम्ब जानो। इतने लिखने का यही कारणहै कि इस कठिन वातका भली भांति ज्ञानहोजाय ॥ १३ ॥ (प्रश्न) यदिजीव विष्णु के अंश हैं तो फिर उन को विष्णुका ध्यान दर्शन आदि करना किसप्रकार बनसकता है क्योंकि जो कर्ता है वही कर्म किस प्रकार होसक्ता है अर्थात् अपने आप को आपही किसप्रकार देखसकता है (उत्तर)-जैसे सूर्य की किरणें सांसारिक मनुष्यों के नेत्रों में प्रविष्ट होकर फिर सूर्य के मण्डल को देखलेती हैं इसही प्रकार विष्णु के ज्ञाता भक्तभी अनेक शरीरों के सम्बन्ध से फिरभी विष्णु भगवान् को देखलेते हैं और ध्यान भी करते हैं ॥ १४ ॥ अवसूर्य के दृष्टान्त से विलक्षणता जीव-और ब्रह्म की दिखाते हैं-(प्रश्न) चेतन होकर भी जीव--क्यों विष्णुरूप परमात्माकी उपासना करते हैं (उत्तर) विष्णु की जो माया उस से पडाहुआजो वीच में व्यवधान उसही से प्राप्त जो जन्ममरणादि रूप दुर्दशा उस दुर्दशा की निवृत्ति के लिये जीव-ब्रह्मरूपी विष्णु की उपासना करता है अर्थात् अपने कियेहुए कर्मों से लिप्त जो माया जाल उस के विनाशार्थ विष्णु की सेवा करनी उचित ही है। कोई २ वेदांती जीव ब्रह्म को एक मानकर क्या हम ब्रह्म की उपासना करैं क्योंकि--हम और ब्रह्मतौ एकही है यह उनका कथन युक्ति विरुद्ध है अन्यथा वेदान्तसूत्र भाष्यकर्त्ता श्रीस्वामी शंकराचार्यजी क्यों शिवादि मूर्त्ति स्थापन पूजन करते अतः अवश्यही मूर्ति पूजन करना उचित है क्योंकि ' महाजनोयेनगतः सपन्था , यद्यपि यह मूर्ति पूजन वेदादि सच्छास्त्रों से सिद्ध होता है परन्तु यहांलेख बढनेसे मौन हैं यदि आपको देखनाही है तौ हमारे " चौदहरत्न ,, नामक पुस्तकको मंगाकर मूर्ति पूजा वेदानु कूल देखलीजिये ॥ १५ ॥

(संस्कृतार्थः)—विष्णुतत्पर इति पूर्वमुक्तम्—तच्चायुक्तं प्रतिभाति जीवानामतिभिन्नत्वेन विष्णुसायुज्यमोक्षानुपपत्तेरतत्राह—एकमिति-(यद्वत) येन प्रकारेण (एकं तेजः)-एकमेवा वशेषितं ज्योतिः (सूर्यमण्डलरश्मिभिः)-(उपाधिवशात् सूर्य इत्येको भेदः १ मण्डलमिति द्वितीयोभेदः २ रश्मय इति तृतीयो भेदः ३ इति त्रिधा भवाति (तद्वत्) तेनैव प्रकारेण (एकं ब्रह्म एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म (विष्णुमायात्मभिः) विष्णुरित्येको भेदः १ मायेति द्वितीयो भेदः २ आत्मेति तृतीयो भेदः ३ तथा च तत्रानवच्छिन्नचैतन्यं विष्णुः मायावच्छिन्न ईश्वरः माविद्यावच्छिन्न आत्मा यदाहुः—" कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः । कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽव

छिद्यत" इति । सूर्यदृष्टान्तस्तु भिन्नमात्र एव न तु साकारत्वे ॥ १२ ॥ ननु तर्हि जीवानामनेकत्वं कथं तत्राच्यते—मण्डलादितः (मण्डलान्निर्गतैः)—तेजोद्वारा बहिःप्रसृते सति—(सूर्ये) भगवति सवितरि (अनेकत्वम्) यत् अनन्ता दृश्यते (सा यथा रश्मिता) ये एव किरणनिकराः अर्थात् एकस्मिन्तेजस्य नैकता भवतीति भावः (तथा) तयैव रीत्या (मायायाः) मायोपाधिसंश्रयात् प्रकाशात् (विष्णो) निर्विशेषे चैतन्ये (निर्गते) अविद्या विक्षेपेषु प्रतिफलितं यानि यन्नैकत्वं मायायां पतितं—निर्विशेषचैतन्यस्य महाप्रतिबिम्बरूप[illegible] विम्बात्[illegible] लक्षशः प्रतिबिम्बानि जीवशब्दार्थं इति ॥ १३ ॥ ननु जीवानां [illegible] तेषां पुनः [illegible]-र्शनं न भवेत् [illegible]—(यथा) तद्वत् (रवेः रश्मयः) सूर्यं [illegible] (नयनसम्बन्धात्) अखिलजनानां [illegible] (दृष्टाः) [illegible] पुनः सूर्यं पश्यन्ति (तथा) तद्वत् (इमे ज्ञानाः) विष्णोरंशाः (देहसम्बन्धतः) [illegible]-त्वात् (आत्मनः) विष्णुं पश्यन्तीत्यर्थः ॥ १४ ॥ एवं सूर्यदृष्टान्त [illegible] सर्वप्रकारेण [illegible] तायां प्राप्तौ सत्यां पुनर्दिक्षणानां दर्शयति-विशेषयितेति—([illegible]) [illegible] जीवानां विशेषः ([illegible]) [illegible] (आत्मनः) विष्णुं (उपासने) [illegible]-सने तदाह—([illegible]) विष्णोः या माया तया [illegible] तेन या प्राप्ता [illegible] विष्णो-श्च आपि भक्ताः [illegible] विष्णूपासने इति विशदार्थो बोध्यः ॥ १५ ॥

(मूलम्)—उपासनं कर्मभक्तिज्ञानयोगैस्त्रिधा क्रमात् ॥
येषां धीर्विषयेऽदोषा सदोषा नैव तैः क्रतम् ॥ १६ ॥
कर्मणामर्पणं विष्णौ विष्णोर्वार्ता परस्परम् ॥
निर्जने चिन्तनं विष्णोर्योगानां लक्षणं क्रमात् ॥ १७ ॥
इतिभागवतस्यानुक्रमणी रमणी कृता ॥
विदुषा वोपदेवेन विद्वत्केशवसूनुना ॥ १८ ॥
हरिलीलेतिनामेयं हरिभक्तैर्विलोक्यताम् ॥
अस्यावलोकनादेव हरौ भक्तिर्विवर्द्धते ॥ १९ ॥

इति श्री महामहोपाध्यायवोपदेवविरचिता हरिलीला,-भिधाभागवतानुक्रमणी समाप्ता ॥

(भावार्थ) उपासना करनेमें तीनउपायहैं उनका वर्णनकरतेहैं कर्मयोग१ भक्तियोग२ ज्ञानयोग३ यही तीनउपायहैं। अब इन उपायोंके कौन२ अधिकारी हैं उनकोदिखाते हैं—जिनकी बुद्धि—सांसारिक पदार्थोंमें दोष शून्यहै अर्थात् जो दोषों को भी दोष न मानकर गुण समझतेहैं और जोकुछ कियाहुआ अच्छा अथवा बुरा कर्महै वोह कृष्णार्पण करतेहैं वही कर्मयोगके अधिकारी हैं जिनकीबुद्धि विषयों में दोषवालीहै अर्थात्

विषयों को दोषयुक्त जान कर भगवान में भक्तिकरते हैं वेह भक्ति योग के अधिकारी हैं । । और जिनकी बुद्धि—विषयों में कबभी आसक्त नहीं होती तथा समाधि द्वारा जोकृष्णका चिन्तवन करते रहते हैं वेह ज्ञान योगके अधिकारी हैं ॥ १६ अब इन तीनों उपायों के लक्षण कहते हैं—श्री कृष्ण परमात्मा में अपने किये हुए कर्मो का जो समर्पण करना है यही पहले उपाय कर्म योग का लक्षणहै (१) स-सज्जन भक्तों की गोष्ठियों में प्रश्नोत्तर प्रसंग वश से जो परस्पर श्रीकृष्ण चन्द्रकी कथा का श्रवण है यही दूसरा उपाय भक्तियोग नामवाला है (१) वन गुफाआदि एकांत स्थानों में समाधि लगाकर जो कृष्ण का ध्यान करना है यही ज्ञान योग तीसरा उपाय है (३) ॥ १७ ॥ विद्वद्वर श्रीकेशवदेवजी के पुत्र—श्रीमान् महा महोपाध्याय श्री वोपदेवजी महाराज ने यह सुन्दर श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका रची है ॥ १८ ॥ भक्तजन तथा पण्डितों को चाहिये कि इसको भलीभांति विचारैं क्योंकि इस के विचारने से सव कुतर्क दूर होकर श्रीकृष्ण परमात्मा में भक्ति बढेगी यही वोपदेव कृत भागवत है इस को हम भूमिका में सिद्धकर पूर्णतया पूर्ण कर आये हैं ॥ १९ ॥ शुभमस्तु लेखकपाठकयोः बृन्दावन विहारिणो नमः ॥

दोहा ॥

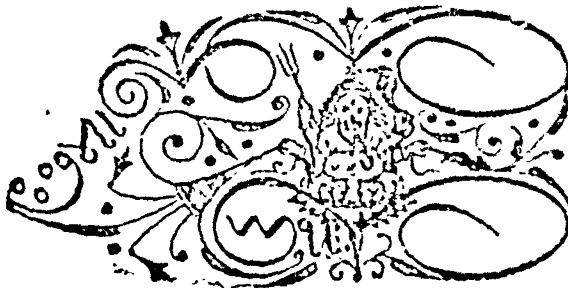
श्री नारायणदास जी सारस्वत गुण रास ।
तिनकेहिसुतहरिचरणरत बैजनाथ द्विजदास ॥
उन नीको टीको रच्यो हरिलीला मृतवर्ष ।
द्वादशस्कन्ध पूरण सुलखि पूरण पूरण हर्ष ॥

इति द्वादशस्कन्धः समाप्तः —शुभम् ॥

(सँस्कृतार्थः)—इदानीमुपासने उपानाह उपासनमिति (उपासनम्) भगवदुपासना तु (कर्मभक्तिज्ञानयोगैः) कर्मयोगेन भक्तियोगेन ज्ञानयोन च (त्रिधा) त्रिप्रकारकम् तेषु क्रमादधिकारिण आह (येषाम्) मनुष्याणाम् (धीः बुद्धिः (विषये) सांसारिकविषयेषु (अदोषा) दोषशून्याः [तैः] पुरुषैः कर्मयोगेन भगवदुपासनं कृतम् । पुनर्येषां बुद्धिः सदोषा विषयेषु दुष्टत्वज्ञानसहित तैः पुरुषैः भक्तियोगेन भगवदुपासनं कृतम् पुनरपि येषां पुरुषाणां तु [नैव] विषयेषु बुद्धिर्नास्त्यव तैर्ज्ञानयोगेनभगवदुपासनं कृतम । तदुक्तम् "निर्विण्णानां ज्ञानयोगान्यासिनामिह कर्मसु तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कर्मिणाम् ॥१॥ यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु

यः पुमान् न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धये ॥ २ ॥ " ॥ १६ ॥ कर्मेषु अनुगतानां कर्माकर्मणामादि कर्मणामिति [विष्णो] श्रीकृष्णे भगवति [कर्मणाम्] स्वकृतकर्मणाम् [अर्पणम्] समर्पणम् एतत् कर्मयोगः प्रथमः उदायः [१] [विष्णोर्वार्ता ....] सज्जनगोष्ठीषु । प्रसंगात्प्रसंगवशात् ततः श्रीकृष्णकथाश्रवणं स एव भक्तियोगो द्वितीयः (२) । (विजने) एकान्ते वनगह्वरे (विष्णोः चिन्तनम्) .... कृष्णस्मरणम् स एव ज्ञानयोगस्तृतीयः (३) इति क्रमात् — क्रमशः योगानां त्रयाणामित्यर्थः लक्षणम् [illegible] ॥ १७ ॥ (इति) अंगुल्यानिर्देशः या च .... नीता सैव निरूपणः । (भागवतस्य) श्रीमद्भागवत प्रबन्धस्य न तु देवीभागवतस्य तस्य तु पुराणेषु गणनत्वात् । (स्कन्धो) [illegible] गुणांवाशिष्टा (अनुक्रमणी) अनुक्रमणिका (कृता) केन [illegible] ([illegible]) कथम्भूतेन (विदुषा) [illegible] पुनः [illegible] — ([illegible]) विद्वान् यः केशवनामा पण्डितः तस्य सूनुः पुत्रस्तेन ॥ १८ ॥ एवं [illegible] टीका [illegible] कर्म्योपसंहरति — हरिलीलेति — (इयं हरिलीलेतिनाम) हरिलीला नाम्नी ग्रन्थः (हरिभक्तैः) कृष्णाराधनतत्परैः भक्तैः (निलोक्यताम्) [illegible] [illegible] भक्त्युद्रेका [illegible] तद्विषयं [illegible] । ([illegible]) [illegible] प्रबन्धानन्तु [illegible] (हरौ) श्रीकृष्णे [illegible] हरिरिति-पदं कविना प्रोक्तं तत ज्ञायते इति [illegible] तत्र समाप्त्यवसरे [illegible] युक्त एवाति [illegible] । [illegible] " विवर्द्धते ,, इतिपदं [illegible] मंगलमाचरणीयमिति शिष्टाचारादेवोऽपि सिद्धः ॥ १९ ॥

वंशे सारस्वतीये सुविपुलगणवान्सर्वविद्यासनाथः ।
श्रीमन्नारायणाख्यो द्विजवरमुकुटस्तत्सुतो वैद्यनाथः ॥
तेन व्याकारि टीका प्रचरतु सततं कृष्णलीलामृताख्या ।
स्कन्धश्च द्वादशाध्यायततगदनयुतो ग्रन्थ पूर्त्यानुपूर्णः ॥१२॥



इतिश्रीमहामहोपाध्याय केशवदेवसुत श्रीमद्विद्वद्वर वोपदेवकृतायां हरिलीलायां मुरादाबादनिवासि सारस्वतवंशोद्भव श्रीमन्नारायणशास्त्रिसूनुवैद्यनाथशास्त्रि कृत कृष्णलीलामृताख्यटीकायां द्वादशस्कन्धनिर्णयः पूर्णः ॥ १२ ॥

श्रीमद्भागवत माहात्म्य.

पहिला अध्याय ॥

जिन जातेहुएके पीछे गमनकरते २ श्रीव्यासजी महाराज वियोग से व्याकुलहो पुत्र २ पुकार ने लगे, वही वचन तन्मय होजाने के कारण वृक्षोंने भी उनसे कहा उस सब जीवों के हृदयमें स्थित मुनिको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ १ ॥ नैमिषारण्यक्षेत्रमें स्थित महाबुद्धिशाली सूतजीको प्रणाम कर कथारूपी अमृतस्वादके रसिक शौनक जी कहते हैं ॥ २ ॥ शौनकजी बोले कि, हे सूत ! सर्वथा अज्ञानरूप अंधकारका नाशक कोटि सूर्यसम प्रकाशक हमारे कर्णोंकी रसायन कथाओं का सार तुम वर्णन करो ॥ ३ ॥ किसप्रकार से भक्ति ज्ञान वैराग्यकी प्राप्ति तथा वृद्धि होती है और महात्मा वैष्णव किस प्रकार माया मोह को छोड़ते हैं ॥ ४ ॥ इस घोर कलि काल के आने से जीव असुरता को प्राप्त होगये हैं उन दुःखों से दुःखित जीवों के उद्धारार्थ क्या कर्तव्य है ॥ ५ ॥ जो कल्याणों का कल्याण पवित्रों का पवित्र और भली भांति कृष्ण प्राप्ति का उपाय हो सो आप हम से कहिये ॥ ६ ॥ चिन्तामणि— संसार सुखको इन्द्रस्वर्ग की संपदाको, देता है और गुरु प्रसन्न होकर योगी दुर्लभ वैकुण्ठगति को देता है ॥ ७ ॥ सूतजी बोले हे शौनक ! तुम्हारे मन बहुत प्रसन्न है इस लिये विचारकर सर्व सिद्धान्तयुक्त जगत् का भयनाशक ॥ ८ ॥ भक्तिका वर्द्धक श्रीकृष्णके संतोषका कारण मैं तुमसे कहताहू सोतुम सावधान होके सुनो ॥ ९ ॥ कालरूपीव्याल के मुखके ग्रास होनेके त्रासका नाशक श्रीमद्भागवतशास्त्र कलियुगमें शुकदेवजीने कहा है ॥१०॥ इससे अधिक मन शुद्धि के अर्थ और कुछ उपाय नहीं है जन्मान्तरके पुण्य प्रकट होनेसे भागवत की प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥ जिस समय सभा में स्थित परीक्षित से शुकदेवजी कथाकहने का प्रारंभ किया चाहतेथे उसीसमय देवता अमृत का कलश लेकर आये ॥ १२ ॥ शुकदेवजी को नमस्कार कर अपने कार्य में कुशल सबदेवता बोले महाराज ! कथारूपीअमृत हमें दीजिये इसके बदले यह अमृत हमसे लीजिये ॥१३॥ इस बदले के करने से राजा अमृत पियेंगे और हम सब श्रीमद्भागवत कथारूपी अमृत पियेंगे॥१४॥यह सुन परीक्षित—हँसकर मनमें विचारने लगे कि— कहां काच और मणि-कहां सुधा तथाकथा॥१५॥तिनकोअभक्तजानकर कथारूपीअमृत शुकदेवजी ने नहींदिया अतएव श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुर्लभहै॥१६॥इसप्रकार राजाकी मोक्ष देख ब्रह्माजीने विस्मितहो सत्यलोक में तुलाको बांध और साधनों के संग इसे तोला ॥ १७ ॥ इसके भारी होजाने से और सब साधन हलके हुए तिस समय सब ऋषि बडे विस्मितहुए ॥१८॥ पृथ्वी में भागवत शास्त्रको भगवान् का रूपमान्ते हुये जो पढने सुननेसे शीघ्रवैकुण्ठ का फल देता है ॥ १९ ॥ सप्ताह श्रवण करनाभी सर्वथा मुक्तिदायक है यह सनकादिकों ने दया करके नारदजी से पूर्वकाल में कहा है ॥ २० ॥ यद्यपि यह कथा नारदजी ने ब्रह्माजी से सुनी है तथापि इसके सप्ताहमें श्रवण करनेकी विधिसे सनत्कुमारने तिससे वर्णन करी है ॥२१॥ शौनक जी बोले लोकमें क्लेश हरनेवाले दो घडी से अधिक एक स्थानमें न रहनेवाले नारदजीने यह कि- सप्रकार स्थिरहोकर प्रीति से विधिसे श्रवणकरीऔर उनके साथ इनका संयोग कहां हुआ ॥२२॥ सूतजी बोलेयहभक्तियुक्त कथानक मैं आपको सुनाता हू जो कुछ मुझसे शुकदेवजी ने अपना अ- न्तरंगशिष्य जानकर कहाहै ॥ २३ ॥ एक समय बद्रीरकाश्रममें वे चारों ऋषि सत्संगके निमित्त नारदजीके देखने को आये ॥ २४ ॥ कुमारबोले नारदजी ! तुम दीनमुख कैसे हो रहेहो, तुम्हें क्या चिन्ता है जल्दीसे कहां को जाओगे और अब कहांसे आयेहो ॥ २५ ॥ इस समय तुम

ऐसे शून्यचित्त हो जैसे किसी का धन खोजाय मुक्तसंगपुरुषों में यह असावधानी कैसे अतः इसका
कारण कहो ॥ २६ ॥ नारदजी बोले, मैं सब लोकों में उत्तम पृथ्वी को जानकर पुष्कर प्रयाग
काशी गोदावरीको गया ॥ २७ ॥ हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग, सेतुबन्ध आदि तीर्थों में इधर उधर
घूमता फिरा ॥ २८ ॥ परन्तु कहीं मैंने सन्तोषकारक कोई मनका सुख न देखा अधर्म के
होने से कलियुगने यह सर्व पृथ्वी ग्रसली है ॥ २९ ॥ अब सत्य तप शौच दया नहीं है,
इसकारण जीव तुच्छ झूठबोलने और केवल उदरपोषण करने वाले होगये हैं ॥ ३० ॥ आलसी
बुद्धिहीन दीन रोगादि से पीड़ित पाखण्ड निरत आरंभ मन्दमति हताश कलि भाग्य से हीन भाग्य
सहित हैं ॥ ३१ ॥ घर में स्त्री ही की प्रभुताई है साले सम्मति दाता हैं लोभ से कन्या
विक्रय होता है स्त्री पुरुषों में कलह रहने लगा है ॥ ३२ ॥ आश्रम तीर्थ और
नदियों में दुष्टों का अधिकार होगया है । और देवताओं के स्थान भी दुष्टों ने नष्ट
भ्रष्ट करदिये हैं ॥ ३३ ॥ योगी, सिद्ध, ज्ञानी, और सत्कर्मयुक्त कोई भी मनुष्य नहीं है
कलिरूपी दावानल से सब साधन भस्म होगए हैं ॥ ३४ ॥ अन्नादि के बेचनेवाले नगर
के मनुष्य, वेद बेचनेहारे ब्राह्मण, भग बेचनेवाली स्त्रियें, कलियुग में होती हैं ॥ ३५ ॥ इसप्रकार
कलियुग में दोष देख पृथ्वी में विचरता हुआ मैं यमुना के किनारे आया जहाँ कृष्णचन्द्र ने
अनेक लीला की थीं ॥ ३६ ॥ वहां जो मैंने आश्चर्य देखा सो हे मुनियों ! श्रवण करो एक
युवती दुःखी बैठीथी ॥ ३७ ॥ उसके धोरे दो बूढ़े अचेत पड़े श्वास ले रहे थे और उन
की शुश्रूषा करती और समझाती हुई उनके आगे रोतीथी ॥ ३८ ॥ अपने शरीर के रक्षा करने
वालेको दशों दिशा में देखती थी सैकड़ों स्त्री उसकी पवन करती और बारम्बार समझातीं थीं ॥
॥ ३९ ॥ उसे दूरसे देखतेही मैं कौतुक से उसके धोरे गया मोह वाली मुझे देखतेही उठ बैठी
और व्याकुल हो बोली ॥ ४० ॥ हे साधु ! थोड़ी देर ठहरो मेरी चिन्ता को नाश करो
तुम्हारा दर्शन संसार के जीवों का निश्चय पाप दूर करनेवाला है ॥ ४१ ॥ प्रायः तुम्हारे वाक्य
से दुःखकी शांति होजायगी जब बड़ा भाग्य होता है तब तुम्हारा दर्शन होताहै ॥ ४२ ॥ नारदजी
बोले तू कौन है, और यह दोनों कौन है और यह कमलनयनी स्त्रियें कौनहैं । देवि ! तुम्हारे दुःख
की प्राप्ति कैसेहो उसकारण को विस्तारसहित कहो ॥ ४३ ॥ बाला बोली मैं भक्ति जगत् देव-
विख्यात हूं और यह ज्ञान वैराग्य नाम मेरे दोनों पुत्र कालयोग से वृद्ध होगये हैं ॥ ४४ ॥
यह गंगादि नदियें मेरी सेवाकरने को आगई हैं तथापि देवताओं के सेवा करनेसे भी मेरी शांति
नहीं होती ॥ ४५ ॥ हे तपोधन ! इस समय मन लगाकर बात सुनो मेरी कथा बड़ी है
उसे सुनकर सुख होगा ॥ ४६ ॥ मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न होकर कर्णाटक देश में वृद्धि को प्राप्त
हो कहीं कहीं महाराष्ट्र देश में और गुर्जर देश में वृद्ध होगई ॥ ४७ ॥ वहां घोर कलियुग से
पाखण्डों से खण्डित शरीर मैं पुत्रों सहित बड़ी दुर्बल होगई ॥ ४८ ॥ अब इस समय वृन्दावन
में फिर सुन्दरी रूपवती नवयौवनाकी नाईं होगई हूं ॥ ४९ ॥ यह मेरे दोनों पुत्र श्रम से दुःखित पड़े
हैं इस स्थान को छोड़ मैं दूसरे स्थानको जाती थी ॥ ५० ॥ मैं युवती होगई
और मेरे दोनों पुत्र वृद्ध होगये इसी दुःखसे मैं दुःखी हूं ॥ ५१ ॥ माता वृद्ध
पुत्र तरुण यह तो योग्य है पर यह विपरीत तो घटताही नहीं ॥ ५२ ॥ अतःमैं बड़े आश्चर्य से
अपने आत्मा कूं शोचतीहूं हे योगी महात्मन् ! आप कहिये इसमें क्या कारण है ॥ ५३ ॥
नारद जी बोले हे निष्पापे मैं ज्ञान से अपने में यह सब तेरी वार्ता देखता हूं तू दुःख मत करे
परमेश्वर तेरा कल्याण करेंगे ॥ ५४ ॥ सूत जी बोले क्षण मात्र में सब विचार कर नारदजी
बोले हे बाले ! सावधान होकर सुन इस समय दारुण कलियुग वर्तमान है ॥ ५५ ॥ इस

कारण सदाचार योग मार्ग तप लुप्त होगये हैं इसी से मनुष्य पाप करने के कारण असुर भाव को प्राप्त होगये हैं ॥ ५६ ॥ इस युग में साधु दुःखी हैं असाधु सुखी हैं जो बुद्धिमान धैर्य धारण करता है वोही धीर पंडित है अथवा ॥ ५७ ॥ यह शेष जी को भार कराने वाली पृथ्वी अब छूने और देखने के योग्य नहीं हैं और प्राते वर्ष क्रम से ऐसी ही होतीजाती है कि, अब कहीं शुभ वार्त्ता नहीं दीखती ॥ ५८ ॥ तुझे भी पुत्र सहित अब कोई नहीं देखता पुत्र द्वारा धनादि के अनुराग से बंधे हुए तेरा आदर नहीं करते इस से तू जर्जर होगई है ॥ ५९ ॥ वृंदावन के संयोग से फिर तू नवीन तरुणी होगई इस से वृंदावन धन्य है जहां भक्ति विराजती है ॥६०॥ इस वृंदावनमें इन ज्ञान वैराग्योंके ग्राहक नहीं है इसीसे यह वृद्धावस्था को नहीं त्याग करेंगे इस स्थान में इन ज्ञान वैराग्य की और कुछ तेरी भी काम क्रोधादि दुःख भावसे सुख पूर्वक स्थिति होगी ऐसा जाना जाता है ॥ ६१ ॥ भक्ति बोली महाराज परीक्षित ने इस अपवित्र कलियुग को क्यों स्थापित किया जो इसके प्रवृत्त होतेही सववस्तु निस्सारहोगई ॥ ६२ ॥ न जानै दयायुक्त भगवान् विष्णु इस अधर्म कूं कैसे देखते हैं यह मेरा संदेह दूर करो तुम्हारी वाणी से मैं सुखी हूंगी ॥ ६३ ॥ नारद जी बोले हे बाले ! जो तैंने पूछा है तो प्रेम से श्रवण कर मैं तेरे अर्थ सम्पूर्ण वर्णन करूंगा जिससे तेरा दुःख दूर होगा ॥ ६४ ॥ जब मुकुंद भगवान पृथ्वी को त्याग कर अपने धाम को पधारे उसी दिन से सब साधन का बाधक क- लियुग आनकर प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥ जिस समय दिग्विजय करते राजा परीक्षित ने कलि को देखा तुरंतही इसे मारनेको उद्यतहुए तब यह दीनहो शरणमें आनकर प्राप्तहुआ तबराजाने विचारा कि, यह शरणमें आयाहै इसकारण मुझे मारना नहीं योग्य राजाकी नाईं सारका भोगनेवालाथा ॥६६॥क्योंकि जो फल तपस्या और योगसमाधिसेभी नहीं होता है वोह फल कलियुग में केवल केशव के नामलेने से प्राप्तहोता है ॥ ६७ ॥ जिसमें केवल एक भक्तिही साधन है और ज्ञान वैराग्यादि जिसके बीच नीरस हैं ऐसे कलियुगको देख कलिवासी जनों के सुखार्थी, केवल भक्ति करनेसेही मनुष्य तर जांयगे इसीसे राजाने उसका स्थापनकिया ॥ ६८ ॥ कुकर्माचरण करने से सबका स्थिरांश सब निकलगया है और पृथ्वीमें पदार्थ बीजहीन भूमिकीनाईं उत्पन्न होते हैं ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंने थोडे धनके लोभसे भगवत्सम्बन्धी वार्ता घरघर में जिस तिस मनुष्य से कहनी प्रारम्भ करदी है इस्से कथा का फल जातारहा ॥ ७० ॥ बडे भयंकर कुकर्मी नास्तिक पापी मनुष्य तीर्थों में वास करने लगे इसकारण तीर्थोंका सार जातारहा ॥ ७१ ॥ जिनके मन काम क्रोध महालोभसे व्याकुल है वोभी तपकरनेलगे इस्से तपस्याका सारभी जातारहा ॥ ७२ ॥ मन के न जीतने से लोभ दंभ पाखण्ड के करने से शास्त्रके अनभ्यास से ध्यानयोगका फलभी न रहा ॥ ७३ ॥ पंडित माहिषकी नाईं स्त्रियोंमें रमण करकर पुत्रोत्पादन करने में तो चतुर हैं परन्तु मुक्तिसाधनमें मूर्ख हैं ॥ ७४ ॥ सब संप्रदायों में श्रेष्ठ है वैष्णवता भी नहीं पाईजाती इस प्रकार स्थान २ में सब पदार्थोंका सार लुप्तहोगया ॥ ७५ ॥ फिर यह तो युगधर्मही है इसमें किसीका दोषनहीं इसकारण श्रीकृष्णचन्द्रजी निकट स्थितहुएभी सहनकरतेहैं ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले हे शौनक ! इसप्रकार नारदजीके वचनसुन बडा विस्मयको प्राप्तहो भक्ति फिर बोली सो तुम सुनो॥७७॥भक्तिकहनेलगी कि हे देवर्षे ! तुम धन्यहो मेरे भाग्यसेही आकर प्राप्तहुएहो साधुओंका दर्शन लोकमें सब सिद्धियोंका दाता है ॥७८॥ जगतमें जिन तुम्हारी केवल अनुपम वचनरचनाकूं विचारकर कयाधूका पुत्र प्रह्लाद मायको त्यागताहुआ और जिसकी कृपासे यह ध्रुवजी अचलपदका प्राप्तहुए सब क्षेमोंके पात्र ऐसे ब्रह्माके पुत्र नारदजीको मेराप्रणाम है ॥७९॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे भागवतमाहात्म्ये वैद्यनाथकृत भाषाटीकायां भक्तिनारदसमागमोनामप्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥

नारदजी बोले—तू वृथा क्यों दुःखित और चिंतातुर होरही है श्रीकृष्णके चरणारविन्द के स्मरण करने से सब दुःख जातारहेगा ॥ १ ॥ जिन श्रीकृष्णने कौरवोंके भारि संकट से द्रौपदी की रक्षाकी गोपकुमारी—शंखचूडादिसे बचाई वोह कहीं नहीं गये हैं ॥ २ ॥ तू तो भक्ति उनको प्राणोंसभी प्यारी है तुमसे बुलाये भगवान नीचोंके घरोंमेंभी जाते हैं ॥ ३ ॥ सत्ययुगादि तीन युगोंमें ज्ञान और वैराग्यमुक्तिके साधक थे कलियुगमें केवल भक्तिही ब्रह्मसायुज्यकी देनेहारी है ॥ ४ ॥ वोह परमात्मा चिद्रूप परमानन्द, निर्गुण सुन्दर कृष्णब्रह्म आपना स्वरूपही तुमको उत्पन्न करतेहुए ॥ ५ ॥ तब तैंने हाथ जोड़कर कहा कि, मैं क्या करूं तब कृष्णने आज्ञा दी कि, मेरे भक्तोंको पुष्टकर अब तैंने यह अंगीकार किया तब भगवान् कृष्ण प्रसन्नहुए ॥ ६ ॥ और तेरे निमित्त यह मुक्ति दासी दी तथा यह दोनों ज्ञान वैराग्य पुत्र दिये ॥ ७ ॥ अपने रूप से तो तू वैकुण्ठमें पुष्टि करती है और पृथ्वीमें भक्तों के विशेष अनुग्रह के अर्थ तैंने छायारूप किया है ॥ ८॥ मुक्ति, ज्ञान, वैराग्य, साथमें लेकर पृथ्वी में आई और सतयुग से द्वापर तक बड़े आनंद से पृथ्वीमें रहीं ॥९॥ कलियुगमें पाखण्डसे पीड़ित होनेसे मुक्ति प्राप्तहोगई तुम्हारी आज्ञासे फिर वोह शीघ्र वैकुण्ठकोंगई ॥१०॥ और फिर तेरे स्मरणमात्रसेही इस स्थानमें फिर आजाती है और तैंने यह पुत्रभावके आगे निकट रक्खे हैं ॥११॥ कलियुगमें इनकी त्याग से यह मंद वृद्ध तेरे पुत्र होगये हैं तोभी चिन्ता त्यागकर इसका मैं उपाय विचारता हूं ॥१२॥ सूतजी बोले इस प्रकार नारदजी से कहेहुए आपने माहात्म्य को सुनकर भक्ति—सर्वाङ्ग पुष्ट हो नारदजी से कहनेलगी ॥ २२ ॥ भक्ति बोली हे नारदजी ! तुमको धन्य है तुम में मेरी प्रीति है सो मैं कभी नहीं त्याग करूंगी सदैव चित्तमें धारण किये रहूंगी ॥२३॥ हे महात्मन् ! तुमने कृपा पूर्वक मेरी सब बाधा क्षणमात्र में दूर करी परन्तु अभीतक इन मेरे पुत्रोंको चेतना नहीं हुई सो इन्हे सचेतकरो २ ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि यह दयालु नारदजी भक्ति के वचन सुनकर हाथ से ठहराते हुए उन दोनों को जगाने लगे ॥ २५ ॥ कान के पास मुख कर नारदजीने ऊंचे स्वर से पुकार ज्ञान शीघ्र जागो वैराग्य शीघ्र जागो ॥ २६ ॥ वेदवेदान्त के शब्द और बार २ गीता के पाठ करके जब नारदजी ने जगाया तो वे बड़ी कठिनाई से उठे ॥ २७ ॥ आंखें मीचे बड़े आलस में जंभाई लेने लगे बगलेकी नाईं श्वेत बाल होरहे सूखे काष्टकीनाईं शरीर था ॥ २८ ॥ भूख के मारे क्षीण दीन हो कर फिर सोगए तब नारदजी को बड़ी चिन्ता हुई क्या करूं ॥ २९ ॥ अहो इन दोनों की बड़ी निद्रा कैसे जाय इस प्रकार विचार करते करते नारदजी गोविन्द भगवान् का स्मरण करनेलगे ॥ ३० ॥ तब आकाशवाणी हुई तपोधन ? खेद मतकरो तुम्हारा उद्यम सफल होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥ इसके निमित्त तुम सत्कर्म का प्रारम्भ करो और साधुओं के भूषण महात्मा वे सत्कर्म तुम से कहेंगे ॥ ३२ ॥ सत्कर्म के करने मात्रसेही इन दोनों की निद्रासहित वृद्धता जातीरहेगी और सब जगह भक्ति का प्रकाश होगा ॥ ३३ ॥ यह आकाशवाणी उन सबों ने स्पष्ट सुनी नारदजी ने कहा यह क्या बात है मैंने नहीं जानी तब बड़े आश्चर्यकूं प्राप्तहुए ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले इस आकाशवाणी ने भी गुप्त रूप से कहा है सो वोह क्या साधन है जिससे इन दोनों का कार्य हो ॥ ॥ ३४ ॥ वोह संत कहां हैं और साधन किस प्रकार देंगे और जो आकाशवाणी ने कहा है मैं उसे किस प्रकार करूं ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले नारदजी भक्ति ज्ञान वैराग्य कूं तहांही ठहराकर आप वहां से चल तीर्थोंमें होते हुए मुनियों से पूछते हुए ॥ ३७ ॥ सबने वृत्तान्त सुना परन्तु किसीने निश्चय कर न बताया कोई बोले असाध्य है कोई बोले समझ में नहीं आता ॥ ३८ ॥ कोई चुप होगए कोई सुनतेही चलदिये इस प्रकार त्रिलोकी में आश्चर्यदायक बड़ा हाहाकार हुआ।

॥ ३९ ॥ जब कि वेद वेदान्त और बारम्बार गीता के पाठ सेभी भक्ति ज्ञान वैराग्य न उठे तो ॥ ४० ॥ और उपाय कछु नहीं है यह वार्ता मनुष्य कानों कानों तक पहुँची योगिराज नारदजी के भी बुद्धि में यह बात न आई ॥ ४१ ॥ तो इतर मनुष्य इसे किस प्रकार कहसकते हैं इस प्रकार ऋषियों ने दुर्गम वार्ता विचारी ॥ ४२ ॥ तब नारदजी चिन्तातुर हो वृन्दावन में आये और यह निश्चय किया कि यहां तप करूं ॥४३॥ तबतक आगेखडेहुए सनकादि मुनियों को जिनकी करोड़ सूर्य की समान प्रकाश है देख मुनि श्रेष्ठ नारदजी बोले ॥ ४४ ॥ नारदजी कहने लगे इस समय बडे भाग्य से आपका दर्शन हुआ। हे कुमारो ! मेरे ऊपर कृपा करके शीघ्र कहो ॥ ४५ ॥ तुम सब बुद्धिमान शास्त्र वेत्ता योगी हो सदा पांच वर्ष के रहते और सबसे पूर्व उत्पन्न हुए हो ॥४६॥ सदा बैकुण्ठ में रहते भगवान् के गुणानुवाद गाते हो भगवान् की लीला रूपी अमृत रससे मत्त एक कथामात्र सेही जीते हो ॥ ४७ ॥ "हरिः शरण मेव" यही जिन तुम्हारे मुख से नित्य बचन निकलता है इस कारण काल से प्राप्त जरा तुमको बाधा नहीं करती ॥ ४८ ॥ पहले नारायण के दो द्वारपाल तुम्हारी भ्रूभंग मात्रसेही पृथ्वी में गिरे और फिर तुम्हारीही कृपासे शीघ्र बैकुंठ-को गए ॥ ४९ ॥ मेरा बडाही भाग्य है जो आपका दर्शन प्राप्त हुआ। आप दयालुओं को मुझ दीन के ऊपर दया करनी योग्य है ॥ ५० ॥ जो कुछ आकाशवाणी ने कहा है सो क्या साधन है यह आप बताइए और कैसे अनुष्ठान करना चाहिये सो आप विस्तार पूर्वक कहो ॥ ५१ ॥ भक्ति ज्ञान वैराग्य कूं किस प्रकार से सुख की प्राप्तिहो और सब वर्णों में प्रेम पूर्वक उनका कैसे स्थापन होगा ॥ ५२ ॥ कुमार बोले देवर्षे ! चिंता मतकरो मन में प्रसन्न हो इसका उपाय सुख साध्य पूर्वकालसेही चलाआता है ॥ ५३ ॥ अहो नारदजी ! धन्य हो तुम विरक्तों के शिरोमणि हो सदा श्रीकृष्ण के दासों में तुम अग्रणी हो योग के सूर्य हो ॥ ५४ ॥ भक्ति के निमित्त श्रमकरना यह तुममें कुछ विचित्र वार्ता नहीं है श्रीकृष्ण दासों को तो सदा भक्ति की स्थापना करनीही उचित है ॥ ५५ ॥ ऋषियों ने लोक में बहुत से मार्ग प्रकाश किये हैं वे सब श्रम साध्य हैं और प्रायः सब स्वर्गफल के दाता है ॥ ५६ ॥ परन्तु जो बैकुण्ठ साधक पंथ है वोह गुप्तही है उस के उपदेश करनेवाले पुरुष भाग्य सेही प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥ जो पूर्व आकाशवाणीने तुमको सत्कर्मका उपदेश किया है सो स्थिर चित्तसे प्रसन्न होकर सुनो ॥ ५८ ॥ द्रव्य यज्ञ तपोयज्ञ योगयज्ञ स्वाध्याययज्ञ ज्ञानयज्ञ यह सर्व कर्म फलसे स्वर्गादि के देनेहारे हैं ॥ ५९ ॥ परन्तु सत्कर्म का जतानेहारा पंडितों ने ज्ञानयज्ञ कहा है वही श्रीमद्भागवत्का आलाप जो शुकादि महात्माओंने गाया है ॥ ६० ॥ उसके शब्द भक्ति ज्ञान वैराग्यका बडा बल बढेगा दोनोंका कष्ट दूर होगा भक्तिको सुख मिलेगा ॥ ६१ ॥ श्रीमद्भागवतकी ध्वनिसे यह सब कलिके दोष इस प्रकार नाश होजायँगे जैसे कि सिंहके शब्दसे भेडिये भागजाते हैं ॥ ६२ ॥ तब ज्ञान वैराग्यसे संयुक्त प्रेमरस बहानेहारी भक्ति घर २ मनुष्य २ में क्रीडा करेगी ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले जब कि वेद वेदान्तके शब्द और गीतापाठसेभी भक्ति ज्ञान वैराग्यका निक नहीं उठा तो ॥ ६४ ॥ श्रीमद्भागवत के आलाप से कैसे चेतनताकूं प्राप्त होगा उसकी कथामेंभी तो श्लोक श्लोकमें पद पदमें वेदार्थही है ॥ ६५ ॥ अमोघदर्शन आप लोग यह मेरा संदेह दूर कीजिये हे शरणागत वत्सलो ! इसमें विलम्ब मत करो ॥ ६६ ॥ कुमार बोले कि वेदोपनिषद् के सारसे भागवत कथा हुई है तिससे पृथग्भूत हुई फलोत्पत्ति और भी अति उत्तम होगई है ॥ ६७ ॥ जैसे नीचे से ऊपर तक रसवाली चीजमें बाहर से उतना स्वादिष्ट नहीं होता जितनाकी वोही रस पृथक् फलों होकर चित्तमनोहररूपहोता है

॥ ६८ ॥ और इसमें स्थित भी ऐसा स्वादिष्ट नहीं होता जैसा कि पृथक् होकर और स्वादिष्ट देवताओंका रसवर्द्धक होता है ॥ ६९ ॥ जैसे ईख गांठमें मधुर स्वादवती है परन्तु ओर पृथक् होकर कैसी मीठी लगती है ऐसा भागवतकथा है ॥ ७० ॥ यह सर्व वेदसम्मत भागवत पुराण ज्ञान वैराग्यके स्थापन करनेहीको प्रकट किया है ॥ ७१ ॥ वेद वेदान्तके पारगामी गीताके कर्त्ता दुःखकूं प्राप्त होतेहुए अज्ञान सागर में मोहित व्यासजीसे ॥ ७२ ॥ जो तुमने पहले चतुःश्लोकी भागवत कही जिसके श्रवणमात्रसे तत्काल व्यासजी दुःखरहित होगये ॥७३॥ फिर तुम्हें इसमें विस्मय कैसे प्राप्त हुआ जो तुम प्रश्न करतेहो श्रीमद्भागवत जो शोकदुःखका नाशकहै सो सुनाओ॥७४॥नारद बोले जिसका दर्शन तत्काल पापोंको दूरकर संसारी दुःख से दुःखियों का कल्याणकारी है जो आपके मुखों से मानिन्द्र कथा के गान करने वाले के प्रेम से प्रकाश करनेवाले भगवान की शरण है ॥ ७५ ॥ जब बहुत जन्मके भाग्य उदय होते हैं मनुष्योंको सत्संग प्राप्त होताहै तब मोह मदके अंधकारका नाशहोकर ज्ञान उदय होताहै ॥७६॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवत मा० भाषाटीकायां कुमार नारद संवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



नारद जी बोले यत्न पूर्वक भक्ति ज्ञान के स्थापन के लिये मैं शुद्ध शास्त्र की कथा का उज्ज्वल ज्ञान यज्ञ करूंगा ॥ १ ॥ कहां यह महा यज्ञ किया जाय सो उस स्थान को बतादो वेद के जानने वालों में शुक शास्त्र की महिमा कहने योग्य है ॥ २ ॥ यह श्री मद्भागवत की कथा कितने दिनतक सुननी योग्य है और उस में क्या विधान है सो मुझ से कहिये ॥ ३ ॥ कुमार बोले कि हे नारद जी ! सुनो हम कहते हैं नम्र भूत ज्ञानयुक्त गंगा के समीप ही आनंद नाम तट है ॥ ४ ॥ अनेक ऋषिगणों से युक्त देवता सिद्धों से सेवित अनेक वृक्ष पत्रोंसे संमिलित नवीन कोमल बालुका से शोभित ॥ ५ ॥ वहां मनोहर एकान्त स्थान सुवर्ण के आकारवाले कमलोंकी सुगन्धि से सुशोभित जिसके समीप उनींदहुए वहां जीवोंके मनमें वैर नहीं होता ॥ ६ ॥ उस स्थान में तुमको सप्ताहिक होकर ज्ञानयज्ञ करना चाहिये और वहां ही पूर्व अपूर्व और रस रूप वाली कथा होगी ॥ ७ ॥ और निर्बल अपनेसे जर्जरित देह वे ज्ञान वैराग्य को भक्ति सहित आगे करके वहां तुमभी आवेगे जहां भागवतकी कथा होती है वहां भक्ति आदिक सब आते कथाके शब्द श्रवण मात्र से भक्ति ज्ञान वैराग्य का तिक यकृत्य युक्तहोता है ॥ ९ ॥ सूत जी बोले कि, इस प्रकार कह कुमार—नारद जी के साथ ही कथा के पान करने को शीघ्र गंगा तट में आवे ॥ १० ॥ जब वे उस तटपर आये तब बड़ा कोलाहल भूलोक देवलोक और ब्रह्मलोकमें हुआ ॥ ११ ॥ श्रीमद्भागवत रूपी अमृत पानकरनेको प्रथम यह सब वैष्णव चारो ओर से दौड़े ॥ १२ ॥ भृगु वसिष्ठ च्यवन गौतम मेधा तिथि देवल देवरात परशुरामजी विश्वामित्र शाकल मृकंड के पुत्र मार्कण्डेय अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय पिप्पलाद ॥१३॥ योगेश्वर याज्ञवल्क्य जैगीषव्य व्यास पराशर छायाशुक आजात जन्तु ये मुख्य २ ऋषि गण अपने पुत्र शिष्य स्त्री सहित प्रणयपूर्वक आये ॥ १४ ॥ वेदान्त वेद मंत्र तंत्र अपनीमूर्ति धारणकर सत्रह पुराण छः शास्त्रभी आये ॥ १५ ॥ गंगादि नदियें पुष्करादि सरोवर सब क्षेत्र दिशा और दंडकादि वन ॥ १६ ॥ पर्वतआदि सब आय और जो देवता गंधर्व दानव शरीरके गौरव से नहीं आये उन्हेंमान पूर्वक ब्रह्माके पुत्र भृगुजी बुलालाये ॥१७॥ तब नारद से दीक्षितहो दियेहुए आसन उत्तम पर कृष्णकथामें तत्पर सबसे नमस्कृतहो कुमार बैठे ॥॥१८॥

वैष्णव विरक्त संन्यासी ब्रह्मचारी यह मुख्य स्थानों में स्थितहुए सबके आगे नारदजी बैठे॥१९॥ ऋषिगण देवता वेद उपनिषद् तीर्थ और स्त्रियें यथायोग्य स्थानोंमें बैठीं॥२०॥तब जय, नमः और शंखोंका शब्दहोनेलगा और चूर्ण खीलैं फूलोंकी बडीवर्षाहुई॥२१॥कितनेतो देवता विमानोंमें चढे आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥ सूतजीबोले इस प्रकार सबके एक चित्त होकर बैठनेमें नारदजी के निमित्त कुमारों ने भागवत माहात्म्य कहना प्रारंभ किया ॥ २३ ॥ कुमार बोले कि शुकशास्त्रसे उत्पन्नहुई महिमा कोमैं तुमें सुनाऊंगा जिसके श्रवणमात्रसे हाथमें मुक्ति प्राप्तहोगी ॥ २४ ॥ यह श्रीमद्भागवतकी कथा सदा सुनने योग्यहै जिस के श्रवणमात्रसे श्रीकृष्ण प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥ इस ग्रंथ में अठारह सहस्र श्लोक और द्वादशस्कन्ध हैं यह परीक्षित और शुकदेवजीके संवादवाली भागवत सुनो ॥ २६ ॥ पुरुष अज्ञान से तबतक इस संसार चक्र में भ्रमता है जबतक शुकशास्त्रकी कथा क्षणमात्रको कर्णगोचर नहीं होती ॥ २७ ॥ बहुत से शास्त्र और भ्रमानेहारे पुराणों के सुनने से क्या है एक भागवत शास्त्रही मुक्ति दाता है ॥ २८ ॥ जिस गृह में नित्य भागवतकी कथा होतीहै वह गृह तीर्थरूपहै वहां रहने वालोंके पाप नाश होजाते हैं ॥ २९ ॥ सहस्र अश्वमेध शत वाजपेय शुकशास्त्रकी कथाकी सोलहवीं कलाभी नहींहै ॥ ३० ॥ हे तपोधनो जब तक ही इस देह में पाप रहते हैं तबतक मनुष्य मन लगाकर भागवत कथा नहीं श्रवण करते ॥ ३१ ॥ शुकशास्त्रकेफलकी बराबरी गंगा गया काशी पुष्कर प्रयागभी नहीं करसक्ते ॥ ३२ ॥ जो मुक्तिकी इच्छारखतेहों तो नित्यही अपने मुखसे आधा एक चौथाई श्लोक ही भागवत का पाठ किया करो ॥ ३३ ॥ वेदादि ओंकार वेदमाता गायत्री पुरुषसूक्त ऋक् यजुः साम, तीनोंवेद भागवत पुराण "ओंनमो भगवते वासुदेवाय" द्वादशाक्षरमंत्र ॥ ३४ ॥ द्वादशात्मा सूर्य प्रयाग संवत्सरात्मक काल ब्राह्मण अग्निहोत्र कामधेनु द्वादशी ॥३५॥ तुलसी वसन्तऋतु पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इनको बुद्धिमान् तत्वसे पृथक् भाव नहीं देखते हैं ॥३६॥ जो नित्यही भागवतशास्त्रको अर्थ से बांचते हैं उनके कोटिजन्म के पाप नाशहो जाते हैं इस में कोई सन्देह नहीं ॥३७॥ जो भागवतका आधा वा चौथाई श्लोक नित्य पढते हैं उनको राजसूय और अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ प्रतिदिन भागवत का कथन नारायण का कीर्तन तुलसी का पोषण और धेनुओंका सेवन तुल्यही है ॥ ३९ ॥ अन्तकाल में जिसने शुकशास्त्रकी वाणी श्रवण करी है उसे श्रीकृष्णचन्द्र वैकुंठ देते हैं ॥ ४० ॥ जो कोई सुवर्ण सिंहासन सहित वैष्णवके अर्थ इसे प्रदान करते हैं वोह पुरुष निश्चय श्रीकृष्णकी परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ जिस मूर्ख ने जन्म से मरणपर्यन्त मन लगाकर शुकशास्त्रकथा नहीं सुनी उस ने चंडाल और खरकी नाई अपना जन्म वृथा खोया और उत्पन्न होकर माताको दुःख दिया ॥ ४२ ॥ जिसने कभी शुककथाका कोई कथा नहीं सुना वोह पापकर्मा जीवितही मृतक है उस पशुसमान पृथ्वी पर भाररूप मनुष्यको धिक्कारहै यह ब्रह्मादिदेवता कहते हैं ॥ ४३ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा जगत् में दुर्लभ है कोटि जन्म के पुण्यों से प्राप्त होती है ॥ ४४ ॥ इस कारण हे योगनिधान ! बुद्धिमान् यह कथा यत्नपूर्वक सुननी योग्य है इस में किसी दिन का नियम नहीं सदा सुनै ॥ ४५ ॥ सत्य और ब्रह्मचर्य सहित सदा सुनै अशक्य होनेसे कलियुगमें शुक आज्ञासेविशेषता कही है ॥ ४६ ॥ मनवृत्तियों का जीतना नियमाचरण करना दीक्षा करने में अशक्य होतो सप्ताहसुनना श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥ नित्य श्रद्धापूर्वक श्रवण करने से माघ मासमें जितना फल कहा है वोहफल सप्ताह सुननेसे होता है ॥ ४८ ॥ मनके अजय, रोग आयु के क्षय, और कलियुग के बहुत दोष होनेसे सप्ताह सुनना श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ जो फल तप योग समाधि से नहीं मिलता वह अनायास सप्ताह श्रवण से मिलता है ॥ ५० ॥

यज्ञ से तप से तथा योगों से प्राप्त [illegible] है ॥ ५० ॥ [illegible] है हम उसके [illegible] कहें और [illegible] है [illegible] कथानक सुनाया ज्ञान धर्मादिकों को तिरस्कार कर ॥ ५२ ॥ भागवत का [illegible] मोक्ष के देनेहारा है सो सुनाओ ॥ ५३ ॥ सूत जी बोले [illegible] पद को जाने लगे तब ज्ञान को सुनकर उद्धव जी बोले ॥ ५४ ॥ हे भगवन् ! [illegible] के कार्य को विधान करके जाते हो [illegible] सुखी करो ॥ ५५ ॥ यह घोर कलियुग आया है इसमें [illegible] उपद्रव को प्राप्त होंगे ॥ ५६ ॥ तब यह [illegible] हे कमल नयन ! तुम्हें छोड़ कोई इनका दूसरा पालक नहीं है ॥ ५७ ॥ इसकारण हे भक्तवत्सल ! [illegible] के ऊपर कृपाकर [illegible] ॥ ५८ ॥ तुम्हारे वियोग से तुम्हारे भक्त पृथ्वी में कैसे रहेंगे निर्गुण उपासना में कष्ट होगा इससे कुछ विचारिये ॥ ५९ ॥ ऐसे उद्धव जी के वचन सुन भगवान् [illegible] भक्तों के अवलम्बनार्थ मुझे क्या करना उचित है ॥ ६० ॥ [illegible] मन में धर दिया अन्तर्धान होकर यह श्रीमद्भागवत रूपी समुद्र में [illegible] ॥ ६१ ॥ इस लिये यह श्रीकृष्ण की [illegible] मूर्ति है सेवन श्रवण पाठ दर्शन करनेसे पाप नष्ट होते हैं ॥ ६२ ॥ इस कारण सबसे अधिक सप्ताह श्रवण है और सब साधनों का तिरस्कार करके कलियुग में यह धर्म कहा है ॥ ६३ ॥ दुःख दरिद्र दुर्भाग्य और पाप के धोने के निमित्त काम क्रोध के जय के निमित्त कलियुग में यही धर्म कहा है ॥ ६४ ॥ अन्यथा वैष्णवी माया जो देवतों को भी दुस्तर [illegible] कैसे छूटेगी इस कारण सप्ताह विधि कही है ॥ ६५ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार सप्ताह श्रवण का [illegible] में इन्होंने [illegible] किया तब एक बड़ा आश्चर्य उस समय हुआ हे शौनकजी ! तुम सुनो ॥ ६६ ॥ [illegible] आपने दोनों जवान हुए ज्ञान वैराग्यों को लिए [illegible] सभा में प्रकट हुई और श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथ यह नाम बारम्बार उच्चारण करती थी ॥ ६७ ॥ [illegible] भागवतार्थभूषण सुन्दर वेष किये सभा में आई [illegible] देखने लगे और यह [illegible] सभ्यों आदि इस प्रकार तर्कना करने लगे ॥ ६८ ॥ तब कुमार उस समय बोले यह इस समय कथाही के निमित्त आई है इसप्रकार बोल भक्ति ज्ञान वैराग्यसहित सुनकर [illegible] सनत्कुमार से बोली ॥ ६९ ॥ भक्ति कहने लगी कि, कलियुग में [illegible] से पुष्ट किया है अब मैं कहाँ रहूं सो बताओ तब वे [illegible] इस प्रकार समझाने लगे ॥ ७० ॥ गोविंद के समानरूपधारणकरनेवाली प्रेम करनेहारी संसार रोगकी हरनेहारी [illegible] वैष्णव भक्तोंके मनमें तू नित्य वासकर ॥ ७१ ॥ तौ यह कलियुगके [illegible] नहीं इसप्रकार उनकी आज्ञासे भक्ति नारायण के भक्तों के [illegible] प्रवेश करगई ॥ ७२ ॥ सम्पूर्ण संसार के रत्नों से [illegible] धन्य हैं जिनके हृदयमें भक्ति निवासकरती है भक्ति सूत्र से वशीभूतहो भगवान् अपने लोकको छोड़ उनके हृदय में प्रवेश करते हैं ॥ ७३ ॥ इस प्रकार भागवत का भूमि में हम आगे क्या माहात्म्य कहें जिसके कहने सुननेसे श्रोता वक्ता कृष्ण के समान विभूतिको प्राप्त होते हैं फिर और धर्मोंसे क्या है ॥ ७४ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये [illegible] भक्तिकष्ट
निवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



सूतजी बोले इसके उपरान्त वैष्णवों के चित्त में अलौकिक भक्ति देख भगवान् भक्तवत्सल ॥ १ ॥ वनमाली घनश्याम पीतवस्त्रधारे मनोहर वेशकिये कमरमें क्षुद्रघंटि का मोरमुकुट सुंदर कुंडल धारण किये ॥ २ ॥ त्रिभंगी छबिकिये सुंदर कौस्तुभमणीसे विराजमान कोटि कामदेव के समान शोभायमान हरिचंदन से चर्चित ॥ ३ ॥ परमानंद चिन्मूर्त्ति मधुरमुरली धारी भक्तोंके निर्मल हृदय में प्रविष्ट हुए ॥ ४ ॥ जो वैकुण्ठके रहनेवारे और जो वैष्णव उद्धवादिक हैं वे गतमात्रसे कथासुननेको आये ॥ ५ ॥ तब जय जय शब्द रसरूप भागवतकी पुष्टि, चूर्ण और पुष्पोंकी वृष्टि और वारंवार शंखध्वनिहुई॥६॥उस सभामें स्थित महात्माओंको देहगेह और आत्माकी सुधि न रही सबकी तन्मय अवस्था देख नारदजी बोले ॥ ७ ॥ हे मुनीश्वरो ! आज इस जन समुदाय में मैंने सप्ताहकी अलौकिक महिमा देखी जिससे मूढ शठ पशु पक्षीभी सब निष्पाप होते हैं ॥ ८ ॥ अतः इस कलियुग में चित्त शुद्ध्यार्थ तथा पाप समूह विध्वंस करने को इसकथाकी समान पृथ्वी में और कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ परन्तु यह आप कहिये कि कथामय सप्ताह यज्ञ से कौन २ विशुद्ध होते हैं महात्माओंने लोक हितार्थ क्या कोई नवीनमार्ग स्थापित किया है ॥ १० ॥ कुमार बोले जो पापात्मा सदा दुराचारी कुमार्गगामी क्रोधाग्नि से दग्ध कुटिल कामी है वेभी कलियुग में सप्ताह यज्ञ से पवित्र होजाते है ॥ ११ ॥ सत्य से हीन पिता माता को दोष देने वाले तृष्णासे व्याकुल आश्रम धर्म से वर्जित जो पाखण्डी घमण्डी हिंसकभीहैं वेभी सप्ताह ॥ १२ ॥ पांच बडे उग्रताप छल छद्मकारी जो क्रूर और पिशाचोंकी नाईं निर्दई हैं। जो ब्राह्मणों के धनसे पुष्टहैं व्यभिचारी हैं वेभी०— ॥१३॥ और जो शठ, हठपूर्वक मन वचन कर्मसे नित्य पाप करते हैं पराये द्रव्यलेकर पुष्ट होतेहैं वे मलीन दुष्टचित्तवालेभी०— ॥१४॥यहां मैं तुमसे पुरातन इतिहास कहूंगा जिस के सुननेसेही पाप नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥ तुमभद्रा नदी के किनारे एक सर्वोत्तम नाम उत्तम पत्तन था; जहां चारों वर्ण अपने धर्म कर्मों में तत्पर थे ॥ ॥ १६ ॥ उसी पुर में वेदज्ञ आत्मदेव नाम ब्राह्मण श्रौतस्मार्तकर्मों का पारङ्गत दूसरे सूर्य की नाईं निवास ॥ १७ ॥ वो भिक्षुक धनवान था; उसकी स्त्री का नाम धुंधुली सुन्दरी सत्कुलोत्पन्ना सदा अपनी टेक रखनेहारी थी ॥ १८ ॥ लोकवार्त्ता में रत क्रूरा और बहुत बोलेथी घरके कार्यों में शूरा कृपण कलहकारिणी थी ॥ १९ ॥ इस कारण प्रेमपूर्वक उन दोनों को रहते विहार करते हे राजन ! अर्थ काम सम्पन्न गृहादिक उन्हें सुखकारी नहुआ ॥ २० ॥ तब उन्होंनें सन्तान के निमित्त दोनों को गौ भूमि सुवर्ण सदा देकर धर्म करना प्रारम्भ किया ॥ २१ ॥ जब कि इन स्त्री पुरुषों नें धर्म मार्ग में आधा धन लगादिया परन्तु कोई पुत्र व बेटी न हुई तब ब्राह्मण को बडी चिन्ता हुई ॥ २२ ॥ एक समय वोह ब्राह्मण दुःखीहो घर से निकल वनको गया दुपहर के समय प्यास से व्याकुल हो एक सरोवर के समीप प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ जल पीकर सन्तान के दुःख से दुःखी वह तहांही बैठागया कि, एक मुहूर्त उपरांत कोई सन्यासी वहां आए हुँ॥ २४ ॥ जब वोह जल पीचुका तब यह ब्राह्मण उस-के धोरे जा चरण वन्दनकर श्वास लेता आगे बैठा ॥ २५ ॥ यति बोले ब्राह्मण ! क्यों रोता है तेरे मन में क्या चिंता है तु शीघ्र मुझसे अपने दुःख का कारण कह ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोला महाराज ! पूर्व पाप से संचित दुःखको क्या कहूं मेरे पूर्वज पितर मेरे दिये हुए जल को श्वास से गरम कर पीते हैं ॥२७॥ मेरे दियेहुए को प्रीति से देवता ब्राह्मण भी नहीं लेते मैं सन्तान के दुःख से दुःखित प्राण त्यागने को यहां आयाहूं ॥ २८ ॥ संतान के विना जीने को विना संतान के घरको पुत्रहीन के धन को और संतान के विना कुल को धिक्कार है ॥ जो मैं धेनु पालता हूं और जो मैं वृक्ष लगाता हूं वोह वन्ध्या होजाताहै ॥ २९ ॥ जो फल नेरेघर आताहै

सूखजाता है तो निर्भाग्य पुत्रहीन मेरे जीने से क्या है ॥ ३१ ॥ ऐसा कह वोह जोर जोर से रोने लगा तब उस संन्यासी के चित्त में बड़ी दया हुई ॥ ३२ ॥ वोह योगी उसके प्रारब्ध को बांचता हुआ सब जान फिर ब्राह्मण से आदर विस्तार पूर्वक वचन बोला ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मण ! संतान रूप अज्ञान कूं त्याग करो कर्म की गति बड़ी बलवान है ज्ञान का आश्रय हो संसार वासना को त्यागन कर ॥ ३४ ॥ सुन ब्राह्मण इस समय मैंने तेरा प्रारब्ध देखा सात जन्म पर्यन्त तेरे पुत्र नहीं है ॥ ३५ ॥ संतान से सगर और अंग राजा ने बहुत बड़ा दुःख पाया था अरे कुटुम्ब की आशा त्याग संन्यास में सर्वथा सुख है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण बोला मुझे ज्ञान से कुछ न होगा कैसेही हो पुत्र दीजिये नहीं तो तुम्हारे आगेही मैं प्राणों को शोक मूर्छित हो त्याग दूंगा ॥ ३७ ॥ पुत्रादि सुखहीन यह संन्यास भी दुःख ही है गृहस्थही जो पुत्र पौत्र युक्त हैं वो लोक में सरस हैं ॥ ३८ ॥ यह ब्राह्मण का आग्रह देख वोह तपस्वी बोला अरे विधि के अंक मिटाने से चित्रकेतु को बड़ा दुःख हुआ था ॥ ३९ ॥ और दैवहत उद्यम से जैसे दुःख होता है इसी प्रकार पुत्र से तुझे सुख नहीं प्राप्त होगा । इस आग्रह युक्त हठ आगे मैं क्या कहूं ॥ ४० ॥ उस ब्राह्मण का बहुत आग्रह देख यती ने एक फल दिया और यह कहा इसे तू अपनी स्त्री को खवाव पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ सत्य शौच दया दान और एकबार भोजन इस प्रकार से एक वर्ष तक जो रहेगी तो अच्छा पुत्र होगा ॥ ४२ ॥ यह कहकर योगी चले गये ब्राह्मण अपने घर आया वोह फल स्त्री को दे उसका विचार करता कहीं चलागया ॥ ४३ ॥ उसकी तरुणी कुटिल स्त्री सखी के आगे रुदन करने लगी कि मुझे बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई है मैं इस फल को न खाऊंगी ॥ ४४ ॥ फल खाने से गर्भ रहेगा फिर पेट बढ़ेगा थोड़ा भोजन करने से शिथिलता होजायगी तो घर के काम कैसे होंगे ॥ ४५ ॥ कहीं ग्राम के बीच में आग लगजाय तो गर्भिणी कैसे भागेगी शुक की नाईं रहते हुए गर्भ को कोख से कैसे त्यागन करे ॥ ४६ ॥ यदि कहीं गर्भ टेढ़ा पड़गया तो मेरा मरणही होजायगा प्रसूत के समय बड़ा दुःख होता है उसे सुकुमारी कैसे सहे ॥ ४७ ॥ तब मुझे मंद जानकर ननद सर्वस्व हरण करलेगी और फिर सत्य शौचादि नियम मुझे दुःसाध्य ही दीखे हैं ॥ ४८ ॥ फिर बालक के लालन पालन में बड़ा दुःख होता है मानो बंध्या वा विधवा नारी सुखी है यह मेरी मति है ॥ ४९ ॥ ऐसी कुतर्क करके उसने फल नहीं खाया और जब पति ने पूछा कि फल खाया तो कहदिया कि हां खालिया ॥ ५० ॥ एक समय उसकी भगिनी निज इच्छा से उस के घर आई उसके आगे इसने सब वृत्तान्त सुनाकर कहा कि मुझे यह बड़ी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ इसी दुःख से दुर्बल होगई हूं छोटी बहन । बता तो क्या करूं तब वोह बोली मुझे गर्भ है उत्पन्न होने पर तुझे दूंगी ॥ ५२ ॥ तबतक तू गर्भवती होकर घर में सुखी रह तू मेरे पति को कुछ दीजे वोह तुझे बालक देदेगा ॥ ५३ ॥ मेरा बालक छः महीने का मरगया ऐसा मैं प्रगट करूंगी और प्रति दिन आकर तेरे बालक कूं दूध पिलाया करूंगी ॥ ५४ ॥ परीक्षाके निमित्त तू फल इस समय गायकूं देदे यह सुनकर उस ने स्त्री स्वभाव से यह सब कुछ किया ॥ ५५ ॥ कुछ समय उपरांत उस नारी के बालक हुआ तब उस के पिता ने एकान्त में वोह बालक लाकर धुंधुली को दिया ॥ ५६ ॥ तब धुंधुली ने अपने स्वामी से कहा कि मेरे सुख पूर्वक बालक उत्पन्न होगया आत्मदेव के संतान होने से बहुतों को प्रसन्नता हुई ॥ ५७ ॥ जातकर्म किया ब्राह्मणों को दान दिया गीत बाजों के शब्द और सब मंगल उसके द्वारे हुए ॥ ५८ ॥ धुन्धली अपने पति से बोली मेरे कुचों में दूध नहीं है सो मैं निर्दुग्धा दूसरों के दूधबिना बालक कूं कैसे पालूंगी ॥ ५९ ॥ मेरी बहनका थोड़ेही दिनों का बालक मरगयाहै उसे अपने घर बुलालो

बालक को पालन करेगी॥६०॥पतिने पुत्र रक्षार्थ सब कुछ किया माताने पुत्रका नाम धुंधकारी रक्खा॥६१॥तीनमहीने उपरान्त उस गायके भी एकबालक उत्पन्नहुआ सर्वांग सुंदर उज्ज्वल दिव्य शरीर सुवर्णकी नाईं ॥६२॥ ब्राह्मण बडा प्रसन्न हो स्वयं उस के संस्कार करताहुआ इसे आश्चर्यसे बहुत मनुष्य देखने को आये ॥ ६३ ॥ देखो अब आत्मदेव का भाग्य उदय हुआ है जो गौने भी देवरूपी बालक उत्पन्न किया है बडे आश्चर्य की बातहै॥ ६४ ॥ प्रारब्धवश किसीने भी इस भेद को नहीं जाना सब शरीर मनुष्य का केवल कानही गौ के थे इस कारण पिता ने इसका गोकर्ण ही नाम धरा ॥ ६५ ॥ कुछ काल में वोह दोनों बालक तरुण हुए गोकर्ण ज्ञानी पंडित और धुन्धकारी बडा दुष्ट ॥ ६६ ॥ स्नान शौच क्रिया रहित कुत्सित वस्तु भक्षी क्रोधी दुष्ट परिग्रह कर्त्ता चाण्डालों के हाथ भोजन करै ॥ ६७ ॥ चोर सबसे वैर करै पराये घरों में आग लगा दे छोटे बालकों को देखकर कुए में डाल दे ॥ ६८ ॥ हत्यारा शस्त्र धारे दीन और अंधों को दुख दे चांडालों के संग प्रीति करै जाल लिये फिरै६९ वेश्या के संग से उसने अपने पिता का सब धन नष्ट कर दिया और पिता माता को पीट कर घरके वर्त्तन लेगया ॥ ७० ॥ उसका पिता कृपण धन हीन हो ऊंचे स्वरसे रोने लगा पुत्र का न होना ही भला है, क्योंकि कुपुत्र दुखदायक है ॥ ७१ ॥ कहाँ रहूँ कहाँ जाऊँ कौन मेरे दुःख दूर करै मैं दुःख से प्राण त्याग दूंगा हा बडा कष्ट है ॥ ७२ ॥ उस समय ज्ञानी गोकर्ण आयकर पिता को वैराग्य दिखाता हुआ समझाने लगा ॥ ७३ ॥ यह संसार असार है दुःख रूप मोह करानेहारा है सुत धन किसका सब मिथ्या है इस में प्रेम करने हारा रात दिन दुःखी होता है ॥ ७४ ॥ इंद्र को और न चक्रवर्ती को कुछ सुख है किन्तु एकान्तवासी मुनि को ही कुछ सुख है ॥ ७५ ॥ यह संतान रूप अज्ञान छोड मोहसे नरक होता है यह देह एक दिन गिरजायगा इस कारण सब कुछ त्याग कर वनको जाओ ७६ उसके यह वचन सुनकर वन के जाने की इच्छा करते गोकर्ण से इसप्रकार उसके पिता बोले हे पुत्र ! वन में क्या कर्तव्य है सो तुम बिस्तार से कहो ॥७७॥ स्नेह पाशसे बँधाहुआ मै लँगडा हुआ मूर्ख कर्मों से इस संसार रूपी अंध कूप में पडाहूं हे दयालु पुत्र ! मुझे निकाल ॥ ७८ ॥ गोकर्णबोला इस अस्थि मांस रुधिरसे बनेहुए देहशरीरमें अभिमान मतकरो स्त्री पुत्रोंसे ममताको त्यागन करो इस संसार को प्रतिदिन क्षण भंगुर जानो भक्ति में प्रीति करके वैराग्य का सुख भोगो ॥ ७९ ॥ नित्य भागवत धर्मों को सेवन करो काम्य कर्मों का त्याग करो काम और तृष्णा को छोड साधुओं की सेवा करो औरोंके दोष गुणों का चिंतन छोड भगवतकी सेवा और कथारस को नित्य पिओ ॥ ८० ॥ यह पुत्र का उपदेश सुन घर त्याग वोह साठ वर्ष की अवस्था युक्त ब्राह्मण स्थिरचित्तहो वनको गया नित्य प्रति श्रीकृष्णचन्द्र की सेवा करने और दशमके पाठ करने से श्रीकृष्ण को प्राप्तहुआ ॥ ८१ ॥ इतिश्री पद्मपुराणेउत्तर खंडेभागवतमाहात्म्येवैद्यनाथशास्त्रिकृतभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः॥४॥सूतजीबोले पिताके मरजाने से धुन्धकारी ने माता को बहुत मारा और कहा बता धन कहां है नदेगी तो लातों से मारूंगा ॥ १ ॥ इस प्रकार माता उसके वचन से भयभीत दुःखी हो रात में कुए में गिर मरगई ॥२॥ गोकर्ण योग में स्थित हो तीर्थ यात्रा को चलेगये उसे न दुःख न सुख न कोई वैरी है न बन्धु ॥ ३ ॥ धुंधकारी उस घर में पांच वेश्याओंके साथ रहने लगा बडा कुकर्मी उनका पालन मूर्खता से करने लगा ॥४॥ एक समय उनको गहनेकी इच्छा हुई तो यह कामान्ध मृत्यु का विचार न करके घर से निकला ॥ ५ ॥ इधर उधर से धन संचय कर फिर घरको आया उन्हें कितने एक भूषण और वस्त्र दिये ॥ ६ ॥ बहुत धन संचय देखकर वे स्त्री रात्रि में वि-

मारने लगीं यह प्रतिदिन चोरी करता है मलानित् राजा पकड़ लेगा सो ॥ ७ ॥ यह सब धन लेकर फिर इसे निश्चय मार डालेगा तो धन की रक्षाके निमित्त गुप्त रीति से हमहीं इसे क्यों न मारडालें ॥ ८ ॥ इसे मारके यह सब धन ले हमलोग पृथक् विचरैं यह अपने निश्चय कर सोतेहुए को रस्सियों से बांधा ॥ ९ ॥ इसके गले में फांसी डालकर मारने लगीं जब यह जल्दी न मरा तो चिन्ता से विचारने लगीं ॥ १० ॥ बहुतसारे अंगारों से उसके मुख जलाया तब अग्नि लगनेके दुःखसे करके बौड़ मरगया ॥ दोहा ॥ जो वनिता के संग रहे, अंतहुको यह योग होय ॥ ताते कबहूँ भूल से, इनके संग न होय ॥ ११ ॥ उस शरीरको उन स्त्रियोंने उसके देहको गढ़े में दाबादिया यह भेद किसी ने भी नहीं जाना ॥ १२ ॥ लोगों के पूछनेपर कहा कि हमारा प्यारा दूर द्रव्य कमाने गया है इस वर्ष के अन्त में आवेगा ॥ १३ ॥ पंडितों को योग्य है कि स्त्रियों का और दुष्टों का विश्वास न करें जो इनका विश्वास करता है सो दुःखी होता है ॥ १४ ॥ इनके वचन कामियों को अमृत के समान हैं हृदय छुरे की धारके समान है इसमें कहते हैं कि, स्त्रियों का कौन प्यारा है ॥ १५ ॥ बहुत भर्ता करनेवाली उसका सब धन लेकर व्यभिचारिणी और धुन्धुकारी कुकर्मों से प्रेत हुआ ॥ १६ ॥ वायुरूप धारण दौड़ता हुआ दशों दिशाओं में फिरे शीत घाम से व्याकुल, निराहार, प्यासा होकर ॥ १७ ॥ हे दैव ! ऐसा पुकारता हुआ कहीं भी शांति को प्राप्त न हुआ कुछ काल के अनन्तर गोकर्णजी ने भी भाई की लोगों के कहने से मृत्यु जाना ॥ १८ ॥ यह अनाथ ऐसा जानकर उसका गया श्राद्ध किया जिस २ तीर्थ पर गोकर्णजी जाते थे वहीं २ उसका श्राद्ध करते थे ॥ १९ ॥ इस प्रकार फिरते २ वह गोकर्णजी अपने नगर आये और नगर निवासियों को दर्शन दे उसी घर के आंगन में रात्रि को सोए ॥ २० ॥ वह प्रेत रूप भारी धुन्धुकारी सोएहुए भाई जानकर उस समय बड़े २ भयङ्कर रूप दिखाने लगा ॥ ॥ २१ ॥ कभी भेड़ा कभी हाथी कभी भैंसा कभी आग आदि बनता २ फिर मनुष्याकार होगया ॥ २२ ॥ यह विपरीतता से गोकर्णजी महाराज ने देख धीरे धारा और कौन है इस प्रकार निश्चय करने को उससे बोले ॥ २३ ॥ गोकर्णजी कहते कि तू कौन उग्र रूप है और रात्रि में इस दशा को कैसे प्राप्त हुआ तू प्रेत है व पिशाच है या राक्षस है यह मुझसे कह ॥ २४ ॥ सूतजी महाराज कहते हैं कि—ऐसा पूंछाहुआ यह बार २ रोकर और वचन कहने को असमर्थ होकर मैं धुन्धुकारी हूं यह बोला ॥२५॥ तब गोकर्णजीने जल हाथ में लेकर उसको छिड़कदिया वह उस जल छिड़कने के प्रभाव से कुछ कहने को समर्थ होगया ॥२६॥ प्रेत बोला मैं आपका भाई धुन्धुकारी हूं और अपनेही दोष से मैंने अपने ब्राह्मणत्व का नाश किया ॥२७॥ बड़े अज्ञानी मैंने जो २ कुकर्म किए उनको कोई नहीं गिनसकता मैं संसारी हिंसक प्राणि दुराचार स्त्रियोंके द्वारा मारागया ॥२८॥ इससे प्रेतत्वको प्राप्त हुआ हूं अपनी दुर्दशाभी कहता हूं, दैवाधीनफल प्राप्त होने से मैं वायु भक्षण करजीता हूं ॥ २९ ॥ हे कृपासिंधु बंधु ! मुझे इस संकटसे शीघ्र छुड़ाओ यह वचन सुन गोकर्ण उससे कहने लगा ॥ ३० ॥ गोकर्ण बोलाभाई मैंने तो तेरे निमित्त गया में पिण्ड दिये थे सो अब भी मुक्ति नहीं हुई यह बड़े आश्चर्यकीबात है ॥ ३१ ॥ जो गया में पिंड देनेसे भी मुक्ति न होवेतो फिर और उपाय नहीं है हे प्रेत ! अब मैं क्या करूं सो तू विस्तार से कह ॥ ३२ ॥ प्रेत बोला सौ गयाश्राद्धसे भी मेरी मुक्ति नहीं होगी कोई और उपाय विचारो ॥ ३३ ॥ उसके यह वचन सुन गोकर्ण को बड़ा आश्चर्यहुआ जो सौ श्राद्ध से मुक्ति न हो तो तेरीमुक्ति असाध्य है ॥ ३४ ॥ अब तू प्रेत अपने स्थान में निर्भय रह तेरी मुक्तिका साधन मैं विचार कर करूंगा ॥ ३५ ॥ यह सुनकर धुन्धुकारी अपने स्थान कोगया यह गोकर्ण ने सबरात्रिमें विचार किया

परन्तु कोई उपाय निश्चित न हुआ ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल गोकर्ण का आनासुन बहुतलोग देखने को आयेतब गोकर्णने रात्रिका वृत्तांत उसने सब कहा ॥ ३७ ॥ विद्वान् योगी ब्रह्मचारी बहुत शास्त्र देखने लगे परन्तु कोई उपाय उस की मुक्ति का नहीं सिद्धहुआ ॥ ३८ ॥ तब सबने यही निश्चय किया कि सूर्य भगवान् से इसका उपाय बूझिये जो वोह कहें सो करो तब गोकर्ण ने मंत्रबल से सूर्य को रोकादिया ॥ ३९ ॥ हे जगत् के साक्षी तुम को नमस्कार है इसकी मुक्ति का उपाय बताओ ॥ ४० ॥ यह सुन भगवान् भास्कर दूर से स्फुट बोले श्रीमद्भागवत का सप्ताह यज्ञकरो मुक्ति होजायगी ॥४१ ॥ यह धर्मरूप सूर्यभगवान् का वचन सबने सुनासब कहने लगे निश्चय यह शुभ कर्मकीजिये ॥ ४२ ॥ गोकर्ण भी निश्चयकर कथा बांचनमें प्रवृत्तहुए तहां श्रवण करनेको देश और गांव के मनुष्य आये ॥ ४३ ॥ लंगडे अन्धवृद्ध मंद भी पाप दूर करने के लिये आये देवताओंको विस्मदायक बडा समाजहुआ ॥ ४४ ॥ जबआसन के ऊपर बैठके गोकर्ण कथा कहनेलगे तब वोह प्रेतभी आया और इधर उधर स्थान देखने लगा ॥४५॥ तब वहां एक सात गांठोंका वांस देखकर उसकी मूलमेंछिद्रके द्वारा प्रवेशकर सुनने कोबैठ गया ॥ ४६ ॥ वोह पवनरूपी था इस कारण स्थित न रहसका, गोकर्णने एक मख्य वैष्णव ब्राह्मण को श्रोता कल्पना कर ॥ ४७ ॥ प्रथमस्कन्धकी अच्छी प्रकार कथा सुनाई जबसन्ध्या समय कथा विसर्जन हुई तब बडाआश्चर्य हुआ ॥ ४८ ॥ वांस की एक गांठ टूटगई और बड़ा शब्द हुआ इसी प्रकार दूसरे दिन दूसरी गांठ इस तरह वह उस वांसकी साता गाठे टूटगई जब बारहवां स्कन्ध पूरा हुआ तबहीं उसका प्रेतपन छूटगया ॥ ५० ॥ दिव्य रूप होगया, गले में तुलसी की माला, पीत वस्त्र, घनश्याम, मुकुटऔर कुण्डल धारे ॥५१॥ पतिवस्त्र धारणकिये घनश्याम मुकुटधारेकुंडल पहरेवोह धुन्धकारी अपनेभाईको नमस्कार करकेबोला॥५२॥भाई तमने बडीकृपाकर से प्रेतरूपी पापसे छुटाया यह भागवती कथा प्रेतपीडा दूरकरनेवाली धन्य है ॥५३ यह सप्ताह धन्य है जो कृष्णलोक फलकादेनेहाराहै सप्ताह सुनेनेका बैठतेही मनुष्य के पापको पने लगते हैं ॥ ५४ ॥ हम प्रेतों की तो यह भागवत प्रलय करेगी गीला सूखा लघु स्थूल वाणी मन कर्म से किये ॥ ५५ ॥ पापको यह सप्ताह यज्ञ नाश कर देता है जैसे आग्नि समिधा को इस भारत वर्ष में देवताओं की सभा में विद्वानोंने ॥ ५६ ॥ कथा नहीसुनेवालोंका निष्फल जन्म कहा है गोद से रक्षा करके पुष्ट बलवान् देह से क्या है ॥ ५७ ॥ जिस शरीर ने यह शुकशास्त्र कथा नहीं सुनि वोह अस्थियों का स्तंभ नसोंसे बद्ध मांस रुधिरसे लेपित॥५८॥ चर्म से आच्छादित दुर्गन्धयुक्त मूत्र पुरीषका पात्र है बुढापा, शोकके फल से युक्त रोग का जो प्रातःकाल खाया हुआ अन्न सायंकाल में नष्ट होजाता है सो अन्नादि के रस से पुष्ट इस काया की क्या नित्यता है ॥ ६१ ॥ क्षणभंगुर है सप्ताह श्रवण करने से लोक में भगवान् निकट ही प्राप्त होते हैं इस से दोषनिवृत्ति के निमित्त एक यही साधनहै ॥ ६२ ॥ जलोंमें बुन्दुदे के नांई जंतुओं में मशकका नांई कथाश्रवण रहित जन वृथाहीउत्पन्न होतेहैं॥६३॥ जडलंड और सूखे बांसकी भी गांठै टूट गई तो फिर चित्तकी ग्रंथि टूटजायतो क्या आश्चर्य है ॥ ६४ ॥ हृदयकी ग्रंथिटूट जाती सब सन्देह नाशहो जाते कर्म क्षयहोजातेहैं जो सप्ताह श्रवण करते हैं ॥ ६५ ॥ संसाररूपी कीचड में फंसे हुओंको धोनेमें यह कथा श्रेष्ठहै जिसका चित्त कथारूपी तीर्थमें है उसकी पाण्डतों ने मुक्तिहोनीहयहाहै ॥६६॥ यह उसके कहते हुएई वैकुण्ठसे विमानआया जिस के चारों ओर प्रभा फैली हुई वैकुण्ठ वासियोंसे युक्त ॥६७॥ सबके देखतेहुए धुंधली का पुत्र विमान में बैठा और तब विमान में वैष्णवों को बैठा देख कर गोकर्ण कहने लगे ॥ ६८ ॥ गोकर्ण बोले यहां बहुत से सुनने वाले उज्ज्वल चित्तमेरी कथा के हैं उनके नि-

गिरा कभी नहीं विमानआये ॥६९॥ अथकी, सबका श्रवण बराबरही होनाहै तो फल में भेद क्यों हुआ है हरि के प्यारो यह बात कहो ॥ ७० ॥ हरिदास बोले श्रवण के भेद से फलका भी भेद हुआ है सबनें सुना है परन्तु इस प्रकार से मनन नहीं किया ॥ ७१ ॥ इस कारण से भजनसे भी फल भेद हुआ सात रात्रिपर्यंत व्रत करके इसने श्रवणकिया ॥ ७२ ॥ और उस न स्थिरचित्त होकर मननादि भी किया जिसको दृढ़ नहीं होना उसका ज्ञान व्यर्थ है ॥ ७३ ॥ संदिग्ध का मंत्र हत है व्यग्रचित्त का जप निरर्थक है वैष्णव रहित देश हत है अपात्र को श्राद्ध में देना भी वृथा है ॥ ७४ ॥ वेदविद्या रहित को दान देना निरर्थक है सदाचार रहित कुलहत है गुरु के वाक्यों में विश्वास और अपने में दीनता की भावना करनी योग्य है ॥ ७५ ॥ मनके दोषोंका जीतना कथा में निश्चल चित्त रखना जब इस प्रकारसे विश्वस्त शुद्ध चित्त हो तब कथा सुनेनेका फल होता है ॥ ७६ ॥ फिर कथान्त में श्रव का वैकुण्ठ लोक प्राप्त होता है हे गोकर्ण तुझे तो गोविन्द भगवान् स्वगोलोक देंगे ॥ ७७ ॥ इस प्रकार से कहकर वे भगवान् के पार्षद सब वैकुण्ठ लोकको चले गये फिर श्रावणके महीने में गोकर्णने कथा का आरम्भ किया ॥ ७८ ॥ सात रात्रि वाली सप्ताहकी कथा को उन सबनेसुना ॥ हे नारदजी ! सुनों जब कथा समाप्त हुई तब ॥ ७९ ॥ विमानों और भक्तों सहित भगवान् प्रगट हुए तब चारोंओरसे जयजयकार नमः शब्द होनेलगा ॥ ८० ॥ भगवान् ने प्रसन्न होकर तहां पांचजन्य शंखकी ध्वनि की गोकर्णको आलिंगन करके अपने रूपके समान बना लिया ॥ ८१ ॥ और जितने श्रोता थे उनको क्षणमात्र में भगवान ने घनश्याम पीताम्बर युक्त किरीट कुंडल धारी कर दिया ॥ ८२ ॥ और जो उस ग्राममें कुत्ते से लेकर चांडालादि थे वे भी गोकर्ण की कृपा से विमान में स्थित हुए ॥ ८३ ॥ वे भगवान ने उस स्थान में भेजदिये जहां योगी गमन करते हैं और गोपाल श्रीकृष्णचंद्र गोकर्ण सहित गोपवल्लभ गो लोकको गये ॥ ८४ ॥ कथा श्रवण से प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् जैसे पूर्व कालमें श्रीरामचंद्र अयोध्या वासियोंको निज लोकको लेगये थे ॥ ८५ ॥ इसी प्रकार भगवान् कृष्णचन्द्र भी योगियों के दुर्लभ गोलोकको उन्हें लेगये जहां सूर्य चन्द्रमा और सिद्धों की भी कभी गति नहीं होती ॥ ८६ ॥ जो सप्ताह यज्ञ में इस कथा श्रवणसे फल प्राप्त होताहै हे महात्माओं ! हम कहांतक वर्णन करें जिन्होंने गोकर्ण कथा के अक्षर कर्णद्वारा पान किये हैं वे फिर गर्भ में नहीं आते ॥ ८७ ॥ जिस गति को सप्ताह श्रवण करने से प्राप्त होते हैं उस को पवन जल पत्ते भक्षक तपस्या से देह शोषक बहुत दिनों से उग्र तप के संचय वाले तथा योगी भी नहीं प्राप्त होते ॥ ८८ ॥ इस पवित्र इतिहास को भी शांडिल्य मुनीश्वर चित्रकूट में पाठ करने से ब्रह्मानन्द को व्याप्त हुए ॥ ८९ ॥ इस पवित्र आख्यान का जो एक बार भी पाठ करता है उसके सबपाप दूर हो जाते हैं जो श्राद्ध में पढ़े तो पितरों की तृप्ति होती है नित्य पाठ करनेसे फिर जन्म नहीं होता ॥ ९० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे वैद्यनाथशास्त्रि कृत भाषाटीकायां
श्रीभागवत मा० गोकर्णवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कुमार बोले अब हम तुम्हें सप्ताह श्रवण की विधि सुनाते हैं जो विधि प्रायः धनसे भी साध्य है ॥ १ ॥ प्रथम तो ज्योतिषी को बुलाकर मुहूर्त पूछे जैसे विवाहादि में मंडप रचना होती है तिस प्रकार करे ॥ २ ॥ भाद्रपद आश्विन कार्तिक मार्गशीर्ष आषाढ श्रावण ये महीने कथारंभ में सुननेवालों को मोक्षसूचक हैं ३ जो महीनों के विग्रह हैं उनको त्याग दे और सहाय जो अच्छा दिन नक्षत्रादि है सो सबको करणीय है ॥४॥ देशान्तरों में यत्नपूर्वक यह समाचार

कर दनी हमारे यहां कथा होगी सब कोई कुटुम्ब सहित आओ ॥ ५॥ कोई हरिकथा से दूर हैं कोई
अच्युतके गुण कीर्तनसे दूर हैं स्त्री शूद्रादिकोंको जिसप्रकार से बोध होजाय सो करना ॥ ६ ॥
देश देशमें जो विरक्त वैष्णव कीर्तन करने वाले हैं उनके पास भी पत्र भेजने और यह लिखना
॥ ७ ॥ महादुर्लभ सात दिन पर्यंत सत पुरुषों का समाज होगा और अपूर्व रसरूपी भगवान्की
कथाहोगी ॥ ८ ॥ श्रीमद्भागवत रूपी अमृत के पानमें रस लंपट आप प्रेमी जन शीघ्र आइये
॥ ९ ॥ यदि अवकाश नहीं तौ एक दिनको तो अवश्य आइये क्योंकि इस समाजका क्षण मात्र
काभी सत्संग दुर्लभ है ॥ १० ॥ इस प्रकार से उन पत्र भेजकर आये हुओं के निमित्त वास
और स्थान दे ॥ ११ ॥ चाहे तीर्थमें बनमें घरमें सुने परन्तु कहीं कथा स्थान बड़ी पृथ्वीमें
कल्पना करे ॥ १२ ॥ जलादिकों से संमार्जन करे बुहारी से बुहार गोबर से लीपदे गेरू
आदिकों से चित्रितकर घरकी सामग्री उठाकर एक कोनेमें लगादे ॥ १३ ॥ पांच दिन पहिले
बड़ बड़े आसन ग्रहणकर रक्खे के लोंस मंडित मंडपऊंचा बनावे ॥१४॥ फल पुष्प पत्र आदि
सहित चारों ओर वंदनवार बांधदेचारोंओर ध्वजाबांधदेचंदोवा तानदे॥१५॥ वेदिकाकेऊपरभाग
मेंसातस्थान बनाने उनमें विरक्त ब्राह्मण बैठावे ॥१६॥ प्रथमतौ तिन्हें यथा योग्यआसनदे पुनः
वक्ताकोभी एकदिव्यसुंदरऊंचा आसन जिसपरबैठकर कथाकहे ॥१७॥ वक्ताउत्तरकी और सुख
कर बैठे और सुननहारे पूर्वकी ओर बैठें, अथवा वक्ता पूर्वको देखकर बैठे श्रोता उत्तर को
॥ १८ ॥ अथवा पूजाकरने वाले और पूज्यके मध्यसे पूर्व दिशामें सब सुननेहारे बैठें ॥ १९ ॥
विरक्त वैष्णव ब्राह्मण वेदशास्त्रानुसार शुद्ध दृष्टान्त देनेमें कुशलधीर लोभरहित ऐसा वक्ता होना
चाहिये ॥२०॥ जो अनेक धर्मोंने भ्रमेहैंस्त्रीलंपट और पाखंडीयादिवेपंडित भी होंतोभीयहश्रेष्ठ
शास्त्रकाकथाउनसेनकहावै॥२१॥कथाकहने वालेके धोरे एक और भी पंडित बैठावेजो संदेहों
को छेदनकर लोगोंको समझावै ॥२२॥ व्रतके निमित्त वक्ताकूं एक दिन पहिले क्षौर कराना
और अरुणोदय होतेही यह शौचादि से निवृत्तहो स्नानकरे ॥ २३ ॥ प्रथम तौ नित्य संध्या संक्षेप
से करकै कथाके विघ्न नाशके निमित्त गणेशजीका पूजनकरे ॥ २४ ॥ पितरोंका तर्पण करकै
शुद्धिके वास्ते प्रायश्चित्त करै एक मंडल बनाकर हरि भगवान का पूजन करना चाहिये ॥ २५॥
कृष्णके उद्देशसे आरंभकर पूजा सम्पूर्ण करै प्रदक्षिणा नमस्कारादि करकैपूजाकेअन्तमेंस्तुतिकरै
॥२६॥ कि, हे करुणानिधान! संसारसागरमें मग्नकाहेमसे गृहीत मुझदीनकोआप उद्धार कीजिये
२७फिर श्रीमद्भागवत की भी पूजा यत्नपूर्वक करनी चाहिये प्रीतिसे धूप दीप नैवेद्य करै ॥
२८ ॥ नारियल चढाकर नमस्कार कर प्रसन्न चित्तहो स्तुतिकरै ॥ २९ ॥ यह श्रीमद्भागवत
की कथा प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण रूपही है हे नाथ! भवसागर से मुक्तहोने के निमित्त मैंने यह स्वीकार
किया है ॥ ३० ॥ यह मेरा मनोरथ तुम्हींसे सफल होगा सो महाराज मैं आपका दास हूं ऐसा
होकि, इसकी निर्विघ्न समाप्ति हो ॥ ३१ ॥ ऐसे नम्रहो वक्ताको पूजनकरै वस्त्र
भूषण से भूषितकर फिर पूजाकरके स्तुतिकरै ॥ ३२ ॥ आप शुकदेव के रूप ज्ञान देनेहारे
सब शास्त्रके ज्ञाताहो इस कथाके प्रकाश से मेरा अज्ञान दूरकरो ॥ ३३ ॥ वक्ताके आगे
कल्याण के निमित्तप्रसन्न होकर यथा शक्ति सात रात्रितक नियमधारणकरे ॥ ३४ ॥
कथाभंग नहो इस पांच ब्राह्मणोंको वरणकरै वे द्वादशाक्षर "ओं नमो भगवते वासुदेवाय"
इस विद्याका जपकरते रहें ॥ ३५ ॥ और वैष्णव ब्राह्मणोंका तथा हरिचरित्र कीर्तकरने वालोंको
नमस्कार पूजनकर उनसे आज्ञाले आसन पर बैठे ॥ ३६ ॥ लोक, धन, स्थान, पुत्रादि
सबकी चिंता त्याग कथामें शुद्ध बुद्धिसे चित लगावै उसे उत्तम फल प्राप्तहोता है ॥ ३७ ॥
वक्ताको सूर्योदय से लेकर साढेतीन पहर कथा बांचनी और जल्दी न करे धीरकंठ

से बांचे ॥ ३८ ॥ दुपहर को दोघड़ी कथाका विराम करै कथान्तमें वैष्णव भगवान का कीर्तन करे ॥ ३९ ॥ मल मूत्रकी बाधा शांति के निमित्त अल्प आहार करना है और कथा सुननेहाराको पावक हविष्यादिका भोजन एकबार कर्तव्य है ॥ ४० ॥ यदि शक्तिहो तो सात रा-त्रिपर्यंत व्रत करके कथा सुने अथवा घृतपान दुग्ध पानकर सुने ॥ ४१ ॥ वा फलाहार कर सुने वा एकही वार भोजनकरे अथवा जिस प्रकारसे श्रवण करनेमें आलस्य न आवे सुखसे सोकरे ॥ ४२ ॥ यदि भोजन करनेसे कथा श्रवण करने में आलस्यादि न आवे तो अच्छा है और यदि उपवास करनेसे कथा में विघ्नहो तो वोह ठीक नहीं ॥ ४३ ॥ नारदजी सप्ताह में व्रत करने वालोंके तुम नियम सुनो विष्णुदीक्षा विहीन जो मनुष्य हैं वे जिन्होंने भगवानका कथा श्रवणकरने में अधिकार नहीं है ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्य भूमिमें शयन पत्तलमें भोजन कथासमाप्ति में भोजन नित्य करना करै ॥ ४५ ॥ कथा सुनने वाला दाल माँस, मूंग, और दूषित विकार अन्न और बासी अन्नका सदा त्यागनकरे ॥ ४६ ॥ काम क्रोध मद मान मत्सर लोभ दंभ मोह वैर त्यागदे ॥ ४७ ॥ वेद वैष्णव ब्राह्मण गुरु गो व्रतधारी स्त्री राजा कुटुम्बियोंकी निंदा न करे ॥ ४८ ॥ रजस्वला स्त्री म्लेच्छ पतित चांडाल ब्राह्मणद्वेषी और जो वेदबाह्य उनसे बात न करे ॥ ४९ ॥ सत्य पवित्रता दया मौन सरलता विनय मनमें उदारता कर्तव्य है ॥ ५० ॥ दरिद्र क्षयी रोगी निर्भाग्य पापकर्मी जिसके पुत्र न हो और मुक्तिकी इच्छा वाला सदा इस कथाको सुनै ॥ ५१ ॥ जिसको रजोदर्शन न होता हो काकवंध्या मृतवत्सा अथवा जिसका गर्भ गिरनेलगे वोह स्त्रीभी कथाको यत्नसे सुने ॥ ५२ ॥ इन सातदिन पर्यंत जो वि-धिपूर्वक सुनेतो अक्षय फल होता है यह दिव्य कथा भागवत है करोड़ों यज्ञ फलकी देनेहारी है ॥ ५३ ॥ इसप्रकार व्रतका विधान करके फिर उद्यापन करे फलकी इच्छा करने वालोंको जन्माष्टमी के व्रतकी नाईं यह कर्तव्य है ॥ ५४ ॥ निष्काम भक्तोंको उद्यापनकी आवश्यकता नहीं है वे निष्काम वैष्णव श्रवण मात्रसेही पवित्र होजाते हैं ॥ ५५ ॥ इस सप्ताहयज्ञ के समाप्ति में श्रोताओंको पुस्तककी और वक्ताकी भक्तिपूर्वक पूजाकरनी योग्य है ॥ ५६ ॥ प्रसाद नैवेद्य तुलसी माला सुनने वालोंको देनी फिर मृदंग ताल आदि बाजोंसे कीर्तन करना ॥ ५७ ॥ जयशब्द नम शब्द और शंखध्वनि करे ब्राह्मण और याचकोंको धन और अन्नदे ॥ ५८ ॥ जो मुख्य श्रोता विरक्त हो तो दूसरे दिन गीता बांचनी और जो गृहस्थ होय तो कर्म शांति के निमित्त हवन कर्तव्य है ॥ ५९ ॥ प्रति श्लोक दशमस्कंधके से विधिपूर्वक खीर शहद घी तिल अन्नों से हवन करे ॥ ६० ॥ अथवा गायत्री से सावधान होकर हवन करे क्योंकि यह परम पुराण तत्त्वसे गायत्री मयही है ॥ ६१ ॥ जो होम करने में असमर्थ हो तो बुद्धिमान उसकी फलकी सिद्धि के निमित्त होम करने योग्य वस्तु दे अनेक प्रकार छिद्र शांति के निमित्त और न्यूनता अधिकता ॥ ६२ ॥ दोषोंके शांत करने को सहस्र नाम का पाठकरै इससे सब सफल होजाता है क्योंकि इससे अधिक और कुछ नहीं है ॥ ६३ ॥ फिर बारह ब्राह्मणों को पूरा मिश्रित खीर से भोजन करावै और व्रत पूर्ति के नि-मित्त सुवर्ण गाय देनी योग्य है ॥ ६४ ॥ और जो समर्थ होतो तीन पलका सोने का सिंहासन बनाकर उसके ऊपर सुंदर अक्षरोंसे लिखीहुई यह पुस्तक स्थापन करे ॥ पूजनकर आवाहनादि उपचार दक्षिणा सहित वस्त्र भूषण गंधादि से पूजित जितेन्द्रिय आचार्य के निमित्त बुद्धिमान पुस्तक प्रदान करै तो भवबंधन से मुक्त होजाय इस प्रकार के सब पाप हरनेहारे विधानके क-रने से ॥ ६७ ॥ यह श्रीभागवत पुराण फलका देनेहारा होता है यह धर्मार्थ काम मोक्ष का साधन है इस में कुछभी संदेह नहीं है ॥ ६८ ॥ कुमार बोले नारद जी यह तो सब कुछ तुमको

सुनाया अब कथा सुननेकी इच्छा है श्रीमद्भागवत के श्रवण करने से ही भुक्ति मुक्ति हाथ में स्थित होती है ॥ ६९ ॥ सूत जी बोले ऐसा कहने उपरान्त वे सनकादिक महात्मा भागवत की कथा वर्णन करते हुए जो कथा सब पाप की हरनेहारी पुण्य रूप भुक्ति मुक्ति की देनेहारी है ७० इस सुस्वादु कथा को सब जितेन्द्रिय महात्मा और सब प्राणियों से यथाविधि श्रवण करने से पुरुषोत्तम भगवान को प्रसन्न किया ॥ ७१ ॥ तिसके अन्त में ज्ञान वैराग्य और भक्ति को बड़ी पुष्टि हुई सब प्राणियों के मन हरनेहारे ज्ञान वैराग्य तत्काल हरण होगये ॥ ७२ ॥ नारदजी अपना मनोरथ पूर्ण होजाने से कृतार्थ हुए शरीर पुलकित सर्वांग में आनंद भरगया ॥ ७३ ॥ इस प्रकार भगवान के प्यारे नारदजी कथा श्रवण करके प्रेम से गद्गद हो हाथ जोड़ सनकादिकों से बोले ॥ ७४ ॥ नारदजी बोले मैं धन्य हूं आप करुणासागरों ने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की आज मुझे सब पाप हरनेहारे हरि भगवान मिलगये ॥ ७५ ॥ हे तपोधन महात्माओ ! सब धर्मोंसे श्रवण धर्म अधिक है कारण कि, जिसके श्रवण से वैकुण्ठ में स्थित कृष्ण प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ सूत जी बोले कि वैष्णवोत्तम नारद जी जिस समय यह कहरहेथे उसी समय विचरतेहुए योगीश्वर शुकदेव जी आगये ॥ ७७ ॥ वोह षोडश वर्ष की अवस्था युक्त व्यासजी के पुत्र ज्ञान महासागर के चन्द्रमा श्रीमद्भागवत के प्रकाशक कथावसान में अपने ही लाभ से परिपूर्ण प्रेमपूर्वक शनैः शनैः श्रीमद्भागवत का पाठ करते हुए आये ॥ ७८ ॥ इन बड़े तेजस्वी को देखतेही सब सभासद उठखड़ेहुए और महाआसन दिया और नारदजी ने प्रीतिपूर्वक उनका पूजन किया तब सुखसे स्थित हो शुकदेवजी बोले सो वाणी सुनो ॥ ७९ ॥ शुकदेवजी बोले वेद कल्पवृक्ष है उसका यह भागवत फल है सो मुझ शुकदेव के मुखसे पृथ्वी में गिरा है इस कारण अमृत रूपी रस से संयुक्त है जिस फल में तोतेकी चोंच लगजाती है। वह अधिक मीठा होता है यहां शुकरूपी शुकदेवजी ने इसका स्वाद लिया है इस कारण वह अधिक मीठा होगया है "यह भाग्य है" यह भक्ति रूप रस से पूर्ण है हे रसिको ! भगवच्चरितामृत पान करनेहारे महात्माओं ! इस से मोक्षभी न्यून है इस कारण इसे बारम्बार पियो ॥ ८० ॥ जिस श्रीमद्भागवत में से फलकांक्षा रूप कपट धर्म सम्यक त्यागदिया है केवल ईश्वर सेवा रूप धर्म निरूपण किया है मत्सरता रहित सत्पुरुषों का इसमें अधिकार है महामुनि श्रीनारायण के बनाए इस श्रीमद्भागवत में वास्तव परमार्थ रूप एक परमेश्वरही जानने योग्य है जो कल्याणदायक तीनोंतापका नाशक है। निश्चय श्रीमद्भागवत के श्रोता महात्माओं के हृदय में शीघ्र ईश्वर प्राप्त होता है और शास्त्रों से शीघ्र हृदय में प्राप्त नहीं होता ॥ ८१ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराणों में श्रेष्ठ वैष्णवों का परमधन है जिस में भक्तों के परम प्रिय ज्ञान परब्रह्म श्रीकृष्णही गाये जाते हैं जिस श्रीमद्भागवत में ज्ञान वैराग्य भक्ति सहित निष्कर्म रूप ब्रह्म हृदय में प्राप्त होते हैं इसके श्रवण पठन और विचार भक्ति करने से मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ ८२ ॥ स्वर्ग सत्य लोक और कैलास में वैकुण्ठ में यह रस नहीं है इस कारण सद्भाग्यवाले इसे पियो कभी त्याग नकरो ॥ ८३ ॥ सूतजी बोले शुकदेवजी के ऐसा कहने पर सभाके मध्य में नारायण प्रगट होगए प्रह्लाद बलि उद्धव अर्जुनादि करके युक्त भगवान का नारदजीने पूजन किया ॥ ८४ ॥ आगे आसन में बैठे हुए भगवान के सन्मुख पार्वती सहित शिव और ब्रह्माजी कीर्त्तन दर्शन करने निमित्त वहां आये ॥ ८५ ॥ प्रह्लाद ने ताल तरलगति से उद्धवने छैने अर्थात् झांझे धारण करी, नारदजी ने वीणा धारण करी, स्वर भेद में कुशल होने से अर्जुन ने राग गाना प्रारम्भ किया, कुमार जय जय अथवा धन्य २ कहने लगे और सबके आगे रसकी विरचनता से भाव के बताने वाले शुकदेवजी हुए ॥ ८६ ॥ भक्ति ज्ञान वैराग्य कान्त्रिक नटकी नाईं नाचने

कथा यह अलौकिक कीर्तन देखकर नारायण प्रसन्नहो बोले ॥ ८७ ॥ हे भक्तों ! तुम्हारे कीर्तन से मैं बहुत प्रसन्न हुआ जो इच्छाहो सो मांगों यह सुन सब हरिभक्त प्रेम से गद्गद हो बोले ॥ ८८ ॥ महाराज ! भागवत की कथाओं में आपका भक्तों के हृदय में सदा प्रगटहुआ करिये यही हमारा मनोरथ पूर्ण करो बहुत अच्छा ऐसा कहकर नारायण अन्तर्धान होगए ॥ ८९ ॥ इस के उपरान्त नारदजी ने सनकादिकों को शुकदेवजी तथा आदि तपस्वियों को नमस्कार किया वे सब मोह रहित प्रसन्न हो कथामृत पान कर यथास्थान को गए ॥ ॥ ९० ॥ भक्ति ज्ञान वैराग्य सहित शुकदेवजी ने इस भागवत शास्त्र में स्थापित करी है । इस कारण भागवत् के सेवन करनेसे भगवान् वैष्णवों के चित्त में प्राप्त होते है ॥ ९१ ॥ दारिद्र दुःख ज्वर से दुःखित माया पिशाचनी से मर्दित संसार समुद्र में मग्न हुओं को कल्याण के निमित्त यह भागवत् की कथा गर्जती है ॥ ९२ ॥ शौनकजी बोले शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को और गोकर्ण ने तथा सनत्कुमारादिकों ने नारदजी को यह कथा कब सुनाई ॥ यह हमारा सन्देह दूर करो ॥ ९३ ॥ सूतजी बोले कृष्णचन्द्र के परलोक जाने के तीस वर्ष उपरान्त भादों के शुक्र पक्षकी नौमीको शुकदेवजी ने यह कथा राजा परीक्षित को सुनाई ॥ ९४ ॥ परीक्षित को कथा सुनाने के दोसौ वर्ष उपरांत आषाढ के शुक्ल पक्षमें गोकर्ण ने कथा का आरंभ कियाथा ॥ ९५ ॥ तिस्से भी फिर कलियुग के तीनसौ वर्ष व्यतीत होने में कार्तिक के शुक्ल पक्ष में सनकादिकों ने सुनाई ॥ ९६ ॥ हे पाप रहित ! जो कुछ तुमने पूछा सो मैंने सुनादिया ॥ कलियुग में यह भागवत की वार्ता संसार रोगकी नाशक है ॥ ९७ ॥ कृष्ण की प्यारी सब पापों की नाश करनेहारी मुक्ति की कारण भक्ति की प्रकाश करनेहारी यह कथा है जो जो महात्मा आदर से इस कथा को पान करते हैं उनको और तीर्थोंके सेवन करने की क्या आवश्यकता है ॥ ९८ ॥ यम राजने पाश हाथ में लिये अपने दूतोंसे यह बात कही कि, जो भागवतकथा रस में मत्तहैं तुम उनके निकट कभी मत जाइयो मैं औरों का नियन्ता हूं परन्तु वैष्णवों का नहीं हूं ॥ ९९ ॥ इस असार संसार में विषयरूपी विषके संसर्ग से व्याकुल बुद्धिवालों को योग्य है कि आधे क्षण को तो अतुल अमृतरूपी शुकदेवजी की गाथाको कल्याणके निमित्त पानकरें क्यों ? कुत्सित कथा में क्यों व्यर्थ भ्रमते हो इस से मुक्ति होती है । इस वार्ता के महाराज परीक्षित साक्षी है ॥ १०० ॥ रस प्रवाह से युक्त श्री शुकदेवजी ने यह कथा कही है । जो कोई कण्ठ में धारण करता है वह वैकुण्ठ का प्रभु होता है ॥ १०१ ॥ हे शौनक इस प्रकार से यह परम गुप्त सब सिद्धान्तों का सार अनेक शास्त्रों को आलोचना कर जगत में शुक कथा से निर्मल और कुछ नहीं है परम सुख के कारण द्वादश स्कन्धात्मक श्रीमद्भागवत रस को पान कर ॥ १०२ ॥ जो नियत होकर इस कथाको श्रवण करते और भक्ति प्रीति से शुद्ध वैष्णवों के आगे सुनाते हैं वे वक्ता श्रोता सम्यक विधान करने से सम्पूर्ण फल को प्राप्त होते हैं सत्य वचन से संसार में कोई वस्तुभी असाध्य नहीं है ॥ १०३ ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तर खण्डे श्री मद्भागवत माहात्म्ये विप्र सारस्वत
वंशावतंस श्री मन्नारायण शास्त्रि सूनु वैद्यनाथ शास्त्रि
कृत भाषाटीकायां श्रवण विधिकथनं
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



न्याय सिद्धान्त मुक्तावली

मूल तथा भाषा और बृहत् टिप्पणी सहित ग्रन्थसम्पूर्ण १॥) रु० ।

यह ग्रन्थ संस्कृत में होनेके कारण कठिन था इस लिये सर्व साधारणके उपकारार्थ तथा मुख्यकर काशी,लाहौर आदिकी परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों के लाभार्थ बडे परिश्रमसे इस ग्रन्थ की भाषा टीका बनाई है उसका क्रम यह है कि प्रथम भाषा परिच्छेद (कारिकावली) पुन: पद, अन्वय, भाषार्थ, विषम पदार्थ, भावार्थ तदनन्तर मुक्तावली फिर मुक्तावली का भाषानुवाद, तदनन्तर बृहत् टिप्पणी है इस टिप्पणी में दिनकरी तथा रामरुद्री आदि मुक्तावली के टीकों का सम्पूर्ण आशय लिखा है अर्थात् दिनकरी रामरुद्री का भी मानो भाषाटीकाही करदिया है और कहीं २ इन टीकाओं से भी टिप्पणी में विलक्षणता प्रकट की है । ग्राहकगण बहुत शीघ्रता से पत्रभेज इसग्रन्थ को मंगवालीजिये क्योंकि फिर यह हाथ न आवेगा यह पुस्तक कई प्रकार के अक्षरों में प्रकाशित कर बहुत बढिया कागज लगाय सुन्दर जिल्द बँधी भेजीजाती है इसपरभी इस अमूल्य रत्नका मूल्य केवल १॥) रुपयाहै

चौदहरत्न.

अर्थात् १२९ पुस्तकें मूल्य ११) डा० व्यय ≡)

सब पुस्तकें मूल तथा भाषाटीका और एक उत्तम जिल्दमें हैं ॥

(१) वेद वेदाङ्गसंग्रह पुस्तक १५ । (२) शास्त्रसंग्रह पुस्तक ७ । (३) पुराणेतिहास संग्रह पु० ५ । (४) दश महाविद्या पु० १० । (५) गृहधर्म संग्रह ६ । (६) नित्य कर्म विधान ६ । (७) कर्मकाण्ड ९ । (८) ज्योतिष शास्त्र गणित और फलित ९ । (९) वैद्यकशास्त्र २ । (१०) तन्त्र और मन्त्र शास्त्र ११ । (११) स्तोत्रसंग्रह १० । (१२) साहित्य शास्त्र ९ । (१३) इतिहास और नाटक संग्रह १५ । (१४) व्याख्यान संग्रह ७ ।

श्रीमद्भागवत

द्वादश स्कन्ध मूल तथा भाषाटीका सहित सम्पूर्ण अत्युत्तम प्रसिद्ध समाचार पत्रोंनेएक वाक्यसे प्रशंसाकी है । मूल्य ३) डा० व्य० माफ ।

पं० बैजनाथशास्त्री-मिआंसाहबगली, मुरादाबाद